प्रकाशक
जीतमल लूणिया, मन्त्री
सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर



## लागत का ब्योरा

| | |
|---|---|
| कागज | ३००) |
| छपाई | २९५) |
| बाइंडिंग | ५५) |
| व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च | ६००) |
| | १२५०) |

प्रतियाँ २०००
एक प्रति का लागत मूल्य ॥=)

मुद्रक

# निवेदन

गत महायुद्ध के समय सारे संसार में जो खलबली मची थी, वह और भी अधिक व्यापक होकर अब तक किसी न किसी रूपमें सब जगह वर्तमान है। न तो योद्धा राष्ट्र ही अभीतक शान्ति और सुख का मुख देख सके हैं और न संसार के अन्य राष्ट्र तथा देश ही ठिकाने आ सके हैं। बल्कि सच पूछिए तो युरोपीय महायुद्ध के बाद से देशोंकी अवस्था और भी विकट हो गई है। संसार के सामने अनेक नई नई और जटिल समस्याएं उपस्थित हो गई हैं। गोरे योद्धा राष्ट्रों की दुर्दशा तो बहुत अधिक बढ़ गई है। उन्हें एक ओर तो घराऊ पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करना पड़ता है और दूसरी ओर अपने अधीनस्थ प्रदेशों के उपद्रव और विद्रोह शान्त करने पड़ते हैं। महायुद्ध के समय उन्होंने अपने अधीनस्थ देशों को जो आशाएं दिलाईं, उनके फलवती न होने के कारण विजित देश असन्तुष्ट हो कर सिर उठा रहे हैं। साथ ही महायुद्धों के कारण उनको विस्तृत संसार का बहुत कुछ ज्ञान हो चुका है और वे अपनी वर्तमान हीन अवस्था बिल-कुल बदल डालना चाहते हैं। मानो सारा संसार एक बड़े कड़ाहे में पड़-कर गल रहा है। उसका पुराना स्वरूप धीरे धीरे नष्ट होता जा रहा है और उसके नये सांचे में ढलने की तैयारियां हो रही हैं।

संसार परिवर्तन शील तो है ही। वह कभी अधिक समय तक एक दशा में नहीं रहता, रह ही नहीं सकता। कभी कोई देश बलवान होता है तो कभी कोई जाति विजयिनी होती है। आज कल यूरोप के गोरों का ज़माना है। संसार में जहां देखिए वहां गोरों का ही साम्राज्य, गोरों का ही प्रभुत्व और गोरों का ही सब कुछ है। मानो सारे संसार की सृष्टि ही इन गोरों की दुश्मन और सुख-भोग के लिये हुई है। पर क्या किया जाय! प्राकृतिक नियम ही ऐसा है कि कोई दशा अधिक समय तक नहीं बनी रह सकती। इसलिए वर्तमान दशा में भी परिवर्तन होना चाहता है। इस

कटने मरने लग गये। हमारे गोरे महा प्रभुओं की चाल चल गई और उनका मनोरथ सिद्ध होता हुआ दिखाई देने लगा। कुछ दिनों तक ऐसा गृह-कलह मचा कि स्वतन्त्र होने की कोई आशा ही न रह गई। पर इधर थोड़े दिनों से साइमन कमीशन की नियुक्ति के कारण कुछ और ही हवा चलने लगी है जिससे लोगों को थोड़ी बहुत आशा होने लग गई है। उस समय गोरे जेताओं ने तुर्की को इतना अधिक पीस डाला था कि वह समझते थे कि अब शायद यह पचीस पचास वर्ष तक उठकर खड़ा होने के योग्य भी न होगा। पर इस थोड़े से समय में ही तुर्की ने कमालपाशा के नेतृत्व में जो कमाल करके दिखलाया है वह सारे संसार के राजनीतिक इतिहास में अभूतपूर्व है और उसे देखकर बड़े बड़े गोरे प्रवीण राजनीतिज्ञों को भी दांतों उंगली दबानी पड़ती है। जिस चीन को बड़े बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों ने चारों ओर से जकड़ रक्खा था उसने एक ही करवट में अपनी कई ज़ंजीरें तोड़ डालीं और एकही झटके में कइयों को दूर गिरा दिया। अब ये स्वार्थी गोरे वहां गृह-युद्ध की अग्नि सुलगा कर उसे दुर्बल करना चाहते हैं और यही इनका सबसे बड़ा अस्त्र है। उन दिनों अफ़गानिस्तान स्वतन्त्र होने पर भी नगण्य समझा जाता था। पर अब उसकी जाग्रति भी गोरों को शंकित और भयभीत कर रही है। और सबसे बढ़कर मज़ा बोलशेविक रूस कर रहा है। उसने अपने समस्त अधीनस्थ प्रदेशों को तो आरम्भ में ही स्वतन्त्र कर दिया था जिससे उसके पड़ोसी गोरे घबरा रहे थे और अब तो उसने अपनी शासन-प्रणाली और व्यवस्था आदि के कारण मानो इन्द्र का सिंहासन ही हिला दिया है। अब गोरे अपने अधीनस्थ देशों के विद्रोह से उतना अधिक नहीं डरते जितना कि अपने इस गोरे भाई की कृतियों से डरते हैं। इस समय बोलशेविक रूस को प्रायः सभी गोरे अपने अधिकार और वैभव का परम शत्रु समझते हैं और वास्तव में बात भी कुछ ऐसी ही है। ख़ैर, यहां इन सब बातों के कहने का मेरा अभिप्राय केवल

समस्त रूप में निर्भीव थी, उस समय

# गोरों का प्रभुत्व

# गोरों का प्रभुत्व

# गोरों का प्रभुत्व

## संसार का वर्ण-विभाग

( १ )

यदि आप संसार का मान-चित्र उठा कर देखें तो आप को पता चलेगा कि आजकल सारे संसार में केवल री जातियों का ही राज्य है। संसार के प्रायः सभी देशों में जनीतिक अधिकार केवल गोरों के ही हाथ में है। अपनी कूट जनीति के कारण केवल गोरे ही इस सारे संसार के मालिक ने हुए हैं। इधर सैकड़ों वर्षों से संसार के सब से छोटे महाद्वीप रोप की गोरी जातियाँ अपने घर से बाहर निकल कर संसार ी चप्पा चप्पा ज़मीन पर फैल गई हैं। पास और दूर के सभी शों में पहुँच कर इन गोरों ने अपना अड्डा अच्छी तरह जमा लिया है और उन देशों को किसी न किसी रूप में अपने अधि-ार में कर लिया है। सभी जगह उन्होंने अपने झण्डे गाड़ दिये , सभी जगह अपने कानून जारी कर दिये हैं और सभी जगह

पने आचार, विचार तथा सभ्यता आदि का प्रचार कर दिया
तर अमेरिका और आस्ट्रेलिया तो मानों बिलकुल यूरोप अप
सके अंग बन गये हैं। दक्षिण अमेरिका तथा आफ्रिका
धिकांश स्थानों में इन गोरी जातियों ने अपने उपनिवेश स्था
र रखे हैं और एशिया का सारा उत्तरार्द्ध अर्थात साइबेरि
हीं गोरों का निवास-स्थान बन गया है। जिन स्थानों पर ये गो
ातियाँ किसी कारण से स्थायी रूप से बस नहीं सकी हैं,
ानों पर भी इन्होंने कम से कम अपना राजनीतिक प्रभुत्व अव
ापित कर लिया है और वहाँ के असंख्य सीधे सादे निवासि
ी विवश होकर अपने इन गौराङ्ग महाप्रभुओं की आज्ञानुसार
लना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि इस समय सारे संसार
ब प्रकार से इन गोरों का ही राज्य है। संसार में कोई ऐ
श अथवा कोई ऐसी जाति नहीं है, जो पूर्ण रूप से इन गो
 अधिकार-क्षेत्र के बाहर हो।

संसार के अधिकांश स्थानों में या तो गोरी जातियाँ स्व
ता कर बस गई हैं, या इन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लि
... ऐसे देश अवश्य ऐसे हैं जिनमें इन गोरों का प्र

निगाज बस यही कतिपय देश ऐसे हैं जिनमें प्रत्यक्ष रूप से गोरी जातियों का शासन नहीं है। पर फिर भी इनमें शायद ही कोई देश ऐसा हो जिसमें गोरों का हस्तक्षेप न हो, अथवा जो इन गोरों के हाथों ग्रस्त न हो। ध्रुव-प्रदेशों को छोड़ कर सारे संसार में ५,२०,००,००० वर्ग मील भूमि है जिसमें से केवल ६०,००,००० वर्ग मील भूमि ऐसी है जो गोरों के प्रत्यक्ष शासनाधिकार से बाहर है। इस ६०,००,००० वर्ग मील भूमि में से भी प्रायः दो तिहाई केवल चीन साम्राज्य के अधिकार में है। और फिर भी तमाशा यह है कि उस चीन को भी ये गोरे हजम करने की चिन्ता में लगे हैं।

गत महायुद्ध पहले तो यूरोपीय महायुद्ध ही था, पर बाद में वह प्रायः संसारव्यापी हो गया था। इस महायुद्ध में चाहे सबसे अधिक हानि इन गोरों की ही क्यों न हुई हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि उससे लाभ भी इन गोरों का ही हुआ है। वास्तव में संसार के थोड़े से बचे-खुचे प्रदेशों को भी अपने अधिकार में लाने के लिए ही यूरोप वाले आपस में लड़ मरे थे। गत महायुद्ध से यूरोप वालों को एक सबसे बड़ा लाभ यह भी हुआ कि पहले जिन थोड़े से प्रदेशों में उनका राजनैतिक अधिकार बहुत कम था वहाँ अब वह बहुत बढ़ गया है। पहले जो थोड़े से देश काली जातियाँ इन गोरों के चंगुल से बची हुई थीं उनमें अब इन लोगों ने बहुत कुछ अपने अधिकार में कर लिया है। पहले जो गोरी जातियाँ के [illegible] से [illegible] महायुद्ध में [illegible] मालूम हो कि यह युद्ध [illegible] [illegible] गया है। पर युद्ध के [illegible]

गोरे पर फिर भी उन्होंने उन स्थानों को अपने लिए घेर रखा

विभाग का वैषम्य उस समय और भी विलक्षण तथा [illegible] जनक हो जाता है जब हम गोरों तथा अन्य वर्णों के लोगों [illegible] जन-संख्या का विचार करते हैं। इस समय सारे संसार की आबा प्रायः १,७०,००,००,००० है। इसमें से गोरों की संख्या [illegible] ५५,००,००,००० और अन्य वर्णों के लोगों की संख्या प्राय १,१५,००,००,००० है। इस प्रकार अन्य वर्णों के लोगों की संख्या गोरों की संख्या की अपेक्षा दूनी से भी कुछ अधिक है। इसमें भी एक बहुत महत्व की बात यह है कि गोरों का अधिकांश केवल यूरोप में ही बसा है। बल्कि यों कहना चाहिए कि गोरों का वास्तविक निवास-स्थान केवल यूरोप ही है। उन्होंने जिस प्रकार संसार के ११/१०१ भाग को जबरदस्ती अपने शासन में कर लिया है उसी प्रकार यूरोप के अतिरिक्त अन्यान्य अनेक प्रदेशों को जबरदस्ती अपना निवास-स्थान बना लिया है। १९१४ में यूरोप की आबादी ४५,००,००,००० के लगभग थी। गत महायुद्ध के कारण इसमें लगभग एक करोड़ की कमी हो गई है पर इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि गोरों की गत [illegible] में जन-संख्या के विचार में [illegible] [illegible] [illegible] है।

धर्त्ती का चार पंचमांश रोक रखा है। या यों कहिए कि यदि सौ ही गोरे हैं और उनके पास सौ ही मील भूमि है, तो अस्सी गोरे तो केवल बीस मील से भी कम स्थान में रहते हैं और बाकी बीस गोरों ने अस्सी मील भूमि रोक रखी है। किस लिए ? इसलिए कि उनकी ही सन्तान वहाँ रहे, वहाँ की उपज से लाभ उठावे और अन्य वर्णों के लोग वहाँ घुस न सकें ! यही है गोरों का असह्य प्रभुत्व ! यही है उनका असह्य बोझ !

हम ऊपर कह चुके हैं कि संसार में गोरों के अतिरिक्त पीत, धूम्र, कृष्ण और रक्त ये चार वर्ण हैं और इन सब की जन-संख्या १,१५,००,००,००० है। इनमें से सब से अधिक संख्या पीत वर्ण के लोगों की है जो ५०,००,००,०० से भी कुछ ऊपर ही है। उनका निवास-स्थान पूर्वी एशिया है। इनके बाद धूम्र वर्ण या गेहुएँ रंग के लोग हैं, जिनकी संख्या ४५,००,००,००० के लगभग है। ये लोग दक्षिणी तथा पश्चिमी एशिया और उत्तरी आफ्रिका में बसे हुए हैं। कृष्ण वर्ण के लोगों की जन-संख्या १५,००,००,००० के लगभग है और उनका मुख्य निवास-स्थान आफ्रिका के प्रसिद्ध सहारा रेगिस्तान का दक्षिणी भाग है। इनमें से कुछ लोग दक्षिण एशिया और उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के

थोड़े दिनों का हिसाब लगाने से पता चलता है कि गोरों की संख्या अस्सी बरस में, पीत और धूम्र वर्ण के लोगों की संख्या साठ बरस में और कृष्ण वर्ण के लोगों की संख्या चालीस बरस में दूनी हो जाती है। रक्त वर्ण के बहुत से लोगों का तो इन गोरों ने केवल इसीलिए नाश कर डाला है कि उनके प्रदेश खाली हो जायँ और उनमें इन गोरों को अपना अड्डा जमाने का अवसर मिले। आज कल की यूरोपीय सभ्यता जन-संख्या की वृद्धि में बहुत कुछ बाधक हो रही है। यहाँ तक कि फ्रान्स की जन-संख्या ने तो एक प्रकार से स्थायी रूप धारण कर लिया है और उसकी वृद्धि प्रायः नाम मात्र को ही हो रही है।

पर अन्यान्य वर्णों के लोगों की यह बात नहीं है। यद्यपि उन में से अनेक जातियों और उपजातियों आदि की मृत्यु-संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, तथापि उनकी जन-संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। गोरी जाति सारे संसार की मालिक और शासक है, इसलिए वह स्वभावतः सब से अधिक सम्पन्न भी है। पर और जातियाँ दरिद्र हैं, इसलिए उनमें अनेक प्रकार के रोग भी होते हैं और समय समय पर अनेक अकाल भी पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें से अनेक कुछ असभ्य भी हैं, इसलिए वे आपस में भी खूब मार काट करती हैं। इन सब कारणों से उनकी मृत्यु-संख्या तो अधिक होती है, पर फिर भी उनकी संख्या कुछ न कुछ बढ़ती ही है। जहाँ एक और गोरी जाति अनेक प्रकार के उपाय करके अन्य वर्णों के लोगों की मृत्यु-संख्या कम करती है, वहाँ वह प्रकारान्तर से मृत्यु-संख्या बढ़ाती भी है। वह असभ्य जातियों को आपस में कटने मरने से रोकती भी है और फिर अपने काम के

ए उनको दूसरों से लड़ा कर कटवाती भी है। वह अस्पताल
दि खोल कर मृत्यु-संख्या घटाने का भी उद्योग करती है और
के कारण नई नई भीषण बीमारियाँ भी फैलती हैं। इसी प्रकार
; अकाल आदि दूर करने का भी उद्योग करती है और स्वयं
काल का कारण भी बनती है। तो भी यह मानना पड़ेगा कि
धारणतः गोरों के कारण अन्य वर्ण के लोगों की मृत्यु-संख्या
ाज कल कुछ कम ही हो रही है। इसका परिणाम यह हो रहा
कि सारे संसार में अन्य वर्णों के लोगों की जन-संख्या बराबर
ढ़ती जा रही है। भारत सरीखे पूर्ण पराधीन देशों, चीन सरीखे
र्ध पराधीन देशों और जापान सरीखे स्वतन्त्र देशों में भी जन-
ंख्या बराबर कुछ न कुछ बढ़ती है; और उनकी यह वृद्धि गोरों
ी वृद्धि की अपेक्षा कुछ अधिक ही पड़ती है। और फिर अन्य
र्ण के लोग हैं भी तो गोरों की अपेक्षा दूने से भी अधिक इस-
लेए उनकी वृद्धि भी अपेक्षाकृत अधिक ही है।

अब यह सोचना चाहिए कि अन्य वर्णों की इस वृद्धि का
अनिवार्य परिणाम क्या होगा अथवा क्या होना चाहिए। क्या
यह सम्भव अथवा उचित है कि ये गोरे इसी प्रकार सदा संसार
के स्वामी बने रहें, बसने के योग्य सभी स्थानों में अपना एकाधि-
कार जमा कर बैठे रहें और अन्य वर्णों के लोग बहुत ही थोड़े
स्थान में सदा कठिनता से अपना निर्वाह करते रहें? हमारी
समझ में इसका उत्तर है—कदापि नहीं। इसका परिणाम यही
होना चाहिए कि अन्य वर्णों के लोग भी अपने प्रसार का उद्योग
करें, अपने संकुचित निवास-स्थानों से निकल कर आगे बढ़ना
चाहें। उस दशा में गोरों को स्वभावतः विवश हो कर अन्य वर्णों

के उन लोगों के थोड़े बहुत स्थान खाली करने पड़ेंगे। जिन पर उन्होंने इधर कुछ दिनों में जबरदस्ती अधिकार जमा लिया है। गोरों के पास तो इतना अधिक स्थान है कि सैंकड़ों बरस तक भी वे उसका पूरा पूरा उपयोग न कर सकेंगे। और अन्य वर्णों के लोगों के पास इतना कम स्थान बच गया है कि उसमें उनका दम घुट रहा है। अन्य वर्णों के पास जितनी भूमि बच रही है, उसमें उनका निर्वाह बहुत ही कठिनता से हो रहा है। हाँ, माना कि कुछ स्थानों के लोग कृषि आदि में थोड़ा बहुत सुधार करके और जीविका के नये साधन निकाल कर अपना निर्वाह कुछ और सुभीते से करने लग जायँ, जैसा कि जापान ने किया है। पर फिर भी इससे कोई बहुत बड़ा लाभ नहीं हो सकता। इससे तो उनके भीषण कष्ट केवल कम हो कर ही रह जायँगे, उनका अन्त किसी प्रकार न होगा। और जब तक उन कष्टों का पूर्ण रूप से अन्त न होगा, तब तक संसार में किसी प्रकार शान्ति न होगी। अन्य वर्णों के पास अपने अपने देश में बहुत ही थोड़ा स्थान बचा है और उनकी जन-संख्या बराबर बढ़ती ही जाती है। अब या तो वे अपने अपने देश से निकल कर किसी और स्थान में जा बसे, या अपने ही देश में रह कर भूखों मरें। गोरे भले ही यह चाहें कि सारे संसार में हमारा ही अधिकार रहे और दूसरे वर्णों के लोग भूखों मर जायँ, परन्तु अन्य वर्णों के लोग यह कब देख सकते हैं कि गोरे तो हमारे देश में आ कर उसके सभी अच्छे अच्छे स्थानों पर अधिकार जमा कर बैठें, और हमारे बाल-बच्चे भूखों मरें; और वह भी विशेषतः ऐसी अवस्था में, जब कि वे यह देखते हैं कि गोरों के पास वे सब स्थान खाली पड़े हैं और वे उन

का पूरा पूरा उपयोग ही नहीं कर सकते। यदि अकाल के दिनों में हजारों लाखों आदमी तो भूखों मरते हों और थोड़े से आदमियों के पास उन्हीं भूखों मरने वालों के घरों का लूटा हुआ लाखों मन अनाज पड़ा हो, तो उसका अनिवार्य परिणाम क्या होगा? यही न कि वे लाखों अकाल पीड़ित किसी न किसी प्रकार उस अनाज पर अधिकार प्राप्त करने का उद्योग करेंगे? इन गोरों ने भी संसार के अधिकांश स्थानों पर अधिकार करके संसार में जमीन का अकाल पैदा कर दिया है। ऐसी दशा में अन्य वर्णों के लोगों के पास इसके सिवा और कोई उपाय ही नहीं है कि वे जिस प्रकार हो सके, उन स्थानों में जा पहुँचें, जिन पर इन गोरों ने अपना आधिपत्य जमा रखा है और जो अब तक प्रायः खाली ही पड़े हैं। गोरे चाहते हैं कि ये खाली स्थान भी सदा हमारे ही अधिकार में रहें और चाहे इस समय हमारे कुछ भी काम न आवें, पर फिर भी हमारी भावी सन्तान के लिए सुरक्षित रहें। इसीलिए उन्होंने अनेक प्रकार के कानून आदि बना कर अन्य वर्णों के लोगों का वहाँ जाना रोक दिया है। एक ओर तो गोरों ने अपनी रक्षा के लिए बड़े बड़े बाँध बाँध रखे हैं और दूसरी ओर अन्य वर्णों के लोगों की भीषण लहरें उठ रही हैं, जो इन बाँधों को तोड़ना चाहती हैं। उचित तो यह था कि ये गोरे आप ही खाली स्थानों को अन्य वर्णों के लिए छोड़ देते, पर वे नीति-पथ से इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि उनसे इस प्रकार की आशा रखना बिलकुल व्यर्थ है।

यों तो आरम्भ से ही अन्य वर्णों के लोगों को गोरों का प्रभुत्व खल रहा है, पर अब उनके सामने एक और भी विकट

प्रश्न आ उपस्थित हुआ है। यह प्रश्न है आत्म रक्षा का। वे इस
पृष्ठ में अपना विस्तार चाहते हैं और अपने लिए रहने का स्था
चाहते हैं। यह एक स्वाभाविक बात है कि जब बहुत से लो
पर एक ही विपत्ति पड़ती है, अथवा बहुत से लोगों को एक ही
संकट का सामना करना पड़ता है, तब वे सब आपस के झगड़ों
विरोधों और मत-भेदों को भूल कर उस विपत्ति का सामना करने
के लिए एक होने का उद्योग करते हैं। इस समय अन्य वर्णों के
लोगों को गोरों के प्रभुत्व रूपी संकट का सामना करना है, इस-
लिए उनके आपस के सब झगड़े भी दब जाने चाहिएँ और
सम्भवतः दब जायँगे।

श्रीयुक्त डाक्टर ई० जे० डिलन एक बहुत बड़े अँगरेज विद्वान् हैं। उन्होंने सारे संसार की राजनीतिक परिस्थिति का बहुत ही परिश्रम पूर्वक अध्ययन किया है और ऐसी बातों के सम्बन्ध में सम्मति देने के लिए वे बहुत बड़े अधिकारी माने जाते हैं। सन् १९०८ में उन्होंने एक प्रसिद्ध अँगरेजी मासिक पत्र में एशिया सम्बन्धी समस्याओं पर एक विचार पूर्ण लेख लिखा था। उसी लेख में उन्होंने एक स्थान पर कहा था—"एशिया वालों के लिए यह जीवन और मरण का प्रश्न है; क्योंकि कोई जाति, चाहे वह कितनी ही छोटी श्रेणी की क्यों न हो, कभी यह मंजूर नहीं करेगी कि हम तो धीरे धीरे नष्ट हो जायँ और हमें नष्ट करने वाले हमारा ही सर्वस्व लेकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें। विशेषतः उस अवस्था में तो वह नष्ट होना और भी मंजूर न करेगी, जब कि वह देखेगी कि हमारे लिए लड़ झगड़ कर नष्ट होने से बचने का एक बहुत अच्छा अवसर उपस्थित है।"

एक गोरे ने अन्य वर्ण के लोगों के विचारों के सम्बन्ध में यह जो कुछ कहा है, वह बहुत ही ठीक है। सन १९१३ में जापान मैगजीन में प्रसिद्ध जापानी विद्वान प्रोफेसर नेगोई ने लिखा था— "यह संसार केवल गोरी जातियों के लिए ही नहीं बना है, बल्कि अन्य वर्णों के लोगों के लिए भी बना है। आस्ट्रेलिया, दक्षिण आफ्रिका, कैनाडा और अमेरिका के संयुक्त राज्यों में ऐसी बहुत अधिक जमीनें खाली पड़ी हैं, जो आबाद हो सकती हैं। पर तमाशा यह है कि वहाँ की शासक जातियों के लोग स्वयं तो उन जमीनों को आबाद करने से इनकार करते हैं और साथ ही पीत वर्ण के लोगों को वहाँ घुसने नहीं देते। इससे यह सिद्ध होता है कि ये गोरी जातियाँ अपने पीत वर्ण के भाइयों को जो चीज देने से इनकार करते हैं, वही चीज जंगली पशुओं और पक्षियों के आगे फेंक देने के लिए तैयार हैं। कुछ देशों के बड़े बड़े रईस और जमींदार अपने दम्भ और लालच के कारण बढ़िया बढ़िया जमीनें अपने लिए रख लेते हैं और निकम्मी जमीनें गरीबों के लिए छोड़ देते हैं। पर उनका यह अनुचित व्यवहार इन गोरी जातियों के उस व्यवहार के सामने कुछ भी नहीं है जो व्यवहार ये अन्य वर्णों के लोगों के साथ करती हैं।"

तात्पर्य यह कि संसार में गोरों का प्रभुत्व बेतरह बढ़ गया है और अन्य वर्णों के लोगों के साथ उनका व्यवहार बहुत ही बुरा हो गया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि अन्य वर्णों के लोगों में गोरों के प्रति घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया है और यह असन्तोष समय समय पर अनेक रूपों में प्रकट होता है। गत महायुद्ध छिड़ने से कुछ ही पहले एक अंगरेजी पढ़े-लिखे अफ-

गानने एक स्थान पर लिखा था—"यूरोप और अमेरिका वालों
अन्य वर्णों के प्रति बहुत ही कायरता पूर्ण तथा निन्दनीय व
विभेद के भाव उत्पन्न हो गये हैं। आगे चलकर सारे एशिया
यूरोप और अमेरिका के साथ झगड़ा होगा। ये गोरे ऐसे अधिव
धिक साधन उत्पन्न कर रहे हैं जिनसे आगे चलकर बड़ा भा
जहाद होगा। उस जहाद में केवल समस्त मुसलमान ही नहीं, बरि
एशिया के सभी निवासी सम्मिलित होंगे और इन गोरों से बद
लेंगे। पुराने आक्रमणों की भांति इस बार के आक्रमण में एशि
वाले भालों और बरछों से काम नहीं लेंगे बल्कि बन्दूकों औ
गोलियों से काम लेंगे। आप लोगों (गोरों) को औचित्य त
बुद्धिमता पूर्वक जो बातें बतलाई जाती हैं, वे बातें आप लोग सुन
नहीं हैं। इसलिए जब तलवार तप कर खूब लाल हो जायगी, त
उस तलवार से आप लोगों को समझाया जायगा।"

यदि सच पूछिए तो इन कथनों में न तो कोई विशेषता है
और न विलक्षणता। अन्य वर्णों के लोगों ने आज तक कभी
गोरों के प्रभुत्व को अच्छा नहीं समझा। कोई दूसरे के प्रभुत्व को
अच्छा नहीं समझता, फिर और लोग गोरों के प्रभुत्व को क्यों
अच्छा समझते? गोरों के शासन और अधीनता में आकर सभी
लोग सदा दुःखी और असन्तुष्ट रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दि के
अन्त तक यह ज्ञान था कि अन्य वर्णों के लोग गोरों के प्रभुत्व
[illegible] ही वे उसे अनिवार्य

देश जीतती रही हैं और अपना साम्राज्य बढ़ाती रही हैं। उन्होंने अपनी जल तथा स्थल सेना खूब बढ़ा ली है और अनेक भीषण नाशक यन्त्र तैयार कर लिये हैं। अपने इस बल और इन यन्त्रों की सहायता से ये गोरी जातियाँ अन्य वर्णों को खूब अच्छी तरह कुचलती और पीसती चली आई हैं; और जो लोग अपनी स्वतन्त्रता और अपने देश की रक्षा के लिए उनका विरोध करते हैं, उनके प्रयत्नों को बराबर निष्फल करती हैं। यही कारण था, जिससे उन्नीसवीं शताब्दि के अंत तक अन्य वर्णों के लोग इन गोरों से बहुत डरते थे और विवश होकर उनका प्रभुत्व मान लेते थे। बेचारों के पास इसके सिवा और कोई उपाय ही नहीं था। पर हाँ, इतना अवश्य था कि वे गोरों के प्रभुत्व से कभी सन्तुष्ट नहीं हुए और न वे कभी उनका आदर करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दि की समाप्ति के समय ही इस बात के प्राथमिक लक्षण दिखाई पड़ने लग गये थे कि अन्य वर्णों के लोगों के विचारों और भावों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगा है। पीत और धूसर वर्ण के बहुत से लोग पाश्चात्य विचार ग्रहण कर चुके थे। अब वे गोरों को अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखने लगे और इस बात का विचार करने लगे कि आखिर इन गोरों के प्रभुत्व और हमारी अधीनता का कारण क्या है। अन्त में उन्होंने समझ लिया कि इन गोरों में कोई अलौकिक गुण या शक्ति नहीं है। ये लोग केवल परिस्थितियों को ही अपने अनुकूल बनाकर बलशाली हो गये हैं। यदि हम भी इसी प्रकार उद्योग करें हमारे लिए भी अनुकूल हो सकती हैं और हम समान बलवान् हो सकते हैं। जापान ने आगे बढ़

थे कि अन्य वर्णों के साथ काम पड़ने पर सब गोरे मिल कर एक हो जाते हैं, पर महायुद्ध में उन्होंने देखा कि ये गोरे आपस में ही कुत्तों की तरह लड़ रहे हैं और एक दूसरे की जान के ग्राहक हो रहे हैं। गोरों ने युद्ध में अपने अपने अधीनस्थ देशों के निवासियों से भी सहायता ली थी, जिससे उन लोगों को युद्ध-सम्बन्धी अनुभव भी हो गया और अपनी योग्यता तथा बल आदि का भी पता चल गया। लोगों को अपने पक्ष में मिलाने के लिए इन गोरों ने समय समय पर न्याय और अधिकार-सम्बन्धी बड़े बड़े उदार तथा उच्च सिद्धांत भी प्रतिपादित किये थे जिससे लोगों की आशा और साहस और भी बढ़ गया। गोरे आपस में कट मर रहे थे और उनके अधीनस्थ देशों के लोग बड़ी बड़ी आशाएँ लगाए उनकी सहायता कर रहे थे। गोरों का बल तो नष्ट हो रहा था और उनकी सभ्यता की पोल खुल रही थी। अन्य वर्णों के लोग या तो गोरों के दिए हुए वचनों का विश्वास करके, और या उनको नष्ट होते हुए देख कर समझ रहे थे कि अब हमारे निस्तार में अधिक विलम्ब नहीं है। अब गोरों का भय तो उसी प्रकार दूर हो गया था जिस प्रकार पुराने कपड़े उतार कर फेंक दिये जाते हैं। आगे चल कर जब इन गोरों ने अपनी अपनी प्रजा के साथ धोखेबाजी की, अपने पिछले वचनों को भुला कर प्रजा के बन्धनों को और भी दृढ़ करना चाहा, तब लोगों के असंतोष ने [illegible] रूप धारण किया, और उन्होंने निश्चय किया कि जब [illegible] होगा, हम इन गोरों का प्रभुत्व नष्ट करके ही छोड़ेंगे। [illegible] संसार प्रायः इसी दशा में चल रहा है। अन्य [illegible] का प्रभुत्व नष्ट करने का उद्योग कर रहे हैं

और गोरे अपना प्रभुत्व बनाये रखने की चिंता से ग्रस्त हो रहे हैं। दोनों ही पक्ष अपना अपना उद्देश्य सिद्ध करने के उपाय सोच रहे हैं। कदाचित् पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि इसमें जीत किस पक्ष की होगी। केवल यही अटल सिद्धान्त बतला देना यथेष्ट है कि किसी का प्रभुत्व, और वह विशेषतः अत्याचार-पूर्ण प्रभुत्व, सदा बना नहीं रह सकता।

महायुद्ध के समय एशिया के प्रायः सभी निवासी गोरों की सभ्यता की घोर निंदा करते थे, गोरों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनके नाश से प्रसन्न होते थे। यह बात स्वतंत्र देशों की है, भारत सरीखे परतन्त्र देशों की नहीं। बेचारे यहाँ वाले तो अपने शासकों की खुशामद में लगे थे, हर तरह से उनकी पूरी सहायता करते थे और उनकी विजय के लिए मंदिरों और मसजिदों में प्रार्थनाएँ करते थे। बल्कि यों कहना चाहिए कि बहुत दिनों की पराधीनता के कारण उनका जितना घोर पतन हुआ था, उसका प्रमाण देने के लिए अपने बन्धन आप ही कस रहे थे। आगे चल कर उनको अपनी राजभक्ति का पूरा पूरा फल भी मिल गया, जिससे उनकी आँखें खुल गईं और अब वे भी गोरों का प्रभुत्व नष्ट करने में लग गये हैं। पर अन्य स्वतंत्र अथवा अर्ध-स्वतंत्र देशों के लोग महायुद्ध के समय गोरों की खूब दिल्लगी उड़ाते थे और उनका भीषण नाश देख कर प्रसन्न होते थे। कुछ लोग उनको तरह तरह के ताने भी देते थे और उन पर [illegible] छोड़ते थे। महायुद्ध के समय तुर्कुन्तुनिया के एक [illegible] के सम्बन्ध में लिखा

और बुराइयों पर तो कुछ भी ध्यान न देती थीं, और हमारी सीमाओं पर यदि कोई छोटी मोटी घटना भी हो जाती थी, तो झट हस्तक्षेप कर बैठती थीं। वे नित्य हमारा कोई न कोई अधिकार, कोई न कोई प्रान्त छीना ही करती थीं। उनका समय हमारे शरीर में से मांस के बड़े बड़े टुकड़े काटने में ही बीतता था। हम लोग उनके विरुद्ध विद्रोह करना चाहते थे, पर अपने आपको बलपूर्वक रोकते थे। हम मुट्ठी बाँधे हुए थे, पर हम में घूँसा चलाने का बल नहीं था। अंदर ही अंदर आग जल रही थी। पर फिर भी हम लोग चुप चाप पड़े थे और मनाते थे कि किसी तरह ये लोग आपस में भिड़ जाँय, एक दूसरे को नोच नोच कर खाने लगें। और आज वही दृश्य देख लीजिये। ये महाशक्तियाँ एक दूसरी को उसी प्रकार नोच नोच कर खा रही हैं, जिस प्रकार तुर्क लोग चाहते थे कि वे एक दूसरी को खायँ।"

अमेरिका में रहने वाले एक आफ्रिका निवासी ने एक अवसर

जाता हो जायगा। पहले हमारा यह विश्वास था कि पश्चिमवालों की सभ्यता का आधार हम लोगों की सभ्यता के आधार की अपेक्षा अधिक उच्च और दृढ़ है। पर इस युद्ध को देखकर हमारा यह विश्वास बिलकुल नष्ट हो गया। हमें इस बात का दुःख है कि पहले हमने इसका वास्तविक स्वरूप नहीं समझा और उनके कल्पित स्वरूप से धोखा खाया। अभी हाल में युरोप में प्रवास करने के कारण मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हो गई है कि पाश्चात्य सभ्यता को हम एशियावाले जैसा समझते थे, वास्तव में यह उसके बिलकुल विपरीत है। और जब एक के मन से दूसरे का आदर नष्ट हो जाता है, तब दोनों में किसी न किसी प्रकार की, किसी न किसी रूप में लड़ाई हो ही जाती है।"

गोरों के आपस में लड़ने का एशिया और आफ्रिका वालों पर प्रायः इसी प्रकार का प्रभाव पड़ा रहा था, और ज्यों ज्यों युद्ध बढ़ता जाता था त्यों त्यों वे और भी प्रसन्न होते थे। युद्ध समाप्त हो गया, पर एशियावालों के कष्ट ज्यों के त्यों बने रहे। बल्कि अनेक स्थानों में तो वे और भी बढ़ गये। यही कारण है कि आज एशिया और आफ्रिका में घोर असन्तोष फैला हुआ है। यह असन्तोष युद्ध के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, बल्कि उससे बहुत पहले का है। युद्ध ने तो केवल उस आन्दोलन को और भी बलवान् बना दिया, जो युद्ध के बहुत पहले से चला आ रहा था। यदि यह महायुद्ध न भी होता तो भी इस बीसवीं शताब्दि में सारे संसार में बहुत बड़ा परिवर्तन होता, जिससे सारे संसार में और विशेषतः एशिया में गोरों के प्रभुत्व को भारी धक्का पहुँचता। पर हाँ, इतना अवश्य होता कि उस दशा में गोरों का बल बना रहता और

ते कुछ अधिक समय तक अपने प्रभुत्व की रक्षा कर सकते। इस के अतिरिक्त अन्य वर्णों के लोगों का उतना हौसला भी न बढ़ता। लोग आन्दोलन करते और गोरे अपने सुभीते के अनुसार उनके थोड़े बहुत कष्ट दूर कर देते। उस दशा में अधीनस्थ देशों का केवल विकास ही होता, उनमें क्रान्ति न होती। पर शायद ईश्वर को यह बात मंजूर नहीं थी कि संसार मे गोरों का अत्याचार बढ़े और दूसरे वर्णों को उनका बोझ ढोना पड़े। कदाचित् वह संसार के सिर से गोरों का बोझ उतारना चाहता था, इसी लिए गोरे आपस में भिड़ गये और ऐसे भिड़े कि यदि अन्य वर्णों के लोग युद्ध मे उनकी सहायता न करते तो शायद उनका पूरा पूरा नाश हो जाता। अन्य वर्णों की कृपा से गोरों का पूरा नाश तो नहीं हो सका, पर फिर भी बहुत कुछ नाश हो गया। लेकिन इतने पर भी मदान्ध गोरों की आँखें नहीं खुलीं और युद्ध की समाप्ति पर वार्सेलीज़ में उन्होंने ऐसी सन्धि की जिससे संसार-रूपी शरीर के पुराने घाव और भी गहरे हो गये; और साथ ही और भी अनेक नये घाव हो गये। उस सन्धि ने भीषण नाश का बीज बो दिया। इस बीज से जो वृक्ष होगा, उसका फल इन गोरों को तो चखना ही पड़ेगा, दुर्भाग्यवश अन्य वर्णों को भी उसका कुछ न कुछ अंश मिलेगा। बस यही गोरों के प्रभुत्व का परिणाम है। इस प्रभुत्व का अन्त ही सब के लिए सुख कर हो सकता है। यदि गोरे अपने प्रभुत्व को और भी दृढ़ तथा स्थायी करने का प्रयत्न करेंगे, तो उसका परिणाम न तो उनके लिए ही अच्छा होगा और न दूसरों के लिए ही। उन्हें स्वयं तो अपने पाप का प्रायश्चित्त करना ही होगा, दूसरों को भी उसका फल भोगना पड़ेगा।

# पीत-वर्ण

( २ )

पीत वर्ण वालों का मूल निवास-स्थान पूर्वी एशिया है। वहाँ मंगोलियन जाति के अनेक वर्ग हजारों वर्षों से रहते आये हैं। बहुत काल तक ये पीत, वर्णवाले संसार की और सभी जातियों से बिलकुल अलग और स्वतंत्र रहते थे और किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। बड़े बड़े पहाड़ों रेगिस्तानों और अगाध समुद्र से घिरे होने के कारण इनका देश मानों एक स्वतंत्र संसार ही था, जिसमें ये लोग बिलकुल स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते थे और अपनी विलक्षण सभ्यता का विकास करते थे। इनमें से हूण, मंगोल, और तातार आदि ही कुछ खाना बदोश वर्ग ऐसे थे जिनका पश्चिम के धूसर और गौर वर्ण के लोगों के साथ कुछ सम्बन्ध हुआ था; और नहीं तो शेष वर्गों का कभी किसी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं हुआ था।

पूर्वी एशिया में पीत वर्णवालों का मुख्य स्थान चीन है और वहीं से सारे पूर्वी एशिया में सभ्यता का प्रचार हुआ है। पूर्व के जापानी और कोरियन, स्यामी, अनामी और कम्बोडियन तथा उत्तर के खाना-बदोश मंगोल और मंचू सभ्यता आदि सभी बातों

से इन्हीं चीनियों के आश्रित थे। इन सभी वर्गों के लिए चीन मानो एक पूज्य गुरु और मार्गदर्शक था। आज दिन पूर्वी एशिया में चाहे राजनीतिक दृष्टि से जापान का प्रभुत्व कितना ही क्यों न बढ़ जाय, पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि पीत वर्णवालों का मूल स्थान और केन्द्र वही चीन है, जो किसी समय जापान का भी गुरु था। समस्त पीत जाति का चार पंचमांश चीन में ही रहता है। इस समय चीनियों की संख्या प्राय ४०, ००, ००, ००० जापानियों की ६, ००, ००, ००० कोरियनों की १, ६०, ००,००० और इण्डो-चीनियों की ०, ६०, ००, ००० है। इसके अतिरिक्त चीन की राजनीतिक सीमाओं में प्राय. १, ००, ००, ००० ऐसे आदमी भी रहते हैं, जो चीनी नहीं हैं।

आरम्भ में तो मानो प्रकृति ने ही पीत वर्णवालों को सारे संसार से अलग कर रखा था। पर बाद में यदि वे चाहते तो अपना एकान्तवास छोड़ कर संसार के और वर्गों के साथ भी सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे। पर उन लोगों ने किसी विदेशी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना ही पसन्द नहीं किया और स्वेच्छा पूर्वक वे सब से अलग रहे। आज से चार सौ वर्ष पहले जब गोरों ने सारे संसार में फैलना आरम्भ किया, तब वे घूमते फिरते पूर्वी एशिया में भी पहुँचे। समुद्र-मार्ग से तो वहाँ कुछ पुर्तगालियों ने प्रवेश किया और स्थल-मार्ग से साइबेरिया के मैदानों से होते हुए कुछ कज़ाक वहाँ घुसे, गोरे विदेशियों के साथ कुछ ही दिन सम्बन्ध रखकर पीत जाति ने निश्चित कर लिया कि हमें इन लोगों के साथ सम्बंध रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, और इसलिए उसने विदेशी लोगों को अपने देशों से बल-

पूर्वक निकाल दिया। केवल चीनियों ने ही गोरों को अपने
में नहीं निकाला था, बल्कि जापान, कोरिया और इण्डो
आदि वालों ने भी विदेशियों को अपने यहाँ से निकाल दिया था।
वास्तव में बात यह थी कि पीत जाति इन गोरों को बहुत
भयंकर और नाशक समझती थी। उसकी धारणा थी कि
हमारे विकास-मार्ग में बहुत बाधक होंगे; और वह अपनी सभ्यता
की इन गोरों के आक्रमणों से रक्षा करना चाहती थी। इसलिए
उसने गोरों को अपने यहाँ से निकाल दिया था। तीन सौ वर्षों
तक पीत जाति ने इन गोरों को अपने से दूर ही रक्खा और
अपने यहाँ फटकने तक न दिया। पर उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य
में गोरों ने कल, बल, छल-सभी उपायों से चीन में प्रवेश कर
लिया और पीत जाति का सारे संसार के साथ सम्बंध स्थापित
हो गया।

आरम्भ में जब गोरों ने चीन आदि में बलपूर्वक प्रवेश किया
था, उस समय तो वे अपनी सफलता पर फूले न समाते थे; पर
अब कुछ गोरों को इस बात का दुःख होता है कि हमने एक
एकांतवासी जाति को क्यों जबरदस्ती घसीट कर संसार के प्रवाह
में ला डाला। केली नामक एक आस्ट्रेलियन लेखक ने एक बार
लिखा था—"एशिया की जातियों के साथ उपयुक्त समय से
पहले ही जबरदस्ती सम्बंध स्थापित करके हम लोगों ने बड़ी भारी
भूल की है। एशिया वालों की सब से अलग रहने और अपनी
सभ्यता को दूसरों की सभ्यता के प्रभाव से बचाने की नीति
बहुत ही ठीक थी; और हमने उन पर अपना धर्म, अपनी नीति

ं। एशिया वाले जो हम से अलग रहना चाहते थे, उसका
ण यह नहीं था कि वे हम से अथवा अन्य वर्णों के लोगों
साथ किसी प्रकार की घृणा या द्वेष करते थे, बल्कि उसका
ण यह था कि वे समझते थे कि हमारी सभ्यता का सब से अच्छा
ास तभी हो सकता है, जब हम स्वतंत्र रहें और विदेशियों के
र किसी प्रकार का सम्बंध स्थापित न करें। यूरोपियनों के
निकारक बल-प्रयोग ने उनको अपना एकांतवास त्यागने के
र विवश किया। हमें यह स्वीकृत करने में लज्जित नहीं होना
हिए कि उनका ख़याल ठीक और हमारा ख़याल ग़लत है।"
अब चाहे यह काम ठीक हो चाहे ग़लत, पर हो गया। गोरों
पीत जाति को जबरदस्ती संसार के अखाड़े में ढकेल दिया।
र वह अपने आप को नवीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनु-
ल बनाने के उद्योग में लगी और यह सीखने लगी कि नई विष्ट

से गोरों की इतनी अधिक धाने भीतर गये होंगे। उस समय बहुत से लोग ऐसे थे जो जापान के सामाजिक धन आदि में तरह परिचित नहीं थे और उसको उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे जापान ने चीन पर विजय प्राप्त करके उससे फारमोसा द्वीप लिया था। उस समय एक डच लेखक ने लिखा था कि हालैण्ड को उचित है कि वह जापान से फारमोसा ले ले। नहीं तो बहुत सम्भव है कि यह आगे चल कर डच इण्डीज में बढ़ना चाहेगा इससे पाठक समझ सकते हैं कि उस समय भी कुछ लोग जापान को तुच्छ और उपेक्षणीय समझते थे और उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि जापान से उसका कोई टापू छीनना हँसी खेल नहीं है। उस समय जापान की प्रवृत्ति अपने प्रसार की ओर हो चुकी थी और वह अपने साम्राज्य का यथेष्ट विस्तार करना चाहता था। एक ओर तो एक डच जापान से फारमोसा छीनने की राय दे रहा था, और दूसरी ओर एक आस्ट्रेलियन ने जापान में यात्रा करने के उपरान्त एक समाचार पत्र में लिखा था—"मैं एक गाड़ी में कुछ जापानी अफसरों के साथ जा रहा था। वे अफसर आपस में आस्ट्रेलिया के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। वे कहते थे कि आस्ट्रेलिया बहुत उत्तम और विशाल देश है। वहाँ खूब बड़े बड़े जंगल और धान आदि की खेती के लिए बहुत अच्छी अच्छी जमीनें हैं। पर वहाँ थोड़े से गोरे जा कर जम गये हैं। थोड़ों के रहने के अस्तबल में मानों कुत्तों ने अड्डा जमा लिया है। इतना बड़ा और बढ़िया देश यों ही खाली पड़ा रहे, यह बड़े ही दुःख

आस्ट्रेलिया में कभी कोई दुर्भाव उत्पन्न हो तो उस समय अधिक बुद्धिमत्ता का काम यही होगा कि लड़ाई के कुछ जहाज आस्ट्रेलिया भेज दिये जायँ और उसके कुछ प्रान्तों पर अधिकार कर लिया जाय।"

जिस समय जापान ने चीन पर विजय प्राप्त की थी, उस समय लोग भले ही जापान के बल के सम्बंध में धोखे में रहे हों, पर जिस समय उसने रूस पर विजय प्राप्त की, उस समय किसी को उसके बलवान होने में सन्देह नहीं रह गया। पीत जाति ने गोरी जाति पर जो विजय प्राप्त की थी, उसकी दुन्दुभी सारे संसार में गूँज गई। आज कल सारे एशिया में जो जागृति हुई है, उसका आरम्भ जापान की इसी विजय से माना जाता है। गोरों की अजेयता, श्रेष्ठता और प्रभुता आदि पर सब से पहला और भीषण आघात जापान ने ही किया था। मेरेडिथ टाउन्सेण्ड ने अपने "एशिया और यूरोप" नामक ग्रंथ की भूमिका मे लिखा था—"यह प्रायः एक निश्चित सी बात है कि जापान की इस विजय से युरोप की अधिकांश महाशक्तियाँ दुःखी होंगी। एक आस्ट्रिया को छोड़ कर प्रायः सभी यूरोपियन शक्तियाँ एशिया पर विजय प्राप्त करने का बहुत बड़ा उद्योग कर रही हैं। यह उद्योग

सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि चीन में राष्ट्रीयता की जो भीषण लहरें उठ रही थीं, उन्होंने मंचू राजवंश को डुबा दिया और १९११ में वहाँ प्रजातंत्र स्थापित हो गया।

चीन में राज्यक्रांति होने से पहले वहाँ के सुधारों में मंचू राजवंश बहुत बाधक था। पर उसके लाख बाधा देने पर भी चीन में जितनी जल्दी जल्दी सुधार और उन्नति होती थी, उसे देखकर बड़े बड़े बुद्धिमान् विदेशी दाँतों उँगली दबाते थे। १९११ में चीन के सुपरिचित मि० डब्ल्यू. आर. मैनिंग ने लिखा था—"यदि आज से दस वर्ष पहले चीनी महात्मा कनफ़्यूची अपने इस देश में आते तो वे कदाचित् उसे बहुत कुछ उसी दशा में पाते, जिस दशा में वे आज से ढाई हजार वर्ष पहले छोड़ गये थे। पर यदि यहाँ इसी प्रकार उन्नति होती रही और वे यहाँ आज से दस वर्ष बाद आवें तो उनको अपने समय की दशा से उस समय की दशा में आकाश पाताल का अन्तर दिखाई देगा। चीन की परिस्थिति का बहुत अच्छी तरह निरीक्षण करने वाले एच० पी० बीच ने १९०५ के अंत में लिखा था—

१९११ में चीन में गणतन्त्रक्रांति हो गई। उन्नीसवीं शताब्दि
के अन्त में संसार की महाशक्तियाँ आपस में यही सोच समझ र
थीं कि अब चीन बिलकुल नष्ट हो जायगा। चीन का वह विश
साम्राज्य, जिसमें सारी मानव जाति का एक चतुर्थांश अर्थ
४०,००,००,००० आदमी बसते हैं, इन गोरों के कथनानुसा
इतना अधिक अवनत हो चुका था कि उसके नष्ट हो जाने में
अधिक विलम्ब नहीं था। उसके मृतप्राय शरीर के चारों ओर
संसार के बड़े बड़े गिद्ध मँडराने लगे थे। और सोच रहे थे
अभी हाल में हमने जिस प्रकार आफ्रिका को आपस में बाँट लि
है, उसी प्रकार हम चीन को भी बाँट लेंगे। वे पहले से ही
हिसाब बैठाने लग गये थे कि इसका अमुक अंश हम लेंगे
अमुक तुम ले लेना और अमुक उसको दे दिया जायगा। पर इन
गोरों के दुर्भाग्यवश चीन के ऐसे बँटवारे का समय ही न आया।
जापानियों की विजय ने चीनियों की आँखे खोल दीं और वे
समझने लग गये कि यदि हम इसी समय न सँभल जाँयगे तो हम
पर बड़ा भारी संकट आवेगा। पहले पहल चीनियों ने जब सुधार
करना चाहा, तब वहाँ की राज—माता ने उसमें बाधा दी। उस
बाधा का परिणाम यह हुआ कि चीन में प्रसिद्ध बाक्सर विद्रोह
हुआ। उस विद्रोह से चीनियों ने अच्छी शिक्षा ग्रहण की और वे
खूब सचेत हो गये। सन् १९०० के बाद से वहाँ नित्य नये सुधार
होने लगे पर ये सुधार शासक लोग अपने मन से नहीं करते थे,
बल्कि प्रजा के आन्दोलनों से विवश होकर करते थे। प्रजा में दिन
पर दिन राष्ट्रीय भावों की खूब वृद्धि होती जाती थी, और वहाँ का
मंचू राजवंश प्रजा की माँगों के अनुसार पूरा पूरा सुधार नहीं कर

दृष्टि से कई भूलें की थीं, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसका नैतिक परिणाम बहुत ही मार्के का हुआ था। उन दिनों चीन के प्रत्येक प्रांत में नित्य नये पश्चिमी ढंग के सुधार होते थे। उस समय पहलेपहल वहाँ की प्रजा राजनीतिक प्रश्नों पर उचित र से विचार करने लगी थी। अब तक तो चीन वाले केवल अप वंश आदि के कल्याण का ही विचार करते थे, पर अब उन सच्ची राष्ट्रीयता के भाव जागृत हो रहे थे और वे वास्तवि देश-हित के कामों में लग गये थे।

जिस समय युरोपीय महायुद्ध आरम्भ हुआ था, उस समय पूर्वी एशिया की यह स्थिति थी। जापान तो आधुनिक ढंग पर चलकर पूर्ण बलवान और संघटित हो चुका था और चीन यद्यपि संघटित नहीं हुआ था, तथापि पूर्ण रूप से जाग्रत अवश्य हो चुका था। महायुद्ध के कारण जापान आप से आप पूर्वी एशिया में सर्वप्रधान बन गया था और वहाँ के प्रश्नों के सम्बंध में युरोपियनों को इस योग्य ही न रहने दिया गया कि वे उन में हस्तक्षेप कर सकें। उसने चीन पर भी पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया। यद्यपि यह अधिकार प्राप्त करने में उसने बहुत कुछ अन्याय और अत्याचार किया था, तथापि उसके वे अन्याय और अत्याचार गोरों के अन्यायों और अत्याचारों से बहुत कम ही थे। जापान

चीन पर जापान अपना प्रभुत्व भी स्थापित करना चाहता है और साथ ही वह उससे डरता भी है। उसके डरने का कारण यह है कि चीन की जन-संख्या बहुत अधिक है; और यदि चीन अच्छी तरह सैनिक तैयारी कर सके तो आवश्यकता पड़ने पर वह सहज में जापान को नष्ट कर सकता है। चीन में जाग्रति तो हो ही चुकी है और वह अपना सैनिक संगठन भी करने में लगा ही हुआ है। ऐसी दशा में उसके पड़ोसियों का उससे सशंकित होना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। उधर जापान यह चाहता है कि चीन पर हमारा पूरा पूरा प्रभुत्व स्थापित हो जाय। इसलिए चीन वाले जापान के विरोधी हो रहे हैं। चीन के अधिकारों में जापान जो हस्तक्षेप करता है, उससे चीन वाले मन ही मन बहुत कुढ़ते हैं। लेकिन इतना होने पर भी जापान यह समझता है कि हमें जोखिम सह कर भी चीन पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। इस समय महाशक्तियाँ बहुत कुछ जापान के पक्ष में हैं। इसके अति-रिक्त और परिस्थितियाँ भी उसके अनुकूल ही हैं। इसलिए उसको पूरी आशा है कि चीन पर अधिकार जमाने में उसे पूरी सफलता होगी। चीन के पुराने इतिहास को देखते हुए वह यह भी समझता है कि चीन वालों का यह नियम है, कि पहले तो वे आक्रमणकारियों का खूब विरोध करते हैं, पर अन्त में जब वे यह देखते हैं कि हमारे विरोध का कोई परिणाम नहीं निकल सकता, तब वे आक्रमणकारियों का प्रभुत्व भी स्वीकृत कर लेते हैं। जापान का एक उद्देश्य यह भी है कि पूर्वी एशिया से गोरे निकाल दिये जायँ, और वहाँ पीत जाति को अपने प्रसार का क्षेत्र [illegible] मिले। वह समझता है कि हमारे इस उद्देश्य की सिद्धि में चीन जापान के

दृष्टि से कई भूलें की थीं, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसका नैतिक परिणाम बहुत ही मार्के का हुआ था। उन दिनों चीन के प्रत्येक प्रांत में नित्य नये पश्चिमी ढंग के सुधार होते थे। इस समय पहलेपहल वहाँ की प्रजा राजनीतिक प्रश्नों पर उचित रूप से विचार करने लगी थी। अब तक तो चीन वाले केवल अपने वंश आदि के कल्याण का ही विचार करते थे, पर अब उनमें सच्ची राष्ट्रीयता के भाव जागृत हो रहे थे और वे वास्तविक देश-हित के कामों में लग गये थे।

जिस समय युरोपीय महायुद्ध आरम्भ हुआ था, उस समय पूर्वी एशिया की यह स्थिति थी। जापान तो आधुनिक ढंग पर चलकर पूर्ण बलवान और संघटित हो चुका था और चीन यद्यपि संघटित नहीं हुआ था, तथापि पूर्ण रूप से जाग्रत अवश्य हो चुका था। महायुद्ध के कारण जापान आप से आप पूर्वी एशिया में सर्वप्रधान बन गया था और वहाँ के प्रश्नों के सम्बंध मे युरोपियनों को इस योग्य ही न रहने दिया गया कि वे उन में हस्तक्षेप कर सकें। उसने चीन पर भी पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया। यद्यपि यह अधिकार प्राप्त करने में उसने बहुत कुछ अन्याय और अत्याचार किया था, तथापि उसके वे अन्याय और अत्याचार गोरों के अन्यायों और अत्याचारों से बहुत कम ही थे। जापान ने यह काम इसी लिए किया था कि जिसमें वह चीन की अतुल प्राकृतिक सम्पत्ति का पूर्ण रूप से हरण कर सके, वहाँ के बाजारों में अच्छी तरह अपना माल खपा सके और वहाँ की राष्ट्रीय

उस समय दूसरे देशों के लोग उनके मुकाबले में बिलकुल नहीं ठहर सकते। यही कारण है कि सभी देशों के लोग चीनी मजदूरों से घबराते हैं और जहाँ तक हो सकता है, उनको दूर ही रखना चाहते हैं। एक चीनी डाक्टर ने अपने देशवासियों के सम्बन्ध में कहा है—"यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि चीनी लोग सभी प्रकार का परिश्रम कर सकते हैं और प्रतियोगिता में सब से आगे रहते हैं, सब को हरा सकते हैं। वे परिश्रमी समझदार और व्यवस्थित होते हैं। वे ऐसी ऐसी अवस्थाओं में भी काम कर सकते हैं जिनमें कम परिश्रमी जातियों के लोग शायद मर जायँ। वे जलती हुई आग में भी रह सकते हैं, और शरीर को गलाने वाले बरफ में भी रह सकते हैं। वे केवल थोड़ा सा चावल खाकर ही दिन रात निरन्तर परिश्रम कर सकते हैं।" वास्तव में अनेक विदेशियों का भी चीनियों के सम्बन्ध में यही विश्वास है। आस्ट्रेलिया के पिर्सन नामक एक विद्वान् ने भी आज से बहुत पहले चीनियों के सम्बन्ध में अपनी एक पुस्तक में कुछ इसी प्रकार के विचार प्रकट किये थे। वे तिब्बत की अधित्यका में भी रह सकते हैं और सिंगापुर की गरमी में भी। वे मजदूरों के काम के लिए भी अच्छे होते हैं और जल तथा स्थल सेना के काम के लिए भी बहुत उपयुक्त होते हैं। व्यापार करने का गुण तो उनमें इतना अधिक होता है कि जितना पूर्व की किसी जाति में नहीं होता। उन्हें अपना भविष्य सुधारने के लिए किसी प्रकार सहायता की आवश्यकता ही नहीं होती। हन नामक एक और विद्वान् ने चीनियों के सम्बन्ध में कहा है—"वे हजारों वर्षों से करोड़ों की संख्या में व्यवस्थित रूप से अविरत परिश्रम करने

लोग और विशेषतः चीनी पूरे सहायक होंगे। यदि चीन इस राष्ट्रीय जागृति के समय गोरों का विरोधी हो जाय और अपने देश-हित के विचारों के कारण समस्त पीत जाति में एकता स्थापित करने के उद्योग में लग जाय तो जापान को सहज में ही बड़ी भारी विजय प्राप्त हो सकती है। इससे उसका बल बहुत बढ़ जायगा और उसे अपने विस्तार का यथेष्ट अवसर मिलेगा।

उधर चीन भी यह बात अच्छी तरह समझता है कि यदि इस समय हम और जापान मिल कर एक हो जायँ तो हमारा बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। अधिकांश चीनियों का यही विश्वास है हम में शासकों को भी हजम कर जाने की शक्ति है। जापान के साथ हमारे मिलने की शर्तें चाहे कैसी ही क्यों न हों, पर अन्त में हमें लाभ का पूरा पूरा अंश मिलेगा ही। इस बात में किसी को भी संदेह नहीं हो सकता कि चीन वाले बहुत अधिक मितव्ययी होते हैं। इसका कारण यह है कि वे बहुत दिनों से अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़े स्थान मे बहुत अधिक संख्या में रहकर निर्वाह करते आये हैं। जितने थोड़े स्थान में जितने अधिक चीनियों ने आज तक निर्वाह किया है, उतने थोड़े स्थान में उतने अधिक आदमियों ने आज 'तक निर्वाह नहीं किया होगा। इसलिए कठिन से कठिन आर्थिक परिस्थितियों में रह कर भी वे बहुत अच्छी तरह अपना काम चला सकते और चलाते हैं। अपने देश में तो चीनियों की अवस्था भूखों मरने वालों से कदाचित् ही कुछ अच्छी रहती है; और जब वे दूसरे सुखी और सम्पन्न

बिलकुल यही है। आपस में वे दोनों चाहे कितना ही क्यों न लड़ें, झगड़े, पर फिर भी अवसर पड़ने पर वे सहज में समझौता कर सकते हैं और सम्भवतः समझौता कर भी लेंगे। एक बात पूर्ण रूप से निश्चित है। वह यह कि दोनों की जनसंख्या बहुत अधिक है और दोनों के पास रहने के लिए बहुत ही थोड़ा स्थान बच गया है, इसलिए दोनों ही अनिवार्य रूप से अपने निवास-स्थान का प्रसार करना चाहेंगे। ऐसी दशा में इस समय चीन और जापान में जो राजनीतिक वैमनस्य चल रहा है, वह कभी स्थायी नहीं हो सकता। और बहुत सम्भव है कि आगे चल कर जापान की पर राष्ट्रीय नीति और उच्चाकांक्षाओं में चीन भी सम्मिलित होकर उसका साथी बन जाय। दोनों मिलकर, कम से कम इन गोरों के लिए, एक हो जायें।

जापानी चाहते हैं कि पूर्वी एशिया में गोरों का कुछ भी अधिकार न रह जाय और वे वहाँ से सदा के लिए बिलकुल निकल जायें। पूर्वी एशिया में जापानी अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। इस आकांक्षा में उनके साथ पूर्वी एशिया के अन्य देशों के निवासियों की तो सहानुभूति हो ही सकती है। कदाचित् एशिया की अन्य जातियों की भी सहानुभूति हो सकती है। क्योंकि वे भी तो इन गोरों के बोझ से बेतरह दब रही हैं। जापान की पर राष्ट्रीय नीति का दूसरा उद्देश्य यह जान पड़ता है कि पूर्वी एशिया में इस समय जो स्थान गोरों के अधिकार में है, वे उनसे छीन लिये जायें और वहाँ से वे निकाल दिये जायें। यहाँ तक तो जापानियों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है इसके बाद कुछ जापानी तो ऐसे हैं जो यह चाहते हैं कि संसार की सब

आये हैं। वे इतने मितव्ययी होते हैं कि अपने सुख का कुछ
ध्यान नहीं रखते। वे ऐसी अवस्थाओं में भी बहुत अच्छी तर
रहते हैं जिनमें हमारे यहाँ के मजदूरों की जान निकल जाय।
तात्पर्य यह कि वे बहुत ही साधारण जीवन व्यतीत करने के लि
अधिक से अधिक परिश्रम कर सकते हैं।

चीनियों में जो यह सहनशीलता और मितव्यय की विशेष
है, उसके कारण वे केवल अन्य वर्णों के लोगों से बढ़ कर है
नहीं हैं, बल्कि पीतवर्ण के ही अपने दूसरे भाइयों-जैसे जापानिय
स्यामियों-आदि से भी बढ़ कर हैं। इस बात में उन्होंने जापानिय
को भी मात करके दिखला दिया है। जहाँ जहाँ चीनियों औ
जापानियों का परिश्रम, सहनशीलता और मितव्यय आदि में
मुकाबला हुआ है, वहाँ वहाँ चीनियों की पूर्ण विजय हुई है।
जापान के कोरिया और फारमोसा आदि उपनिवेशों में भी, जहाँ
जापान सरकार जापानियों को सदा सब तरह के सुभीते देने के
लिए तैयार रहती है, चीनियों की ही विजय हुई है और जापानी
उनके मुकाबले में नहीं ठहर सके हैं। जो जापान अपने यहाँ गोरे
मजदूरों को जल्दी घुसने नहीं देता और उनका सदा विरोध करता

देशों के साथ घनिष्ठता बढ़ाने के विशेष उद्योग आरम्भ कर दिये थे। जापान अपने यहाँ के विश्व विद्यालयों में पढ़ने के लिए एशिया के अन्यान्य देशों के विद्यार्थियों को बुलाता था और एशिया के हजारों विद्यार्थी वहाँ विद्याध्ययन के लिए जाने भी लगे थे। इसके अतिरिक्त जापान में अनेक ऐसी सभाएँ आदि भी बन गई जो चीन, स्याम और यहाँ तक कि भारत के साथ भी आर्थिक तथा सामाजिक आदि बन्धन दृढ़ करने का उद्योग करती थीं। प्रसिद्ध काउण्ट ओकुमा ने तो एक ऐसी सभा स्थापित कर दी, जो एशिया के सभी देशों और सभी जातियों में एकता उत्पन्न करना चाहती है। यद्यपि अभी तक ये सभाएँ आदि विशेष प्रसिद्ध नहीं हुई हैं, तथापि इन सभाओं के सम्बन्ध में कुछ बातें जानने योग्य हैं। प्रशान्त महासागर सम्बन्धी एक सभा का उद्देश्य इस प्रकार है—"इधर सौ वर्षों से प्रशान्त महासागर एक युद्ध-क्षेत्र बना हुआ है, जिसमें सभी राष्ट्र आ आकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लड़ते झगड़ते हैं। आज कल किसी राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति केवल इसी बात पर निर्भर है कि प्रशान्त सागर में उसका बल कितना है। जिसके पास प्रशान्त सागर का साम्राज्य होगा, वही सारे संसार का स्वामी होगा। जापान उस प्रशान्त महासागर के ठीक मध्य में है, इसलिए उसे प्रशान्त महासागर सम्बन्धी प्रश्नों पर अपनी स्पष्ट और विचार पूर्ण सम्मति प्रकट करनी चाहिए।"

जापान में एक इंग्लो जापानी एसोसिएशन भी है। ब्रिटिश साम्राज्य के साथ जापान का जो राजनीतिक सम्बन्ध है, उसे देखते हुए इस सभा की कार्रवाइयाँ कुछ विलक्षण ही जान पड़ती

जातियों में समानता का व्यवहार हो और हमें भी गोरों के दे में जाकर स्वतन्त्रता पूर्वक रहने का अधिकार मिले। और कु जापानी ऐसे भी हैं जो यूरोपियन साम्राज्यवादियों की तरह सारे संसार में अपना ही साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं और सब देशों को जीत कर अपने अधिकार में लाना चाहते हैं। उनकी यह आकांक्षा अनुचित तो है ही; क्योंकि इससे वर्तमान संसार के सभी दोष और भी बढ़ सकते हैं, पर साथ ही यह कुछ असम्भव भी है। असम्भव इसलिए कि संसार साम्राज्यवाद और अधिकार-लिप्सा के दुष्परिणाम अच्छी तरह भोग चुका है। अब कदाचित् वह इनके फेर में न पड़ेगा। अब तो संसार कुछ वास्तविक और स्थायी शान्ति चाहता है; और वह शान्ति तभी मिल सकती है जब प्रभुता और अधिकार कुछ घटे और समानता तथा भ्रातृभाव कुछ बढ़े। हम यहाँ यह भी बतला देना चाहते हैं कि ऐसे जापानी बहुत ही कम हैं जो सारे संसार में अपना ही साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं, पर फिर भी वे हैं बहुत ही शक्तिमान् और सरकार पर उन्हीं का सब से अधिक प्रभाव पड़ता है। हमें आशा करनी चाहिए कि आगे चल कर जापान में भी ऐसे साम्राज्यवादियों की संख्या बिलकुल घट जायगी और भावी युग साम्राज्य-वाद के नाश का ही युग होगा।

यों तो महायुद्ध से दस बारह वर्ष पहले ही लोगों को जापानियों की आकांक्षाओं का पता लग चुका था, पर महायुद्ध के [illegible]

करे, पर यह बात बिलकुल ठीक है कि पूर्वी एशिया की सभी पाठशालाओं और समाचारपत्रों पर जापान का पूरा पूरा प्रभाव है और उन पाठशालाओं के शिक्षको तथा उन समाचारपत्रों के सम्पादक ही नहीं, बल्कि वहाँ के व्यापारी तथा यात्री आदि भी लोगों को यही समझाते हैं कि एशिया केवल एशियावालों के लिए ही है।"

जापान की कृपा से पूर्वी एशिया में अब यह भाव अच्छी तरह फैल गया है कि हमारे देश में विदेशियो का अधिकार नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि महायुद्ध के कुछ पहले ही पूर्वी एशिया के यूरोपियन उपनिवेशों में वहाँ के मूल निवासियों में गोरों के विरुद्ध बहुत कुछ असन्तोष उत्पन्न हो गया था। १९०८ में फ्रान्सीसियों के इण्डो-चायना में इतना अधिक असन्तोष फैला था कि फ्रान्स को वहाँ और दस हजार नये सैनिक भेजने पड़े थे; और यद्यपि उस समय वे उपद्रव शान्त कर दिये गये थे, तथापि १९११ और १९१३ में वहाँ फिर नये षड्यंत्रों का पता लगा था। डच इण्डीज में भी इसी प्रकार के असन्तोष के अनेक लक्षण दिखाई पड़े थे और फिलिपाइन्सवाले भी स्वतंत्र होना चाहते थे। इन सब का मुख्य कारण यही था कि वहाँ के मूल निवासी अपने गोरे शासकों के दिन पर दिन बढ़ते हुए अत्याचारों से तंग आ गये थे और गोरों का बोझ उनके लिए असह्य होता जाता था। जापान को इस प्रकार के असंतोष का उत्तरदायी कहना कभी ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि असंतोष का मुख्य कारण वहाँ के गोरे शासक थे। जापान से तो उनको केवल यही शिक्षा मिली थी कि इस बोझ और दासता से किसी प्रकार बचना चाहिए।

हैं। उसकी नियमावली में, कदाचित् काउण्ट ओकुमा के हा
लिखा हुआ ही एक अंश इस प्रकार है—"जन्मतः सब
समान हैं। एशिया वालों को भी मनुष्य कहलाने का उतना
अधिकार है जितना कि यूरोपवालों को है। इसलिए यह
बहुत ही अनुचित है कि यूरोपवालों को एशियावालों पर श
करने का कोई अधिकार प्राप्त हो।" इस लेख में इंग्लैण्ड
भारत के राजनीतिक सम्बन्ध का कोई उल्लेख नहीं है। एक
१९०७ में काउण्ट ओकुमा ने भारत के सम्बंध में लिखा थ
" भारत के तीस करोड़ निवासी इन यूरोपियनों के द्वारा त्रस
रहे हैं और ये रक्षा के लिए जापानियों का मुँह ताकते हैं। उ
यूरोप की बनी हुई चीजों का बहिष्कार आरम्भ कर दिया है।
ऐसे अवसर पर यदि जापानी चूक जायँगे और भारत में न जा
पहुँचेंगे तो भारतवासी निराश हो जायँगे। प्राचीन काल से ही
भारत बहुत ही सम्पन्न देश है। सिकन्दर को यहाँ इतना खजाना
मिला था जो सौ ऊँटों पर लादा गया था और महमूद तथा
अटिला ने यहाँ से बहुत अधिक सम्पत्ति प्राप्त की थी। इस समय
तो भारतवासी हमारी ओर टक लगाये देख रहे हैं। ऐसी दशा में
हम लोग भी उस देश तक अपना हाथ क्यों न फैलावें ? जापा-
नियों को भारत, दक्षिणी महासागर तथा संसार के और और
भागों में जाना चाहिए।"

१९१० में पील नामक एक अंगरेज विचारवान ने लिखा
था—"अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रहा गया कि एक गोप
समझकर, चुपचाप और बहुत ही चालाकी के साथ एक नई चाल
चली जा रही है। जापान चाहे इसको कितना ही इनकार क्यों न

ं में यूरोपवालों का हस्तक्षेप अनुचित और असह्य है और
उस हस्तक्षेप को बिलकुल नहीं मानते।"
जापान के भिन्न भिन्न राजनीतिक दलों में अपने साम्राज्य की
 वृद्धि के सम्बन्ध में जो मत-भेद है, उसी मत भेद के अनु-
 यूरोपियन शक्तियों के साथ उनके व्यवहारों तथा भावों आदि
ी अन्तर है। इस शताब्दि के आरम्भ से ही वहाँ की सरकार
परराष्ट्रीय नीति इंग्लैंड के साथ मित्रता बढ़ाने के पक्ष में ही
है। इसीलिए उसने १९०२ में इंग्लैण्ड के साथ मित्रतापूर्ण
ध की थी, जो १९११ और १९२१ में दोहराई गई थी। १९०२
ंग्लैण्ड और जापान के साथ जो सन्धि हुई थी, उससे जापान
नजा बहुत ही प्रसन्न और संतुष्ट थी। वह संधि रूस के आक्रमणों
दि से बचने के लिए की गई थी और उससे पता चलता था कि जापान
 इंग्लैण्ड दोनों को ही रूस से भय है। पर १९११ में वह परिस्थिति
कुल ही बदल गई थी। पूर्वी एशिया में, और विशेषतः चीन
जापान ने जो अपना प्रसार और अधिकार करना चाहा था,
के कारण दूर दूर तक घबराहट फैल गई थी और पूर्वी एशिया
हने वाले अंगरेज प्रायः कहा करते थे कि इंग्लैण्ड ने जापान
साथ फिर से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करके बड़ी भारी
 की है। इसी प्रकार जापान में भी उस सन्धि के दोहराये जाने
 खूब विरोध हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ के सरकारी
ाचारपत्र बराबर इस बात पर जोर दिया करते थे कि जापान
ोपे द्वीप के साम्राज्य के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि
 समुद्रों के स्वामी इंग्लैण्ड के साथ मित्रता रखे, पर बाकी सार्व
नेक समाचारपत्र सन्धि के दो[illegible]

पूर्वी एशिया के निवासियों में स्वतंत्रता के जो भाव उत्पन्न हो रहे थे, उन को देखकर पहले से ही कुछ गोरे विचारवान सशंकित होने लग गये थे। महायुद्ध के आरम्भ होने के थोड़े ही दिनों बाद व्हेटब्ले नामक एक अंगरेज ने अपने East and West (पूर्व और पश्चिम) नामक ग्रंथ में लिखा था—पश्चिमी विचारों के प्रचार के कारण पूर्वी एशिया में एक ऐसी जागृति और एकता उत्पन्न हो रही है जो पूर्वी विचारों और उपायों से कभी हो ही नहीं सकती थी। यूरोपवाले यह देखकर बहुत ही संतुष्ट और प्रसन्न होते हैं कि हमने एशियावालों को अपने नये मार्ग पर लगा लिया, उनको आधुनिक रीति भांति सिखला दी। पर जान पड़ता है कि ऐसे संतुष्ट होने वालों में समझ की कमी है; क्योंकि अभी हाल में जापान, चीन, पूर्वी साइबेरिया और फिलिपाइन्स में जो घटनाएँ हुई हैं, उनका ठीक ठीक अभिप्राय वे लोग नहीं समझते। पहले यूरोप के बलवान् राष्ट्र पूर्वी एशिया में फूट नहीं उत्पन्न करना चाहते थे और दूसरी बातों में मनमानी चालें चलते थे। अब वहाँ के लोगों में जातीयता-सम्बन्धी वह पुरानी एकता तो बनी ही हुई है। साथ ही राजनीतिक तथा आर्थिक आदि बातों में भी नई एकता उत्पन्न हो रही है। आगे चल कर यह एकता इतनी बढ़ जायगी कि फिर पूर्वी एशिया सम्बन्धी बातों में यूरोपवालों को हस्तक्षेप करने का बहुत ही कम अधिकार रह जायगा। बल्कि सच तो यह है कि यह अवस्था इसी समय पहुँच गई है। और अब तो केवल इस बात की परीक्षा की ही देर है। ज्यों ही वह परीक्षा का समय आवेगा, त्यों ही पूर्वी एशियावाले सारे संसार पर यह बात प्रमाणित कर देंगे कि हमारे

कहते थे कि यदि अमेरिका के साथ जापान का युद्ध छिड़ जाय तो उस युद्ध में इंगलैण्ड हमारी ओर से लड़ तो सकता ही नहीं, इसलिए उसके साथ मित्रता करना व्यर्थ है। उनका यह भी कहना था कि इस नई सन्धि के कारण इंग्लैण्ड को तो जापान से अधिक लाभ पहुँचेगा और जापान को इंग्लैण्ड से कुछ भी लाभ न पहुँचेगा।

चीन के सम्बन्ध में जापान और इंग्लैण्ड के हितों में विरोध बराबर बढ़ता जाता था। इसलिए जापानी भी अंगरेजों के विरोधी होते जाते थे। १९२२ में अर्ध-सरकारी जापान मेगर्जीन में कहा गया था कि साधारणतः लोग यही समझते हैं कि इंग्लैण्ड के साथ हमारी जो मित्रता हुई है, उससे हमें कोई लाभ तो पहुँच ही नहीं सकता, उलटे वह हमारे मार्ग में बाधक हो सकती है। उसने यह भी भविष्यद्वाणी की थी कि सम्भव है कि हमें आगे चलकर रूस और जर्मनी के साथ मिलना पड़े। जर्मनी के सम्बन्ध में उसने कहा था—"जर्मनी के पुष्ट साम्राज्यवाद तथा वैज्ञानिक विकास का हमारे राष्ट्र और हमारी उन्नति पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ सकता है और इस समय हमें भी जरमनों की तरह अध्यवसाय तथा मितव्यय की ही विशेष आवश्यकता है। जरमनों की सम्पत्ति और शिल्प धीरे धीरे बढ़कर ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका की सम्पत्ति तथा शिल्प की बराबरी करने लगा है और जरमनी की जल तथा स्थल-सेना सारे संसार के लिए आदर्श हो रही है। उसने क्याऊ का जो ठीका ले लिया है, उसके कारण हमारा उसका सम्बन्ध हो गया है और वह शाण्टुङ्ग की कोयले की खानों से जो उठाना चाहता है, उसमें हमारा भी हित है। इस कथन में

तेई अत्युक्ति नहीं हो सकती कि चीन में जितना अधिक हित या स्वार्थ जरमनी का है, उतना और किसी युरोपियन शक्ति का नहीं है। अगर इंग्लैण्ड के साथ हमारी मित्रता कभी छूट जाय तो हम लोग जरमनी के साथ मित्रता स्थापित करके बहुत प्रसन्न होंगे।"

जब यूरोप में महायुद्ध छिड़ा, तब जापान को पूर्वी एशिया से गोरी महाशक्तियों को निकाल बाहर करने का बहुत अच्छा अवसर मिला और वह उस अवसर से लाभ उठाने में भी नहीं चूका। उसने क्याउचाऊ से भी जरमनी को निकाल दिया और प्रशांत महासागर में 'भूमध्य रेखा से उत्तर उसके केरोलियन, पेल्यू, मेरियन, मार्शल आदि जितने द्वीपपुंज थे, उन सब पर भी उसने अधिकार कर लिया। इतना काम करके जापान रुक गया और उसने बहुत ही सज्जनता तथा नम्रतापूर्वक यूरोप अथवा पश्चिमी एशिया में लड़ने के लिए अपनी सेनाएँ भेजने से इनकार कर दिया। उसे तो सिर्फ पूर्वी एशिया से मतलब था। वह वहाँ से गोरों को निकाल देना चाहता था और चीन पर अपना पूरा अधिकार जमाना चाहता था। इस सम्बन्ध में उसका विचार पहले से ही बहुत स्पष्ट था। १९१४ में ही वहाँ के एक अर्ध-सरकारी पत्र में कहा गया था—"चीन की सीमाओं की रक्षा के लिए जापान हर एक शक्ति से लड़ने के लिए तैयार है। जापान केवल रूस और जरमनी की उच्चाकांक्षाओं में ही बाधक न होगा, बल्कि वह यथा साध्य इंग्लैण्ड और अमेरिका को भी चीन पर हाथ साफ करने से रोकेगा। जापान के लिए चीनी समस्या की मीमांसा बहुत ही महत्वपूर्ण है और ग्रेट ब्रिटेन का उसके साथ बहुत ही थोड़ा सम्बन्ध है।"

चीन में जापान अपने पैर जमाना चाहता था और वह बरा

पर अंगरेजों को इस बात के लिए स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दि करता था कि तुम लोग हमारे मार्ग में बाधक न होना। जापान निरन्तर कई चुनौतियाँ देकर चीन को अपनी आज्ञा मानने के लि विवश किया था। उसकी इन चुनौतियों के सम्बन्ध में अंगरेजी समाचारपत्रों में खूब टीका-टिप्पणियाँ हुई थीं। उन टीकाओं से जापानी बहुत नाराज हुए थे। उनकी उस नाराजी का कु पता टोकियो के '*Universe*' ( यूनिवर्स ) नामक पत्र के सं लिखे लेख से मिल सकता है जो अप्रैल १९१५ में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में कहा गया था—" हमारे कुछ अंगरेज विरोधी शायद यह चाहते हैं कि चीन से हम जो काम करा रहे हैं, उसका वे विरोध करें। पर अंगरेज शायद यह बात भूल गये हैं कि जापान ने उनके साथ मित्रता करके १९०५ में रूस के विरुद्ध इंगलैण्ड की बहुत बड़ी सेवा की थी और इस युद्ध में भी वह इंगलैण्ड के प्रशांत महासागर और पूर्वी उपनिवेशों की रक्षा करके उनकी बहुत बड़ी सहायता कर रहा है। जापान ने इंगलैण्ड के साथ इसी लिए मेल किया था कि जिसमें चीन में रूस अपना प्रचार न कर सके और जापान को वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने का यथेष्ट अवसर मिले। आज अंगरेज लोग जापान के कार्यों का समर्थन नहीं कर रहे हैं और जापान के प्रति उनका जो कर्त्तव्य था, उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। लेकिन इंगलैण्ड को सावधान हो जाना चाहिए। यदि वह कुछ भी विचलित होगा तो जापान उसे सहन न कर सकेगा। जापान इस समय अंगरेजों का साथ छोड़कर रूस के साथ मिलने के लिए बिलकुल तैयार है; क्योंकि रूस के साथ पूर्वी एशिया के सम्बन्ध में जापान का अच्छी तरह समझौता हो सकता

है। आगे चलकर यदि काम पड़े तो वह जरमनी के साथ मिलने के लिए भी बिलकुल तैयार है। उस दशा में अंगरेजों के उपनिवेश बहुत ही संकट में पड़ जायँगे।"

इस पत्र ने रूस के साथ जापान के मिल जाने के सम्बन्ध में जो भविष्यद्वाणी की थी, वह आगे चलकर बिलकुल ठीक उतरी। क्योंकि उसके एक ही वर्ष बाद जुलाई १९१६ में जापानी और रूसी सरकारों के एक राजनीतिक लेख पर हस्ताक्षर हो गये और इस प्रकार मानों दोनों शक्तियो में मित्रता स्थापित हो गई। उस लेख के द्वारा रूस ने यह बात मंजूर कर ली थी कि अधिकांश चीन में जापान के अधिकार ही प्रधान हैं; और जापान ने यह स्वीकृत कर लिया था कि मंगोलिया और तुर्किस्तान में, जो चीन के अधीनस्थ पश्चिमी राज्य हैं, रूस को विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं। इस प्रकार जापान ने पूर्वी एशिया से एक और गोरी शक्ति को निकाल बाहर किया; क्योंकि चीन पर अधिकार प्राप्त करने की रूस की बहुत दिनों से इच्छा थी; और इसी लिए १९०२ में रूस और जापान में युद्ध हुआ था। पर इस नये समझौते के कारण रूस ने चीन पर अधिकार प्राप्त करने का विचार छोड़ दिया था।

इस बीच में जापानी समाचारपत्र बराबर अंगरेजों का विरोध करते चलते थे। उस विरोध का एक नमूना देखिए। टोकियो के यमाटो पत्र के सम्पादक ने १९१६ में लिखा था—ग्रेट ब्रिटेन हृदय से कभी यह नहीं चाहता था कि जापान के साथ मित्रता स्थापित की जाय। वह कभी हमारे साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहता; क्योंकि मन ही मन वह यह समझता था कि जापान एक ऐसी उठने वाली शक्ति है जो वर्ण और धर्म आदि के विचार से

हम से नितान्त भिन्न है। उसने तो केवल परिस्थितियों के कार
विवश होकर हमारे साथ मित्रता की थी। यदि हम यह समझ
हों कि इङ्गलैण्ड को सचमुच हमारी मित्रता का ध्यान था, तो
यह हमारी बड़ी भारी भूल है; क्योंकि वास्तव में वह कभी हम
से मित्रता स्थापित करना नहीं चाहता था। एक ओर तो उसे
भारत और फारस में रूस का डर था और दूसरी ओर उसे
जरमनों के बढ़ने का भय था। और इसीलिए उसने विवश होकर
हम से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया था।" उन्हीं दिनों
जापान में जरमनी के संबंध में भी बहुत सी अच्छी अच्छी बातें
कही जाती थीं। युद्ध-काल में जापान ने कभी जरमनों के साथ
वास्तविक वैमनस्य या शत्रु-भाव नहीं प्रकट किया। इसमें संदेह
नहीं कि जापान ने जरमनी को बड़े अच्छे ढंग से पूर्वी एशिया
से निकाल बाहर किया। पर क्याऊचाऊ में उसने जरमनों के साथ
जो युद्ध किया था, उसमें उसने जरमनों के प्रति कुछ भी घृणा
या तिरस्कार का भाव नहीं प्रकट किया था। युद्ध में जो जरमन
क़ैदी पकड़े गये थे, उनके साथ बहुत ही सम्मानपूर्वक व्यवहार
किया गया था और जापान में जो जरमन नागरिक रहते थे,
उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया गया था। जापानी लेखक
साफ कहा करते थे कि जब जरमनी पूर्वी एशिया के साथ कोई
सम्बंध न रक्खे और यह बात मान ले कि चीन में जापान को
विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं, तब फिर कोई कारण नहीं है कि जापान
और जर्मनी में मित्रता स्थापित न हो। दोनों सरकारों में ग़ैर-सरकारी
तौर पर कुछ बातें भी हुई थीं और आज तक इस बात का कोई
पता नहीं मिला कि उन दोनों में किसी प्रकार का दुर्भाव है।

१९१७ में तीन ऐसी बड़ी घटनाएँ हुईं जिनका सारे संसार की परस्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ा। एक तो युद्ध में अमेरिका सम्मिलित हुआ, दूसरे चीन ने भी उसका साथ दिया, और तीसरे रूस में राज्यक्रांति हुई। अमेरिका और चीन का युद्ध में सम्मिलित होना जापान को बहुत ही नापसन्द हुआ। जो अमेरिका युद्ध के लिए पहले कुछ तैयार न था, वही बात की बात में प्रथम श्रेणी का योद्धा बन गया था जिससे पूर्वी एशिया की परिस्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन होने की सम्भावना हो गई थी। उधर जो चीन पहले राजनीतिक दृष्टि से बिलकुल अकेला पड़ता था, वही अब महायुद्ध में सम्मिलित होने के कारण मित्र राष्ट्रों का साथी बन गया था और वहाँ उसे दो एक मित्र तथा सहायक भी मिल गये थे। यद्यपि उन लोगों की मित्रता अथवा सहायता आगे चल कर बेचारे चीन के कुछ भी काम न आई, तथापि जापान ने उसके महायुद्ध में सम्मिलित होने का घोर विरोध किया था। जब रूस में राज्य-क्रांति हो गई, तब जापान फिर चकराया। १९१६ में तो वह रूस की जारशाही से समझौता कर ही चुका था, पर अब वह जारशाही नष्ट हो गई थी और उसका स्थान नई साम्यवादी सरकार ने ले लिया था। इसलिए जापान को यह चिंता हो रही थी कि यह नई सरकार कैसी होगी, इसके भाव कैसे होंगे, इसका बल कितना होगा, आदि आदि।

पर आगे चलकर जब रूस में एक प्रकार की अराजकता फैल गई, तब जापान को अपने प्रसार के लिए नये नये क्षेत्र दिखाई देने लगे। उत्तरी मंचूरिया और पूरा साइबेरिया बिल्कुल खाली पड़ा था और वहाँ की सम्पत्ति तेरा मेरा कर दसुओं के मुँह

में पानी भर आता था। उस अवसर पर जापानी साम्राज्यवादी
तुरंत आगे बढ़ आये और इस बात के लिए आंदोलन करने लगे
कि इस समय जापान सरकार को आगे बढ़ कर अपना उद्देश्य
सिद्ध करना चाहिए। उस समय रूस में उन बोल्शेविकों की तूती
बोल रही थी जो मित्र-राष्ट्रों के विरोधी और जरमनों के पक्षपाती हो
गये थे। मित्रों को बोल्शेविकों से बहुत भय था। अतः उनकी
गति रोकने के लिए उन्होंने निश्चित किया कि साइबेरिया में सभी
राष्ट्रों की सम्मिलित सेना भेजी जाय। बस जापान को बहुत
अच्छा अवसर मिल गया और उसने मित्र-राष्ट्रों के पारस्परिक
निश्चय की उपेक्षा करते हुए साइबेरिया में अपनी बहुत बड़ी सेना
भेज दी और उसके पश्चिम में बैकाल झील तक मानों अपना
अधिकार कर लिया और सारा साइबेरिया ही ले लिया। यह बात
१९१८ की वसंत ऋतु की है। उस समय मित्र राष्ट्रों का जरमनी
के साथ घोर युद्ध चल रहा था, इसलिए उनको इतना साहस भी
न हुआ कि जापान का विरोध तो करें। पर आगे चल कर अ
अमेरिका की कृपा से युद्ध का रुख कुछ पलटा और मित्रों की
जीत होने लगी, तब मित्रों ने जापान से कैफियत तलब की। इस
बात का नेतृत्व अमेरिका ने ग्रहण किया था, क्योंकि वह जापान

गया कि जरमनी ढीला पड़ गया और बैठना चाहता है। उस समय नरम दलवालों की बन आई और साइबेरिया से बहुत सी जापानी सेनाएँ वापस बुला ली गई। लेकिन फिर भी वहाँ अधिक सैनिक बल जापान का ही था।

जरमनी के अचानक बैठ जाने और युद्ध के सहसा समाप्त हो जाने से मानो जापान के सभी मन्सूबों और सभी आशाओं पर पानी फिर गया। यद्यपि सरकार ने अपनी ओर से यही प्रकट करने का उद्योग किया कि हमें इस युद्ध की समाप्ति से कोई दुःख नहीं नहीं हुआ, तथापि जापानी प्रजा अपनी निराशा न छिपा सकी। बात यह थी कि युद्ध में जापान को लाभ ही लाभ था। युद्ध की कृपा से वह आप से आप पूर्वी एशिया का स्वामी भी बन गया था और बहुत अधिक धनवान भी हो गया था। ज्यों ज्यों युद्ध के दिन बीतते जाते थे, त्यों त्यों गोरी शक्तियाँ निर्बल होती जाती थीं और जापान का बल बढ़ता जाता था। जापान को आशा थी कि अभी यह युद्ध कम से कम एक वर्ष और चलेगा। ऐसी दशा में यदि युद्ध के सहसा समाप्त हो जाने से जापानी दुःखी और निराश हुए हों तो इसमें किसी को आश्चर्य न होना चाहिए।

जापान की इस पर-राष्ट्र नीति से कम से कम एक बात का तो पता अवश्य ही चलता है। वह यह कि पूर्वी एशिया में वह केवल अपना ही पूरा पूरा अधिकार रखना चाहता है और गोरी शक्तियों का वह वहाँ कुछ भी हस्तक्षेप नहीं चाहता। लेकिन उसके इस उद्देश्य के कारण गोरों को उससे नाराज नहीं होना चाहिए। हम यह मानते हैं कि जापान की इस उच्चाकांक्षा के कारण पूर्वी एशिया में गोरों के हित को हानि होती है। हम यह भी मानते हैं

कि इसके कारण गोरों तथा जापान में प्रतियोगिता बढ़ने तथा यु
छिड़ने की भी सम्भावना है। लेकिन कोई कारण नहीं है कि इसके
लिए जापानी दोषी ठहराये जायँ, या दुष्ट बतलाये जायँ। सभी
जातियों को अपनी रक्षा और उन्नति करने का समान अधिकार
प्राप्त है। पर किसी को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह बल
पूर्वक दूसरों को नष्ट होने के लिए विवश करे। सब लोग अपनी
रक्षा भी करना चाहेंगे और अपना प्रसार भी। जो अपनी रक्षा
करना चाहे, उसे स्वार्थी कहना और जो अपनी उन्नति करना चाहे
उसे अपराधी ठहराना बड़ी भारी मूर्खता है। ऐसा करने से
वैमनस्य, दुर्भाव आदि की ही वृद्धि होती है। गोरे तो
पश्चिमी युरोप से चलकर पूर्वी एशिया में अपना अधिकार जमावें
और फिर भी सभ्य, शिक्षित तथा परोपकारी कहलावें; और वहाँ
की रहने वाली पीत जातियाँ यदि अपनी रक्षा और उन्नति के
विचार से वहाँ अपने पैर जमाना चाहें तो गोरे उन्हें दुष्ट और
स्वार्थी बतलावें! यह कहाँ का न्याय है! अब वह समय आ रहा
है जब कि इन गोरों की मदान्धता के कारण सारे संसार में घोर
विरोध और वैमनस्य फैलेगा और कदाचित युद्ध भी होंगे। यदि
गोरे अभी से सँभल जायँगे और बुद्धिमत्ता से काम लेंगे तो संसार
अनेक अनर्थों और हानियों से बच जायगा। यदि वे इतनी सम-
झदारी भी न खर्च कर सकते हों तो भी उनको इतना अवश्य
समझना चाहिए कि अन्य जातियों को भी हमारे आक्रमणों से
अपनी रक्षा करने का पूरा अधिकार है। यदि वे कम से कम इतना
भी समझ जायँगे, तो भी भावी युद्धों की भीषणता तथा संसार
के संकट बहुत कुछ कम हो जायँगे। और यदि वे इतना भी न

मसला तो संसार के अन्य वर्णों को विवश होकर उनको रिया[illegible]
नी पड़ेगी, उनकी आँखों में तेज अंजन लगाना पड़ेगा, और उनसे उनके पापों का प्रायश्चित कराना पड़ेगा। अब गोरों को अधिकार है कि वे इनमें से जो मार्ग उचित समझें, उसे ग्रहण करें।

यूरोपीय युद्ध के सहसा समाप्त हो जाने से जापानियों के मन्सूबे मिट्टी में मिल गये थे। लेकिन इतना होने पर भी सन्धि के समय वार्सेल्स की कान्फ्रेंस में उसके कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधियों ने अपने देश के लिए बहुत बड़ा काम किया। युद्ध काल में जापान ने जितने स्थानों पर अधिकार प्राप्त किया था, उनमें से अधिकांश को उन्होंने अपने हाथ से निकलने न दिया। चीन में जापान ने जो प्रदेश प्राप्त किये थे, चीन के लाख विरोध करने पर भी वे जापान के हाथ में ही रह गये और सन्धि में इस बात का उल्लेख भी हो गया। साथ ही यह बात भी मान ली गई कि चीन के मामलों में जापान को औरों की अपेक्षा विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं। इसका कारण यह था कि मित्र-राष्ट्रों और जापान में चीन के सम्बन्ध में पहले से ही गुप्त समझौता हो चुका था। इस अवसर पर जापान ने एक और काम किया था, जो अन्य वर्णों के लोगों की दृष्टि से बहुत अच्छा था। उसने अन्य वर्णों के लोगों के नेता और सहायक का काम करते हुए यह निश्चय करा लिया था कि अन्य वर्णों के जो लोग दूसरे देशों में जा कर बसना चाहेंगे, उनको भी गोरों के समान ही अधिकार प्राप्त होंगे; और इस बात का उल्लेख उसने सन्धि में भी करा लिया था। यद्यपि अभी इस सिद्धान्त के कार्य रूप में परिणत होने के कोई विशेष उदाहरण नहीं मिलते हैं,

तथापि यही कुछ कम नहीं है कि यह सिद्धांत मान तो लिया
और इतनी बड़ी सन्धि में उसका उल्लेख तो हो गया। स्वयं
प्रतिनिधियों को ही इस बात की आशा नहीं थी कि इस नि
का पूरा पूरा पालन होगा और न वे स्वयं ही उस सिद्धांत का
पूरा पालन करना चाहते थे; क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने ही
विदेशियों

मानों चीन का मालिक बन बैठा है। अब वह जब चाहे, तब चीन पर चढ़ाई करके उसे अपने आज्ञानुमार चला सकता है। दक्षिणी चीन में उसे फूकिनका प्रान्त भी मिल गया है, जो उसके फारमोसा टापू के सामने पड़ता है। और सब से बढ़कर बात यह है कि सारे चीन में उसे खानों और रेलों आदि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं जिनके कारण सारे चीन में जापानियों का एक जाल सा बिछ गया है।

चाहे चीन पर जापान का प्रभुत्व सदा बना रहे और चाहे आज ही दोनो में समानता तथा मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हो जाय, पर एक बात पूर्ण रूप से निश्चित है। वह यह कि अब पूर्वी एशिया में गोरों का प्रसार असम्भव हो गया है। अब यदि गोरे फिर पूर्वी एशिया में अपना प्रसार करना चाहेंगे तो उसका परिणाम यही होगा कि जापान के साम्राज्यवादी और चीन के राष्ट्रीय दल वाले मिलकर एक होजायंगे और पूर्वी एशिया में गोरों के अधिकार में जो थोड़े बहुत स्थान बच गये हैं, उन स्थानों से भी गोरे निकाल दिये जायँगे।

इसलिए इस बात का कुछ विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है कि यह बढ़ती हुई आबादी अपने देश में कहाँ तक खप सकेगी और दूसरे किन किन देशों में उसका सहज में निकास और निर्वाह हो सकेगा, क्योंकि आगे चलकर वर्ण सम्बन्धी जो झगड़ा होगा उसकी भीषणता आदि पर इस निकास और निर्वाह का बहुत प्रभाव पड़ेगा।

पहले जापान को ही लीजिये। इस समय वहाँ की आबादी लगभग ६,००,००,०००, है और उसमें प्रति वर्ष प्रायः ८,००,००० की वृद्धि होती है। यद्यपि चीन की आबादी का कोई ठीक ठीक लेखा इस समय प्राप्त नहीं है, तथापि वहाँ की ४०,००,००,००० आबादी में जापान की जन-संख्या की वृद्धि के हिसाब से प्रति वर्ष ६०,००,००० की वृद्धि होनी चाहिए। कृषि के विचार से इन दोनों देशों में जहाँ तक आबादी हो सकती है, वहाँ तक तो आबादी हो ही चुकी है। अब यदि वहाँ की बढ़ती हुई आबादी को भी अपने देश में ही रहना और निर्वाह करना पड़े तो कुछ अंशों में यह भी सम्भव है, जब कि वहाँ आधुनिक प्रणालियों और मशीनों आदि की सहायता से खेती-बारी की जाय। दोनों ही देशों में इस समय थोड़ी बहुत ऐसी जमीन है जो आबाद हो सकती है। जापान के उत्तरी टापू होकैडो में इस समय बहुत जमीन खाली पड़ी है जो आबाद की जा सकती है। इसके अतिरिक्त और टापुओं में भी थोड़ी बहुत जमीन मिल सकती है। हाँ, कोरिया और मंचूरिया में बहुत अधिक ऐसी जमीन है जो आबाद हो सकती है। पर वहाँ कोरियनों और चीनियों में जो प्रतियोगिता

पित नहीं हो सकता। चीन साम्राज्य में ऐसी जमीन बहुत अधिक है जो बसाई जा सकती है। मंगोलिया और चीनी तुर्किस्तान में यदि रेलें और सड़कें आदि बन जायें तो वहाँ बहुत सी जमीन निकल सकती है जिससे लाखों करोड़ों चीनियों का निर्वाह हो सकता है। मंचूरिया में चीनियों की आबादी बढ़ भी रही है; और जापान चाहे कितनी ही बाधाएँ क्यों न खड़ी करे, पर अभी वहाँ चीनियों की आबादी बढ़ती ही जायगी। तिब्बत की अधित्यका में यद्यपि बहुत अधिक जाड़ा पड़ता है, तथापि वहाँ भी कुछ लोगों का निर्वाह हो ही सकता है।

तथापि चीन या जापान में इतनी ज्यादा गुंजाइश नहीं है कि वहाँ की दिन पर दिन बढ़ती हुई आबादी वहाँ खप सके। दस-बीस वर्ष के लिए तो कोई हर्ज नहीं है, पर हाँ दो चार पीढ़ियों के बाद वहाँ जमीन का भीषण अकाल हो जायगा। उस दशा में चीनियों और जापानियों को विवश होकर पूर्वी एशिया के उन भागों में प्रवेश करने का उद्योग करना पड़ेगा जो इस समय गोरों के शासन में है और जिनमें प्रायः पीत वर्ण के लोग बसते हैं। अथवा उन देशों में घुसना पड़ेगा जिनमें गोरों का शासन भी है और गोरों की ही आबादी भी। जिन देशों में इस समय गोरों का केवल शासन है और जिनमें गोरों की नहीं बल्कि अन्य वर्णों के लोगों की आबादी है, उन देशों में तो सम्भव है कि गोरी जातियाँ पीत वर्ण वालों की आबादी का उतना अधिक विरोध न करें, पर जिन देशों में गोरों का ही शासन और गोरों की ही आबादी है, उन देशों में यदि पीत वर्ण वाले प्रवेश करना चाहेंगे तो गोरे स्वभावतः उनका विरोध करेंगे और उस दशा में दोनों में युद्ध होगा।

पहले उन देशों को लीजिए जिनमें शासन तो गोरों का और आबादी अन्य वर्णों की है। चीन और आस्ट्रेलिया के बीच में जितने प्रायद्वीप और द्वीपपुंज हैं, उनमें पीत वर्ण वाले और विशेषत: चीनी बहुत अच्छी तरह जा कर बस सकते हैं। वास्तव में वे सब देश अन्य वर्णों के ही निवास-स्थान हैं और उनमें से केवल स्याम को छोड़कर शेष सब देश राजनीतिक दृष्टि से गोरों के ही अधिकार में हैं। उन विशाल देशों के स्वामी ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स, हालैण्ड और अमेरिका के संयुक्त राज्य हैं। उन देशों के निवासी बहुत दिनों से गुलामी में रहने के कारण, भारतवासियों की भांति, प्राय: अयोग्य और निर्बल हो गये हैं। हम यह मानते हैं कि उनमें कुछ जंगली भी हैं, पर जो कुछ कुछ सभ्य भी हैं, वे भी सब प्रकार से अशक्त ही कर दिये गये हैं। इस दशा में उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि जिस समय चीनी उनके देशों में जाकर बसने लगेंगे, उस समय वे किसी प्रकार उनका विरोध कर सकेंगे और उनके मुक़ाबले में ठहर सकेंगे। ब्रिटिश स्ट्रेटस सेटिलमेण्टस, उत्तर बोर्नियो, फ्रेन्च इण्डोचाइना डच इण्डीज, अमेरिकन फिलिपाइन्स, अथवा स्वतंत्र स्याम में ही जहाँ तक हो सका है, चीनियों ने पहुँच कर वहाँ के निवासियों की अपेक्षा अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया है। वे वहाँ जाकर बस गये हैं और वहीं के निवासियों की अपेक्षा अच्छी तरह रहते हैं। स्ट्रेटस सेटिल्मेण्टस में चीनियों को यथेष्ट स्वतंत्रता है, इसलिए वहाँ के मूल निवासी तो मानों चीनियों के मुक़ा-

प्रसार रोकने के लिए यदि कोई बन्धन है तो वह प्रायः कानूनी बन्धन ही है जो बनावटी है और आवश्यकता पड़ने पर सहज में तोड़ा जा सकता है। बहुत से विचारवान् तो अभी से यह कहने लगे हैं कि इन प्रदेशों के मूल निवासी बिलकुल नष्ट हो जायँगे और वहां चीनियों की पूरी बस्ती बस जायगी। एलेन आयर्लेंएड नामक एक विद्वान् का मत है—"यह अनुमान करने के यथेष्ट कारण हैं कि पूर्वी और दक्षिण एशिया में कर्क रेखा और मकर रेखा के बीच में, भारतवर्ष को छोड़कर और जितने प्रदेश हैं, उन सब में चीनी यदि अपनी वर्तमान गति से ही बढ़ते रहे, तोभी धीरे धीरे वे उन सब प्रदेशों के मूल निवासियों को हजम कर जायेंगे और उनका स्थान स्वयं ग्रहण कर लेंगे"। सम्भव है कि यह बात ठीक हो; और ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि चीनियों के प्रसार के लिए पूर्वी एशिया में यथेष्ट स्थान है। पर यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चीनियों का यह प्रसार तभी हो सकता है जब और देशों के निवासियों का चीनियों के प्रसार के लिए नष्ट हो जाना अभीष्ट मान लिया जाय। पर प्रश्न तो यह है कि क्या गोरों के पास बहुत सी भूमि बिलकुल खाली पड़ी रहे और चीनियों के प्रसार के लिए अन्य देशों के निवासियों का सहज में नाश हो जाय? क्या वर्तमान सभ्य संसार ऐसी परिस्थिति चुपचाप देखने के लिए तैयार है? और फिर यह कौन कह सकता है कि जिस समय उन देशों के निवासियों का चीनियों के प्रसार के कारण नाश होने लगेगा, उस समय वे भी चैतन्य न हो जावेंगे, और उन चीनियों के प्रसार का भी उसी प्रकार विरोध न करने लगेंगे जिस प्रकार इस समय संसार के अन्य वर्णों के

कर सकते कि वहाँ जाड़ा बहुत पड़ता है। ऐसी दशा में यह स्वतः सिद्ध है कि अभी हमने एशिया के जो गरम देश चीनियों के बसने योग्य बतलाये हैं, वे जापानियों के किसी काम के नहीं हैं। जापानी उन प्रदेशों का अधिक से अधिक वही उपयोग कर सकते हैं जो इस समय गोरे कर रहे हैं। अर्थात् वे वहाँ जाकर प्राकृतिक सम्पत्ति आदि से लाभ उठा सकते हैं, जो सम्पत्ति वास्तव में उन देशों के मूल निवासियों की होनी चाहिए, उस पर बलपूर्वक वे अपना अधिकार कर सकते हैं— उसका अपहरण कर सकते हैं। जापान की बढ़ती हुई प्रजा वहाँ किसी प्रकार बस नहीं सकती। यदि जापानी वहाँ जाकर केवल व्यापार आदि भी करने लगें तो भी एक झगड़ा बना ही रह जायगा। वह यह कि चीनी तो वहाँ जाकर बसते ही रहेंगे; उस दशा में जापानियों को उनके साथ भीषण प्रतियोगिता करनी पड़ेगी; क्योंकि चीनी लोग जिस प्रकार जापानियों की अपेक्षा बसती बसा कर रहने में तेज हैं, उसी प्रकार वे जापानियों की अपेक्षा व्यापार करने में भी तेज हैं। चाहे इस समय जापान ने पूर्वी साइबेरिया में अपनी सेना भले ही रख छोड़ी हो, पर फिर भी उसकी बढ़ती हुए जन-संख्या का वहाँ किसी प्रकार निर्वाह नहीं हो सकता। हाँ, चीनी वहाँ भी मजे में रह सकते हैं। यदि आज थोड़े से चीनी वहाँ आ कर बस जायँ तो थोड़े ही दिनों में वहाँ उनकी बहुत बड़ी बस्ती तैयार हो सकती है। पर जो जापानी होकैडो का जाड़ा भी नहीं सह सकते, वे साइबेरिया के जाड़े में क्योंकर अपना निर्वाह कर सकेंगे?

इस प्रकार जापानी न तो एशिया के उत्तर के खाली मैदानों

में ही बस सकते हैं और न उसके दक्षिण के कम बसे हुए भ
में ही। यदि उनका निर्वाह हो सकता है तो उत्तर ... [illegible]
आस्ट्रेलिया में ही। पर उन सब स्थानों पर गोरों ने पूरा पूरा की
कार जमा रखा है और वहाँ वे अन्य वर्णों के लोगों को घुस
ही नहीं देते। यदि जापानियों को अंत में विवश होकर [illegible]
हो पड़ा, तो भीषण युद्ध निश्चित और अनिवार्य है। उस दश
में सारे संसार की शांति का भंग हो जायगा। जापानियों में देश
प्रेम पराकाष्ठा का है, वे अपने देश को सारे देशों का नेता बनान
चाहते हैं और सब प्रकार से अपना प्रसार करना चाहते हैं। वे
अपने पड़ौस में विकराल चीन को देखते हैं जिसकी वृद्धि बहुत है
भीषण रूप से हो रही है। वे अच्छी तरह समझते हैं कि यदि
हम अपने निवास-स्थान और राजनीतिक अधिकार का विस्ता

अपना आदर्श मान रखा है और उनके बेड़ों को प्रशांत महासागर में वैसी ही विजय प्राप्त होगी, जैसी नेल्सन को ट्राफल्गार में हुई थी। चाहे जापान यह बात मुँह से कहे और चाहे न कहे, पर इसमें संदेह नहीं कि उसका मुख्य उद्देश्य प्रशांत महासागर पर प्रभुत्व प्राप्त करना ही है। चाहे इस समय सारे संसार में कितनी ही शान्ति क्यों न हो, पर फिर भी कोई यह नहीं कह सकता कि सब राष्ट्रों में कब भीषण युद्ध छिड़ जायगा। जापान को विजय प्राप्त करने के लिए अंगरेजों की सहायता की आवश्यकता नहीं है। जापान और ग्रेट ब्रिटेन की मित्रता जब चाहे तब टूट जाय। उससे जापान कभी परास्त नहीं होगा। जापान अपने जहाजों के भरोसे नहीं बल्कि अपने आदमियों के भरोसे विजय प्राप्त करेगा।"

अधिक शान्त दल का शासन स्थापित हो जायगा तो वहाँ अ
को एक बहुत अच्छा मित्र मिल जायगा। हम लोग परि
बाल्कन, जरमनी, फ्रान्स और इटली की ओर बढ़कर
के बहुत बड़े अंश को अपने अधिकार में ला सकते हैं।
महासभा में एंग्लो सेक्सनों ने जो जो अत्याचार किये हैं,
कारण उनसे देवता भी रुष्ट हो गये हैं और मनुष्य भी। कुछ
अपने छोटे मोटे स्वार्थों के कारण इस समय उनका साथ
हैं। पर अन्तिम निर्णय उसी प्रकार होगा जिस प्रकार हमने
बतलाया है।"

नीचे दिये हुए एक लेख से भी, जो १९१६ में लिख
था, यह पता चल सकता है कि जापानियों की साम्राज्य

और तब उसे अपने आय में मिलाकर हम ५, ००, ००, ००० से ५०,००,००,००० हो जायँगे. और हमारे पास के करोड़ों रुपये अरबों तक जा पहुंचेंगे।"

"हमारे भाइयों ने अबतक कैसे अच्छे अच्छे काम किये हैं! हमारे राजनीतिज्ञ उनको कैसे अच्छे मार्ग पर ले गये हैं! आज तक हम लोगों ने कोई भूल तो की ही नहीं। और अब आगे भी हम से कोई भूल न होनी चाहिए। १८९५ में हमने चीन पर विजय प्राप्त की थी। पर उस समय हमने लूट में जो माल पाया था, वह रूस, जरमनी और फ्रांस ने हम से छीन लिया। तब से आज तक हमारा बल कितना बढ़ा है! और अब भी वह बराबर बढ़ता ही जाता है। दस ही बरस के अन्दर हमने रूस से बदला चुका लिया, उसको यथेष्ट दण्ड दिया और उससे अपना माल वापस छीन लिया। बीस बरस में हमने जरमनी से बदला चुका कर अपना माल वापस ले लिया। फ्रांस से बदला चुकाने की अभी कोई जल्दी है ही नहीं उसने अभी यह बात 'अच्छी तरह समझली है कि जब उसके देश में शत्रु घुस आये, तब हमें उसकी रक्षा के लिए अपने सैनिक क्यों नहीं भेजे! यदि हम अपने सैनिक फ्रान्स भेज देते तो अवश्य ही तुरन्त जरमनों को वहाँ से निकाल देते। पर फ्रान्स को शिक्षा देने के लिए हमने ऐसा नहीं किया। एशिया में उसके जो उपनिवेश आदि हैं, उनकी रक्षा वह अभी से अच्छी तरह करने लगा है। पर फिर भी वह समझता है कि अन्त में उसके उपनिवेश हमारे ही हाथ में आ जायँगे। पर उससे निपटने के लिए जल्दी की कोई आवश्यकता नहीं है। चोरों की सब लोग निन्दा करते हैं, और कीर्तिपूर्वक विजय प्राप्त करने वालों की प्रशंसा।"

अधिक शान्त दल का शासन स्थापित हो जायगा तो वहां जापान को एक बहुत अच्छा मित्र मिल जायगा। हम लोग परिचम में बाल्कन, जरमनी, फ्रान्स और इटली की ओर बढ़कर संसार के बहुत बड़े अंश को अपने अधिकार में ला सकते हैं। शान्ति महासभा में एंग्लो सेक्सनों ने जो जो अत्याचार किये हैं, उनके कारण उनसे देवता भी रुष्ट हो गये हैं और मनुष्य भी। कुछ लोग अपने छोटे मोटे स्वार्थों के कारण इस समय उनका साथ दे रहे हैं। पर अन्तिम निर्णय उसी प्रकार होगा जिस प्रकार हमने अभी बतलाया है।"

नीचे दिये हुए एक लेख से भी, जो १९१६ में लिखा गया था, यह पता चल सकता है कि जापानियों की साम्राज्य-लिप्सा कहाँ तक बढ़ी हुई है—

अधिक शान्त दल का शासन स्थापित हो जायगा तो वहां जापान को एक बहुत अच्छा मित्र मिल जायगा। हम लोग पश्चिम में बाल्कन, जरमनी, फ्रान्स और इटली की ओर बढ़कर संसार के बहुत बड़े अंश को अपने अधिकार में ला सकते हैं। शान्ति महासभा में एंग्लो सेक्सनों ने जो जो अत्याचार किये हैं, उनके कारण उनसे देवता भी रुष्ट हो गये हैं और मनुष्य भी। कुछ लोग अपने छोटे मोटे स्वार्थों के कारण इस समय उनका साथ दे रहे हैं। पर अन्तिम निर्णय उसी प्रकार होगा जिस प्रकार हमने अभी बतलाया है।"

नीचे दिये हुए एक लेख से भी, जो १९१६ में लिखा गया था, यह पता चल सकता है कि जापानियों की साम्राज्य-लिप्सा कहाँ तक बढ़ी हुई है—

और तब उसे अपने श्रार में मिलाकर हम ५, ००, ००, ००० से ५०,००,००,००० हो जायँगे, और हमारे पास के करोड़ों रुपये अरबों तक जा पहुंचेंगे।"

"हमारे भाइयों ने अबतक कैसे अच्छे अच्छे काम किये हैं! हमारे राजनीतिज्ञ उनको कैसे अच्छे मार्ग पर ले गये हैं! आज तक हम लोगों ने कोई भूल तो की ही नहीं। और अब आगे भी हम से कोई भूल न होनी चाहिए। १८९५ में हमने चीन पर विजय प्राप्त की थी। पर उस समय हमने लूट में जो माल पाया था, वह रूस, जरमनी और फ्रांस ने हम से छीन लिया। तब से आज तक हमारा बल कितना बढ़ा है! और अब भी वह बराबर बढ़ता ही जाता है। दस ही बरस के अन्दर हमने रूस से बदला चुका लिया, उसको यथेष्ट दण्ड दिया और उससे अपना माल वापस छीन लिया। बीस बरस में हमने जरमनी से बदला चुका कर अपना माल वापस ले लिया। फ्रांस से बदला चुकाने की अभी कोई जल्दी है ही नहीं उसने अभी यह बात अच्छी तरह समझली है कि जब उसके देश में शत्रु घुस आये, तब हमें उसकी रक्षा के लिए अपने सैनिक क्यों नहीं भेजे! यदि हम अपने सैनिक फ्रान्स भेज देते तो अवश्य ही तुरन्त जरमनों को वहाँ से निकाल देते। पर फ्रान्स को शिक्षा देने के लिए हमने ऐसा नहीं किया।

हम वहाँ से आरम्भ करेंगे तो गोरी जातियाँ तुरन्त सचेत हो जायँगी और मय मिल कर हमें सदा के लिए उन्हीं पुरानी असह्य सीमाओं में बन्द कर देंगी । इसलिए हमें पहले समुद्र की ओर ही बढ़ना चाहिए । पर समुद्र की ओर बढ़ने का मतलब पश्चिमी अमेरिका तथा उसके मार्ग में पड़ने वाले टापुओं की ओर बढ़ना है । और उसके साथ ही आस्ट्रेलिया और भारत का भी सफाया हो जायगा । और तब फिर बाकी संसार के लिए, बाकी उत्तर अमेरिका के लिए, लड़ना रह जायगा । और जब एक बार उत्तर अमेरिका हमारे हाथ में आ जायगा, तब फिर सब कुछ हमारे हाथ में आ जायगा । उस समय हमारे हाथ में ऐसा राज्य हो जायगा जो सब प्रकार से हमारे सरीखे राष्ट्र के लिए उपयुक्त होगा ।"

"केवल उत्तर अमेरिका में ही अरबों आदमी रह सकेंगे और वे अरबों आदमी जापानी और उनके गुलाम होंगे । न तो सूखा हुआ एशिया, न पुराना यूरोप जो अपनी विचित्र और पुरानी परम्पराओं तथा रिवाजों के कारण इतिहास आदि के विचार से सुरक्षित रहना चाहिए—और न गरम आफ्रिका ही हम लोगों के लिए उपयुक्त है। आह! वह हरा-भरा बढ़िया उत्तर अमेरिका हमारे ही द्वारा आविष्कृत होता और हम ही उसके मालिक होते ! पर खैर, अगर ऐसा नहीं हुआ तो अब हम उससे भी बढ़िया उपाय करके, उस पर विजय प्राप्त करके उसे अपने अधिकार में लावेंगे ।"

इसके उपरान्त इन जापानी साम्राज्यवादी ने इस बात पर विचार किया है कि यह कार्य-क्रम किस प्रकार पूरा किया जा सकता है । यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह लेख

"सवारी के लिए हमें चीन वहुत वढ़िया घोड़ा मिल गया है। पर यह घोड़ा वहुत दिनों से जंगल में घूमता रहा है और कुछ कमजोर हो गया है। उसे कुछ खरहरे, दाने, घास और सधाने की जरूरत है। दूसरी वात यह है कि अभी काठी आदि भी उसपर अच्छी तरह नहीं रखी गई है। क्या यह घोड़ा और यह काठी युद्ध की कठिनाइयों में ठीक ठीक काम दे सकेंगे? और फिर युद्ध की वे कठिनाइयां कैसी और कितनी होंगी?"

"उस मोटे ताजे वेवकूफ अमेरिका के पास धन तो वहुत है और वह भावुक भी वहुत है। पर उसमें न तो संगठन है और न शासन करने की योग्यता यदि वह अकेला हमारे मुकावले पर आवे, तो हमें अपने चीनी घोड़े की भी जरूरत नहीं है। हमें अकेले ही उससे निपट लेंगे। अभी हाल में हमारे एक मित्रने अमेरिका वालों के सम्वन्ध में वहुत ठीक कहा था कि वे ऐसे चोर हैं जिनका हृदय खरगोशों का सा है। किसी योद्धा जाति के लिए अमेरिका कोई शत्रु नहीं है, वल्कि ऐसा पका हुआ तरवूज़ है जो काटकर खाने के लिए विलकुल तैयार है। पर हाँ, इंग्लैण्ड और जरमनी आदि दूसरे योद्धा राष्ट्र मौजूद हैं। क्या वे हमें अकेले ही ऐसे वढ़िया माल पर हाथ साफ करने देंगे?"

"लेकिन चीन को अपना घोड़ा वनाकर क्या हमें पहले स्थल की ओर वढ़ना चाहिए? क्या हमें भारत पर आक्रमण करना चाहिए? अथवा प्रशान्त महासागर को अपने हाथ में लेना चाहिए, जिसे प्राप्त करने का हमें उतना ही अधिकार है जितना इंग्लैण्ड को एटलान्टिक अपने हाथ में रखने का है! हमारे लिए भारत आकर्षक और सहज तो है, पर उसमें खतरा भी है। यदि

## धूसर वर्ण

### (३)

धूसर वर्ण के लोग पश्चिमी तथा मध्य एशिया में बसते हैं। उनमें से कुछ तो दक्षिणी तथा पश्चिमी एशिया में हैं और कुछ उत्तर आफ्रिका में। धूसर और पीत वर्ण के लोगों की संख्या में कुछ विशेष अंतर नहीं है। यदि पीत वर्णवाले ५०,००,००,००० हैं तो धूसर वर्ण वाले ४५, ००, ००, ००० हैं। पर अधिकांश दूसरी बातों में इन दोनों वर्णों में बहुत अधिक अन्तर है। पहली बात तो यह है कि पीत वर्ण वाले एशिया के एक विशिष्ट भाग में ही रहते हैं, पर धूसर वर्णवाले बहुत दूर दूर तक फैले हुए हैं। उनके रहने के देशों का विस्तार अपेक्षा कृत बहुत अधिक है और उन देशों की प्राकृतिक अवस्थाओं में भी बहुत भेद है।

इस भौगोलिक भेद के कारण धूसर वर्ण के भिन्न भिन्न अंशों के इतिहास में भी बहुत अन्तर है और उनके स्वभाव तथा गुण आदि में भी। पीत वर्ण के लोग तो शुरू से सारे संसार से अलग रहते आये हैं। पर धूसर वर्ण के लोग दूर दूर तक फैले होने के कारण प्रायः विदेशियों के प्रभाव में पड़ते रहे हैं और उनमें समय समय पर अनेक प्रकार के विकास और परिवर्तन होते रहे हैं। बहुत

जिस समय लिखा गया था, उस समय अमेरिका वाले बड़े शान्तिप्रिय थे और यह देश किसी से लड़ने भिड़ने के लिए जरा भी तैयार न था। यह ठीक है कि सभी जापानी ऐसे रोगचिन्ह साम्राज्यवादी नहीं हैं। पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे ही विचार वालों का एक जबरदस्त दल वहाँ है और उससे गोरी जातियाँ मन ही मन भयभीत हो रही हैं।

यह भाव और भी तीव्र रूप धारण कर लेता है जब उनको विदेशियों अर्थात् गोरी जाति के लोगों से काम पड़ता है। धूसर और गौर वर्ण के लोगों का विरोध बहुत दिनों से चला आता है। कभी धूसर वर्ण के लोग गोरों पर आक्रमण करके उनके स्वामी बन जाते हैं और कभी गोरे धूसर वर्ण वालों पर अधिकार कर लेते हैं। यह चक्र बहुत दिनों से बराबर चला ही चलता है। इधर चार सौ वर्षों से गोरी जातियों ने धूसर वर्ण वालो पर अधिकार जमा रक्खा है। विशेषतः इधर सौ वर्षों से तो गोरों ने धूसर वर्णवालों पर अभूतपूर्व रूप से आक्रमण आरम्भ कर दिया है, और धूसर वर्णवालों का सारा समय बड़ी कठिनता से अपना बचाव करने में ही बीतता है।

यहाँ पीत वर्ण और धूसर वर्ण के लोगों में एक और अन्तर है। वह अन्तर यह है कि पीत वर्ण वालों ने तो पहले पहल गत शताब्दि के मध्य में ही गोरों के कष्टदायक आक्रमण का अनुभव किया था, और उस समय तक भी उन्होंने अपनी पूरी राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं खो दी थी, और जब उन्होंने इन गोरों के सामने दबकर अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता खो दी, तब शीघ्र ही उन्हें अपनी परतंत्रता का ज्ञान हो आया और उन्होंने पुनः स्वतंत्र होने के लिए उद्योग आरम्भ कर दिया। इस समय तक उन्होंने बहुत से अंशों में अपनी खोई हुई स्वतंत्रता फिर से पा भी ली है। पर धूसर वर्णवालों पर गोरों का आक्रमण बहुत पहले से आरम्भ हो गया था; क्योंकि ये उनके निवास-स्थान के समीप ही पड़ते थे और इनके देशों पर अनेक अंशों में गोरों का अधिकार भी हो गया था। यद्यपि आज तक धूसर वर्ण वालों के कुछ देशों की थोड़ी बहुत स्वतंत्रता बनी हुई है,

दिनों से यही होता रहा है कि धूसर वर्ण के इन भिन्न भिन्न देशों में या तो विदेशी आकर बसते रहे हैं और या वे उनपर आक्रमण करके विजय प्राप्त करते और उनके देश में ही रहते आये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि या तो उनमें बहुत से विदेशी समा गये हैं, और या विदेशियों के आ मिलने के कारण उनमें कई प्रकार की वर्ण-संकरता उत्पन्न हो गई है। पीत वर्ण वालों में जो एक निज की विशेषता पाई जाती है, वह विशेषता धूसर वर्ण में नहीं है। बल्कि उसके कई अलग अलग भाग हो गये हैं, जो अनेक बातों में एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। इनमें से फारस और तुर्की के रहने वाले कुछ गोरे हो गये हैं और भारत वासी तथा यमन के अरब प्रायः धूसर वर्ण के ही रह गये हैं उधर हिमालय तथा मध्य एशिया में रहने वाले धूसर वर्ण के लोगों में पीत वर्णवालों का कुछ मिश्रण हो गया है। पीत और गौर वर्ण के लोगों की सभ्यता में एक निज की विशेषता अथवा विभिन्नता है, जो इन धूसर वर्ण वालों की सभ्यता में नहीं है। धूसर वर्ण के अधिकांश लोगों में यदि कोई एकता है तो वह धार्मिक एकता है, क्योंकि वे अधिकांश में मुसलमान हैं। पर धूसर वर्ण के लोगों का मुख्य निवास-स्थान यह भारत है जिसके अधिकांश निवासी हिन्दू हैं और जिसमें केवल एक पंचमांश ही मुसलमान रहते हैं।

परन्तु इतना होने पर भी इन धूसर वर्णवालों में एक बात की एकता है। चाहे उन लोगों में पारस्परिक झगड़े कितने ही क्यों न हो पर वे सब इतना अवश्य समझते हैं कि हम सब एशिया के निवासी हैं। उनमें यह भाव हज़ारों वर्षों से है और आज तक ज्यों का त्यों पाया जाता है। विशेषतः उस समय उनका

मुख्य कारण हैं। एक तो यह कि धूसर वर्ण के लोग इतने दिनों से परतन्त्रता में रहते रहते उकता गये हैं और उनमें स्वतन्त्रता की लालसा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। और दूसरे यह कि उन पर गोरों का अत्याचार भी दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। इनमें आरम्भ से प्रधान विरोधी मुसलमान रहे हैं। पर अब और लोग भी उस विरोध में सम्मिलित हो गये हैं। पर इस सम्बन्ध में कुछ विचार करने से पहले हम एक और बात का विचार कर लेना चाहते हैं।

धूसर वर्ण के लोगों के निवास स्थान चार प्रधान देश हैं और देशों के अनुसार उनके चार प्रधान वर्ग भी हैं। वे चारों देश भारत, ईरान, अरबिस्तान और तुर्किस्तान हैं। इनमें से भारतवर्ष धूसर वर्ण वालों का प्रधान देश है। सारे धूसर वर्ण के दो तिहाई अर्थात् ३०,००,००,००० से कुछ अधिक आदमी भारत में बसते हैं। ईरान या फारस छोटा सा देश है और उसमें १,५०,००,००० आदमी रहते हैं। धूसर वर्ण के मुसलमानों पर उसका विशेष प्रभाव है। अरब और उसके आस पास के सिरिया मेसोपोटामिया, और उत्तर आफ्रिका का कुछ अंश मिला कर अरबिस्तान कहलाता है; क्योंकि इन प्रदेशों में या तो अरबी बोलने वाले और या अरबों के वंशज रहते हैं, जो प्रायः सब के सब मुसलमान हैं। इन अरबों की संख्या सब मिला कर ४,००,००,००० है, जिनमें से तीन चौथाई उत्तर आफ्रिका में रहते हैं। तुर्किस्तानियों में वे सब लोग आ जाते हैं जो कुस्तुन्तुनिया से मध्य एशिया तक बसते हैं। इनमें खास तुर्क, दक्षिण रूस तथा ट्रांस-काकेशिया तातार और मध्य एशिया के तुर्कमान सभी आ जाते हैं।

मुख्य कारण हैं। एक तो यह कि धूसर वर्ण के लोग इतने दिनों से परतन्त्रता में रहते रहते उकता गये हैं और उनमें स्वतन्त्रता की लालसा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। और दूसरे यह कि उन पर गोरों का अत्याचार भी दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। इनमें आरम्भ से प्रधान विरोधी मुसलमान रहे हैं। पर अब और लोग भी उस विरोध में सम्मिलित हो गये हैं। पर इस सम्बन्ध में कुछ विचार करने से पहले हम एक और बात का विचार कर लेना चाहते हैं।

धूसर वर्ण के लोगों के निवास स्थान चार प्रधान देश हैं और देशों के अनुसार उनके चार प्रधान वर्ग भी हैं। वे चारों देश भारत, ईरान, अरबिस्तान और तुर्किस्तान हैं। इनमें से भारतवर्ष धूसर वर्ण वालों का प्रधान देश है। सारे धूसर वर्ण के दो तिहाई अर्थात् ३०,००,००,००० से कुछ अधिक आदमी भारत में बसते हैं। ईरान या फारस छोटा सा देश है और उसमें १,५०,००,००० आदमी रहते हैं। धूसर वर्ण के मुसलमानों पर उसका विशेष प्रभाव है। अरब और उसके आस पास के सिरिया मेसोपोटामिया, और उत्तर आफ्रिका का कुछ अंश मिला कर अरबिस्तान कहलाता है; क्योंकि इन प्रदेशों में या तो अरबी बोलने वाले और या अरबों के वंशज रहते हैं, जो प्रायः सब के सब मुसलमान हैं। इन अरबों की संख्या सब मिला कर ४,००,००,००० है, जिनमें से तीन चौथाई उत्तर आफ्रिका में रहते हैं। तुर्किस्तानियों में वे सब लोग आ जाते हैं जो कुस्तुन्तुनिया से मध्य एशिया तक बसते हैं। इनमें खास तुर्क, दक्षिण रूस तथा ट्रांस-काकेशिया तातार और मध्य एशिया के तुर्कमान सभी आ जाते हैं।

पर इसका कारण यह नहीं है कि वे देश स्वयं ही बलवान हैं, बल्कि इसका कारण यह है कि उनके सम्बन्ध में गोरों में ही परस्पर प्रतियोगिता चल रही है। तो भी गोरों ने धीरे धीरे करके धूसर वर्ण के अधिकांश देशों पर अपना अधिकार जमा ही लिया है। १९१४ में जिस समय महायुद्ध आरम्भ हुआ था, उस समय तुर्की, फारस और अफगानिस्तान यही तीन ऐसे देश बच गये थे जो थोड़े बहुत स्वतंत्र थे। पर इस महायुद्ध ने उनकी वह थोड़ी बहुत बची खुची स्वतंत्रता भी नष्ट कर दी। अब चाहे नक्शों में जो कुछ दिखलाया जाय, पर इसमें सन्देह नहीं कि तुर्की और फारस की सारी स्वतंत्रता नष्ट हो चुकी है और अफगानिस्तान भी पहले की अपेक्षा गोरों का कुछ अधिक प्रभुत्व स्वीकृत करने के लिए ही विवश किया गया है। इस प्रकार गोरों ने धूसर वर्ण के सभी लोगों पर अपना राजनीतिक अधिकार जमा लिया है।

पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो राजनीतिक अधिकार कोई चीज नहीं है; क्योंकि वह कभी स्थायी नहीं होता। आज गोरे धूसर वर्ण वालों के मालिक हैं, कल धूसर वर्ण वाले गोरों पर अधिकार कर सकते हैं। जैसा कि उन्होंने पहले कई बार किया है। चाहे गोरे इस समय धूसर वर्ण वालों पर अधिकार करके अपने मन में फूले न समायें, पर उनका यह अधिकार कभी स्थायी नहीं रह सकता। आज कल जिस प्रकार पीत वर्ण के लोग गोरों से असन्तुष्ट हैं उसी प्रकार धूसर वर्ण वाले भी उनसे बहुत नाराज हैं और हर तरह से उनका विरोध करने पर तुले हुए हैं। धूसर वर्ण वालों का यह विरोध प्रायः सौ वर्षों से आरम्भ है और यह विरोध बराबर बढ़ता जा रहा है। इस विरोध के बढ़ने के दो

आरंभ के वहाबियों को सब से अधिक यही बात खटकी थी कि राजनीतिक दृष्टि से मुसलमान दिन पर दिन निर्बल और गोरों के अधीन होते जाते हैं। यह भाव उन्नीसवीं शताब्दि के आरंभ में ही मुसलमानों में फैला था। पर साथ ही यह वही समय था, जब कि यूरोप नेपोलियन के युद्धों के आघात से सँभलने लगा था और पूर्व के मुसलमानों पर नये सिरे से अभूतपूर्व आक्रमण करने लगा था। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों में जातीयता तथा धार्मिकता के नये भाव उत्पन्न होने लग गये और वे राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र तथा बलवान् होने के लिए आपस में एकता उत्पन्न करने के उद्योग में लग गये—अपने बिछड़े हुए भाइयों को जागृत तथा उन्नत करने का आयोजन करने लगे।

उस समय यूरोप वालों का आर्थिक और सैनिक बल इतना बढ़ा चढ़ा था कि मुसलमानों को चटपट सफलता प्राप्त करने की कोई विशेष आशा नहीं थी। पर एशिया वालों में यह एक विशेष गुण होता है कि वे कठिन से कठिन काम देख कर भी घबराते नहीं हैं और शांति तथा धैर्यपूर्वक निरंतर उद्योग करते चलते हैं। बस, वहाबी सुधारक भी अपने लक्ष्य पर ध्यान रख कर निरंतर उद्योग करने लगे। पहले तो उनके काम का किसी को पता भी नहीं लगा। पर धीरे धीरे लोग उनके कामों से परिचित होने लगे और उनका उद्देश्य तथा अभिप्राय समझने लगे। आज से प्रायः पचास वर्ष पहले प्रसिद्ध विद्वान पालग्रेव ने एशिया के प्रश्नों के सम्बन्ध में एक निबन्ध लिखा था। उसमें एक स्थान पर उसने कहा—"इस्लाम इस समय भी बहुत बलवान है और यदि वह चाहे तो अब भी आक्रमण कर सकता है। और उसका यह

इन सब की संख्या २,५०,००,००० है। धूसर वर्ण के यहाँ चार मुख्य वर्ग हैं। अब हम पहले मुसलमानों को ही लेते हैं। क्योंकि गोरों का मुख्य विरोध इन्हीं मुसलमानों से आरम्भ हुआ था और इस समय भी उस विरोध का बहुत कुछ दारोमदार इन्हीं मुसलमानों पर है।

मुसलमानों की युद्धप्रियता बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। किसी समय उनका बालचन्द्रवाला झण्डा चीन से फ्रांस तक फहराता था। पर धीरे धीरे मुसलमानों का प्रताप-सूर्य अस्त होने लगा और गत शताब्दि में तो वह मानों बिलकुल क्षितिज तक जा पहुँचा। आज से सौ सवा सौ वर्ष पहले ऐसा जान पड़ता था कि मानों मुसलमान जाति बिलकुल मरणोन्मुख हो रही है और उसमें कुछ भी दम बाकी नहीं रह गया है। लेकिन मुसलमानों के उस पतन काल में भी मुसलमानी धर्म के जन्म-स्थान अरब के रेगिस्तान में एक ऐसा महात्मा उत्पन्न हुआ जिसने मरती हुई मुसलमान जाति में नया जीवन संचार करने का उपक्रम आरम्भ किया। उस सुधारक का नाम अब्दुल वहाब था और उसके अनुयायी "वहाबी" कहलाते हैं। शीघ्र ही उसका सम्प्रदाय सारे मुसलमान संसार में फैल गया और उसमें नया जीवन आने लगा। उस सम्प्रदाय के लोग बराबर अपने भाइयों को उनके पुराने गौरव का स्मरण कराते रहते हैं और उनको फिर वही गौरव प्राप्त करने के लिए उत्तेजित करते रहते हैं। मुसलमानों के पुनरुत्थान का आरंभ अब्दुल वहाब से ही समझना चाहिए।

मुसलमानों का यह पुनरुत्थान, प्रायः सभी सच्चे और वास्तविक पुनरुत्थानों के समान, धार्मिक भी है और राजनीतिक भी।

दिन पर दिन उसमें नवीन जीवन का संचार हो रहा है और नये पाश्चात्य विचारों आदि को बहुत ही शीघ्रतापूर्वक ग्रहण कर रही है। अलीगढ़ के प्रसिद्ध ओरिएण्टल कालिज के भूतपूर्व प्रिन्सिपल मि० थियोडोर मारिसन का भी यही मत है कि मुसलमानों का बहुत सहज में सुधार हो सकता है। यह समझना बड़ी भारी भूल है कि वे अब किसी योग्य नहीं रह गये। प्रसिद्ध मि० मार्मड्यूक पिक्थाल का मत है कि इसलाम धर्म में कोई ऐसी बात नहीं है जो उसकी उन्नति में बाधक हो सके। यह ठीक है कि मुसलमानों ने अभी तक नवीन परस्थितियों के अनुसार जीवन व्यतीत करना आरम्भ नहीं किया है, पर इसमें सन्देह नहीं कि अब वे भी अपने यहाँ सुधार करने लग गये हैं और अपने आपको नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बना रहे हैं।

बर्नेनर्ड टेम्पल ने १९१० में एक स्थान पर कहा था—"मुसलमान लोग संसार की राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए, आपस में मिल के इस बात का उद्योग करने लगे हैं कि हमें भी संसार में रहने के लिए स्थान और पत्र मान हो वे इसके लिए झगड़ना चाहते हैं। उनके इस झगड़े में चाहे रक्तपात न हो, पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वह भारी और गहरा झगड़ा होगा। उनको अपनी भावी उन्नति का बहुत अधिक ध्यान हो चला है। प्रत्येक मुसलमान देश का दूसरे मुसलमान देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित हो रहा है। एक देश से दूसरे देशों में उन के दूत, व्यापारी, यात्री और पत्र आदि बराबर आते जाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त उनके समाचार पत्र, और पुस्तकें आदि भी सब जगह पहुँचती रहती हैं जिनसे उनका पारस्परिक सम्बन्ध

गण बहुत भीषण प्रमाणित हो सकता है। पश्चिमी ईसा-
का बल और योग्यता देख कर पूर्वी मुसलमान जाग उठे हैं
इसका जागृति का परिणाम यह होने लगा है कि अब वे
से नाराज़ हो कर उनके साथ घृणा करने लगे हैं। बहुत से
मान सारे यूरोप में भ्रमण कर चुके हैं और उसके विद्वानों,
ओं तथा प्रणालियों आदि का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे
मान अपने जाति-भाइयों को जागृत करने के लिए बहुत ही
और प्रयत्नशील हो रहे हैं। मुसलमान यह बात अच्छी
जानते हैं कि आधुनिक युरोपियनों की संस्थाएँ आदि स्थायी
होतीं और उनमें प्रायः नये नये परिवर्तन होते रहते हैं।
अपने सम्बन्ध में वे समझते हैं कि हम एक बहुत ही मज़-
स्थान पर दृढ़तापूर्वक खड़े हैं और तब वे अपनी उस दृढ़ता
कावला दूसरों की चंचलता और अस्थिरता से करते हैं।
कुछ यूरोपियन विचारवान् और राजनीतिज्ञ समझते हैं कि
मान जाति बिलकुल मुरदा हो गई है और अब उसके पुनरु-
त होने की कोई आशा नहीं है। यही कारण है कि वे
समय पर उसके साथ अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं,
उनके नाश के नये नये उपाय निकालते हैं। आज दिन तक
त के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि वे मुसलमानों को कुछ
हीं समझते और यथासाध्य उनका नाम मिटा देने को
करते हैं। तुर्की के सम्बन्ध में इधर हाल की जो घटनाएँ
वे भी इसी बात का प्रमाण हैं। पर यदि सच पूछिये तो
मानों को मुरदा समझने वाले बड़ी भारी भूल करते हैं।
जानना चाहिए कि मुसलमान जाति मर नहीं गई है, बल्कि

कराई थी जिसमें उसने यह बतलाया था कि चौदहवीं सदी हिजरी में मुसलमानों में कितनी जागृति हुई है और होगी। पुस्तक का महत्व इस बात से और भी बढ़ जाता है कि उसका लेखक यूरोप की उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुका है, फ्रान्स के एक विश्वविद्यालय से कानून की बड़ी उपाधि पा चुका है और मिस्र में जज के पद पर नियुक्त है। सिदीक ने १९०७ में ही समझ लिया था कि यूरोप वालों में परस्पर युद्ध हुए बिना न रहेगा। उसने लिखा था—"जरा यूरोप की इन बड़ी बड़ी शक्तियों को देखिए। ये भयंकर शस्त्र अस्त्र बना कर किस प्रकार अपना नाश कर रही हैं! एक दूसरी का बढ़ता हुआ बल वे किस बुरी तरह से देख रही हैं? सब एक दूसरी को भयभीत करती हैं, आपस में मित्रता कर कर के तोड़ती हैं। इन सब बातों से तो यही सिद्ध होता है कि ये ऐसा उत्पात खड़ा करेंगी जिससे सारे संसार में आग लग जायगी, खून की नदियाँ बहने लगेंगी, और दुनियाँ गारत हो जायगी। भविष्य ईश्वर के हाथ में है और जो कुछ वह चाहता है, वही होता है।"

सिदीक की समझ से उसी समय गोरों का पतन हो रहा था उसने लिखा था—"क्या इसका यही अर्थ है कि हमारा सुशिक्षित पथ-प्रदर्शक यूरोप अपने विकास के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया है? क्या इससे यही समझा जाय कि इधर दो तीन शताब्दियों तक बहुत अधिक परिश्रम करने के कारण वह बहुत थक गया है और अपनी जीवन-शक्ति बिलकुल गँवा चुका है? हम तो यही समझते हैं कि अब यूरोप बुड्ढा हो चला है और शीघ्र ही उसे विवश होकर अपना स्थान उन लोगों को दे देना पड़ेगा जो अधः-

बराबर बढ़ता जाता है। मैंने काहरा के समाचार पत्र बगदाद, तेहरान और पेशावर में, कुस्तुन्तुनिया के समाचार पत्र बसरे और बम्बई में तथा कलकत्ते के समाचार पत्र करबला और सईद बन्दर में देखे हैं।"

इन यूरोपियनों ने मुसलमानों के सम्बन्ध में ये जो बातें कही हैं, प्रायः वही बातें स्वयं मुसलमान भी अपने सम्बन्ध में कहते हैं। सीरिया के अमीन रीहानी नामक एक ईसाई ने एक अवसर पर कहा था—"आधे मुसलमान ईसाइयों के शासन में हैं। पर वे अपनी पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ डालने के प्रयत्न में लगे हैं। वे अपनी शक्तियों का संगठन कर रहे हैं। उनका पुराना इतिहास बहुत ही गौरवपूर्ण है। उनका धर्म और भाषा जीवित है। उनकी धर्म पुस्तक उनमें नवीन जीवन का संचार करने वाली है। उनकी आशा कभी भग्न नहीं हो सकती। चाहे यूरोपियन कूटनीति के कारण कुछ समय के लिए उनमें परस्पर विरोध और वैमनस्य उत्पन्न हो जाय और वे आपस में ही लड़ने लगें, पर वे सदा के लिए यूरोपियनों के शासन में नहीं रखे जा सकते। यूरोप की तोपों पर मुसलमान अपना जो कुछ गँवा रहे हैं, वही वे आधुनिक ढंग के प्रचार के द्वारा आफ्रिका तथा मध्य एशिया में प्राप्त कर रहे हैं। यूरोप तो मुसलमानों को शिक्षा पढ़ा कर सैनिक बना रहा है, पर एक दिन वही सैनिक स्वयं यूरोप के विरुद्ध उठ खड़े होंगे।"

मुसलमानों का लिखा हुआ इसी प्रकार का और भी बहुत सा साहित्य भरा पड़ा है। मिस्र के वहिद्दन शिरीफ नामक एक विद्वान ने १९०७ में एक पुस्तक लिख कर काहिरा में प्रकाशित

'इस हिजरी चौदहवीं सदी में मानो हमारा एक नया युग आरम्भ हो रहा है। यहीं से हमारा पुनरुद्धार आरंभ होगा और हमारा भविष्य सुधरने लगेगा। सारे संसार के मुसलमानो मे एक नवीन जीवन का सचार हो रहा है। अब सब मुसलमान काम करने की आवश्यकता समझने लगे हैं। अब हम सब लोग यात्रा, व्यापार और धन-संचय करना चाहते हैं, अब हम विपत्तियों का सामना करने के लिए भी तैयार हो रहे हैं। इस समय मुसलमानों में ऐसी जागृत हो रही है जैसी आज से पच्चीस वर्ष पहले बिलकुल नहीं थी।"

अपनी पुस्तक के अन्त मे सिद्दीक ने कहा था—"अब हम सब लोगो को दृढ़तापूर्वक मिलकर एक हो जाना चाहिए और अपने उद्धार की पूरी आशा करनी चाहिए। अब हम लोग बहुत अच्छी तरह उन्नति के मार्ग में लग गये है अब हमें इस अवसर में पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए। यूरोप के अत्याचार ने ही हम लोगों मे यह विलक्षण परिवर्तन उत्पन्न किया है। यूरोप से सम्बंध हो जाने के कारण ही अब हमारा विकास अच्छी तरह होगा और हमारा पुनरुद्धार जल्दी जल्दी होगा। यह तो बस इतिहास की पुनरावृत्ति मात्र है। लाख विरोध और लाख प्रतिकार होने पर भी ईश्वर की इच्छा पूरी हो रही है। एशिया वालों पर यूरोप वालों का अधिकार दिन पर दिन नाम मात्र का होता जाता है। एशिया के द्वार बराबर यूरोप वालों के लिए बन्द होते जाते हैं। अवश्य ही हम लोग एक ऐसी राज्यक्रान्ति करेंगे जिसकी उपमा सारे संसार के इतिहास में कहीं न मिलेगी। एक बिल्कुल नया युग आरम्भ होना चाहता है।"

पात में उससे कम है, जो अभी उसके समान दुर्बल नहीं ..
अर्थात् उसे अपना काम ऐसे लोगों के सिपुर्द कर देना पड़ेगा ज
उसकी अपेक्षा अधिक युवक, अधिक हट्टे-कट्टे और अधिक स
हैं। हमारी समझ में तो अब यूरोप का प्रताप-सूर्य अ
शीर्षविन्दु पर पहुँच गया है और उसका असाधारण औपनिवेशि
विस्तार उसके बलवान् होने का नहीं बल्कि उसके दुर्बल ह
का परिचायक है। चाहे इस समय युरोप की शान शौकत
ताकत कितनी ही क्यों न बढ़ गई हो, पर इसमें सन्देह नहीं
इस समय उसमें जितना पारस्परिक विरोध है, उतना आज
कभी नहीं हुआ था। और वह इस समय बड़ी बुरी तरह
अपना कष्ट और दुःख छिपा रहा है। उसका अन्त जल्दी
समीप आ रहा है।"

यूरोप के साथ हम लोगों का जो सम्बन्ध हो गया है,
हमारा बहुत कुछ लाभ भी हुआ है और बहुत कुछ हानि
आर्थिक और मानसिक दृष्टि से तो हमारा लाभ हुआ है और
तथा राजनीतिक दृष्टि से हमारी हानि हुई है। मुसलमान
लगातार बहुत दिनों तक लड़ने झगड़ने के कारण कुछ ठ..
गये थे, पर ये बिल्कुल मर नहीं गये थे। यद्यपि तोपों और बन्दूकों
की सहायता से वे उस समय जीत लिये गये हैं, तथापि उनकी
एकता ज्यों की त्यों बनी हुई है। यद्यपि यूरोप
तरह अपने शासन में जकड़ रक्खा है.
है। इधर पच्चीस वर्षों में हमने
में इतनी उन्नति की है, कि
हम इन सब बातों में यूरोप

फत के प्रश्न के कारण ही मुसलमानों में इतनी जागृति और एकता दिखाई देती है। पर यह बात ठीक नहीं है। सारे संसार के मुसलमान सैंकड़ों वर्षों से एक होने का उद्योग कर रहे हैं। इस उद्योग अनेक रूप और अनेक प्रकार हैं। उनमें से एक सिनूसिया म्प्रदाय भी है। उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ में एल्जीरिया में यद मुहम्मद बिन सिनूसी नामक एक नेता उत्पन्न हुआ ा, जो अपना वंश-सम्बन्ध हजरत मुहम्मद की कन्या फातिमा : साथ स्थापित करता था। अपनी युवावस्था में वह अरब या था, जहाँ उसकी भेंट कुछ वहाबियों के साथ हुई थी। वहाँ हाबी आन्दोलन का उसपर अच्छा प्रभाव पड़ा और वहां से लोट र आफ्रिका में उसने अपना सिनूसिया सम्प्रदाय स्थापित किया। उसके जीवन काल में ही दूर दूर के अनेक मुसलमान उसके सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये थे। आजकल उसका एक पोता इस सम्प्रदाय का आचार्य है। वह सहारा के रेगिस्तान में एक बहुत ही सुरक्षित और गुप्त स्थान में रहता है जहाँ उसके भक्तों और सम्प्रदाय के लोगों के अतिरिक्त और कोई पहुंच ही नहीं सकता। जो मुसलमान वह स्थान जानते हैं, वे चाहे मार भी डाले जायें, तो भी वे वहाँ का मार्ग किसी अपरिचित को नहीं बतला सकते और न किसी को वहाँ ले जा सकते हैं। सिनूसी सम्प्रदाय के उसी केन्द्र से सारे उत्तर आफ्रिका में भिन्न भिन्न आज्ञाएँ और सूचनाएँ आदि पहुंचा करती हैं।

सारा सहारा रेगिस्तान मानों एक प्रकार से सिनूसी संप्रदाय के ही अधिकारों में है और मक्का, सुमात्रा-मैलेट आदि देशों में इस सम्प्रदाय का पूर्ण प्रचार है। केवल प्रचार ही नहीं, उस

सारे संसार में मुसलमानों की संख्या बीस पचीस करोड़ के लगभग है। प्रायः वहाँ के सभी प्रदेशों में, एक भारत को छोड़कर, अधिकांश उन्हीं की बसती है। यहाँ तक कि चीन में भी एक करोड़ मुसलमान हैं। आफ्रिका के हबशियों में भी दि दिन इस्लाम धर्म का प्रचार बढ़ता ही जाता है। उनका कट्टरपन सारे संसार में प्रसिद्ध है। जो व्यक्ति एक बार मुस हो जाता है, वह फिर कभी अपना धर्म नहीं छोड़ता। यहां कि उसकी सन्तान भी फिर कभी इस्लाम धर्म से मुँह नहीं मो चाहे इस समय वे कुछ दब गये हों, पर इसका यह अर्थ न कि वे सदा के लिए बेदम हो गये हों इन सब बातों को देख कर हमारे गौरांग महाप्रभु मन ही मन चिन्तित हो रहे हैं। यही देखना बाकी है कि यह चिन्ता उनमें सुबुद्धि उत्पन्न करत या कुबुद्धि। साधारणतः माना तो यही जाता है कि चिन्ता समय मनुष्य की बुद्धि और भी अधिक भ्रष्ट हो जाती है और उलट पुलट काम करने लगता है। और इस समय गोरों में लक्ष भी कुछ ऐसे ही दिखाई पड़ते हैं। पर फिर भी यूरोप वालों समझदारों का एक दम अभाव नहीं हो गया है, इसलिए हमें आश करनी चाहिए कि वे ज़माने का रुख देखकर संकट आने से पहल ही सचेत हो जायँगे।

संसार में मुसलमानों की संख्या एक तो योंही कुछ कम नहीं है, दूसरे वह संख्या दिन पर दिन आफ्रिका आदि देशों में बढ़ती जाती है। और तीसरी भयंकर बात यह है कि सारे संसार के मुसलमान अपने कल्याण के लिए मिलकर एक होने का उद्योग बहुत दिनों से कर रहे हैं। कुछ लोग समझते हैं कि वर्तमान खिला-

धनवान हैं और उनके मुकाबले में हम कितने दुर्बल हैं। वे यह बात भी अच्छी तरह समझते हैं कि यदि हम अपना बल बढ़ने से पहले ही बलवानों के साथ भिड़ जायेंगे, तो हमारी कितनी हानि होगी। वे उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप अपना काम करते चलते हैं। यही कारण है कि यहाँ के मुसलमानों ने अभी तक गोरों के विरुद्ध कोई भारी और भीषण उपद्रव नहीं खड़ा किया। उनके जो कुछ उपद्रव हुए हैं, वे छोटे मोटे और स्थानिक ही हैं। १९१४ में यूरोपियन युद्ध के आरंभ होने पर जहाद का झगड़ा न उठने का भी यही कारण है। पर जो लोग समझदार हैं, वे अच्छी तरह समझते हैं कि जहाद का झगड़ा खड़ा करने के साधन दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं।

गत शताब्दि के अन्त में यूरोपियनोंने आफ्रिका तथा मध्य एशिया पर अधिकार कर लिया और आगे चलकर अँगरेजों और फ्रान्सीसियों ने आपस में मिस्र और मरक्को बांट लिया। इस बात से संसार के सभी मुसलमानों में अन्दर ही अन्दर बहुत कुछ असन्तोष बढ़ गया है। यही कारण है कि जब १९०४ में जापानने रूस पर विजय प्राप्त की, तब मुसलमान उस विजय से बहुत ही प्रसन्न हुए। जापानी मूर्तिपूजक हैं और मुसलमानों के धर्म ग्रन्थों के अनुसार वे ईसाइयों और यहूदियों की अपेक्षा कुछ कम ही बुरे हैं। इसी लिए जापान की विजय से सारे संसार के मुसलमान प्रसन्न हुए थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस राजनीतिक विपत्ति के समय एशिया और आफ्रिका की जातियों में परस्पर सहानुभूति है और वे समय पड़ने पर मिलकर एक हो सकती हैं। सन् १९०६ में फारस के एक समाचार पत्र में प्रका-

धर्म के प्रचारकों तथा अधिकारियों आदि का वहाँ तथा दूर दूर देशों में बहुत अधिक प्रभाव है। उनके धार्मिक अधिकारी "मुक्म" और राजनीतिक अधिकारी "वकील" कहलाते हैं। इन मुक्मों अथवा वकीलों के मुँह से जो कुछ निकल जाता है, उसे वहाँ के सधर्मी लोगों को, चाहे वे सिनूसी संप्रदाय में हों और चाहे न हों, अवश्य मानना पड़ता है। वहाँ के जिन प्रदेशों में अंग्रेजों, फ्रांसीसियों अथवा इटालियनों आदि का राज्य है, वहाँ भी इन सिनूसियों की आज्ञा चलती है। वे लोग इस बात का भी पूरा पूरा ध्यान रखते हैं कि कहीं गोरे अधिकारियों के साथ हमारी मुठभेड़ न हो जाय और हमारे काम में बीच में ही बाधा न आ पड़े। वे गोरे अधिकारियों से लड़ते भिड़ते तो नहीं हैं, पर हाँ, अपने सिद्धान्तों के प्रचार आदि में भी वे कभी कमी नहीं करते। उनका मुख्य उद्देश सारे संसार के मुसलमानों को मिलाकर एक करना है। उनका विश्वास है कि मुसलमानों को गोरों के शासनाधिकार से निकलने के पहले पूर्ण रूप से अपनी आत्मिक उन्नति कर लेनी चाहिए और यही कारण है कि वे अभी अपने यहाँ के राजनीतिक अधिकारियों के साथ झगड़ा मोल नहीं लेते। वे शांति और धैर्य-पूर्वक अपना काम बराबर करते चलते हैं और अपने अनुयायियों तथा साथियों की संख्या बढ़ाते रहते हैं। विशेषतः आफ्रिका के हबशियों में तो सिनूसी मत का बहुत ही शीघ्रतापूर्वक प्रचार हो रहा है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे नेता आदि हैं जो सारे संसार के मुसलमानों को मिलाकर एक करना चाहते हैं। पर वे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे गोरे अधिकारी कितने

अच्छी तरह समझ ली कि पश्चिमी एशिया तक पहुँच कर वहाँ के लोगों का परित्राण करने का जापान का तनिक भी विचार नहीं है। इसी बीच में मुसलमानों को गोरे ईसाइयों के हाथों और भी अधिक हानियाँ सहनी पड़ीं। १९११ में इटली ने तुर्की के आफ्रिकन अधीनस्थ राज्य ट्रिपोली पर खुले आम आक्रमण कर दिया। उसके इस कृत्य से मुसलमान इतने क्षुब्ध और क्रुद्ध हुए कि अनेक यूरोपियन राजनीतिज्ञ बहुत ही भयभीत हो गये। फ्रान्स के एक भूतपूर्व पर-राष्ट्र सचिव ने इस सम्बन्ध में लिखा था-"जो ट्रिपोली अपनी कुछ भी रक्षा नहीं कर सकता था, वही इस समय इटली के लिए भिड़ों का छत्ता क्यों कर बन गया ? इसी लिए कि इटली ने केवल तुर्की को ही नहीं, बल्कि सारे इस्लाम धर्म को छेड़ा है। इटली ने एक ऐसा झगड़ा मोल लिया है, जो केवल उसी के लिए नहीं, बल्कि हम सब लोगों के लिए भी बहुत ही बुरा है। पर ट्रिपोली पर इटली ने अधिकार करके मानों यही प्रमाणित किया था कि अब मुसलमानों पर ईसाइयों का आक्रमण आरम्भ हो गया है, क्योंकि इसके दूसरे ही वर्ष बाल्कन युद्ध छिड़ गया, जिसमें यूरोप से तुर्की निकाल दिया गया और उसकी बहुत ही दुर्दशा की गई। इससे सारे संसार के मुसलमानों में और भी अधिक क्रोध फैल गया। इस युद्ध के सम्बन्ध में भारत के एक मुसलमान नेता ने लिखा था—"यूनान के राजनाने एक नया धार्मिक युद्ध छेड़ दिया है। इंगलैण्ड और रूस इस समय हमसे वे स्थान छीनना चाहते हैं जो यूरोप में हमारे अधिकार में हैं। कल को वे लोग हमारे जेरूसलेम आदि पवित्र तीर्थों को अपने अधिकार में लाने के उपाय सोचने लगेंगे। भाइयो, अब तुम सब मिलकर एक हो

शित हुआ था—"फारस भी जापान की तरह बलवान होकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहता है, इसलिए इस समय उसे जापान के साथ मिल जाना जाहिए। ऐसी दशा में दोनों देशों में मित्रता का सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक हो जाता है। तेहरान में एक जापानी राजदूत रहना चाहिए। फारस को अपनी सेना में सुधार करने के लिए भी जापान से अफसर बुलाने चाहिएँ और दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध भी बढ़ना चाहिए।" उस समय कुछ मुसलमान तो ऐसे भी थे जो जापानियों को भी इस्लाम धर्म के झण्डे के नीचे लाने का उपाय सोच रहे थे। रूस-जापान युद्ध की समाप्ति के थोड़े ही दिनों बाद चीन के एक मुसलमान ने लिखा था—"यदि जापान यह चाहता हो कि किसी समय वह संसार में बहुत बड़ी शक्ति बन जायँ और सारे संसार पर एशिया का प्रभुत्व हो, तो उसे इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेना चाहिए।" इस पर मिस्र के एक राष्ट्रीय समाचार पत्र ने टीका करते हुए लिखा था—"भारत में इंगलैण्ड के अधिकार में ६,००,००,००० मुसलमान हैं, इसलिए वह जापान के इस धर्म-परिवर्तन से डरता है। यदि जापान मुसलमान हो जायँ तो मुसलमानों की नीति एक दम ही बदल जाय।" इसके उपरान्त कुछ मुसलमान धर्मोपदेशक जापान गये भी थे। वहाँ उनका अच्छा स्वागत हुआ था। यह ठीक है कि जापानियों का स्वप्न में भी मुसलमान होने का विचार नहीं था, पर इस घटना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि आवश्यकता पड़ने पर अन्य वर्णों के लोग गोरों के विरुद्ध मिलकर एक हो सकते हैं।

परन्तु इतना होने पर भी जब महायुद्ध में तुर्की ने जरमनी का साथ दिया, तब सारे संसार के मुसलमानों में शांति बनी रही। इस पर कदाचित कुछ लोगों को आश्चर्य होगा। पर वास्तव में सभी मुसलमान ईसाइयों से असन्तुष्ट थे और उन्होंने चाहे मिल कर गोरों का विरोध न किया हो, पर फिर भी जहाँ तहाँ उनका यह असन्तोष प्रकट अवश्य हुआ था। मिस्र का उपद्रव शान्त करने के लिए वहाँ अंगरेजों को नई सेनाएँ भेजनी पड़ी थीं। ट्रिपोली के मुसलमानों ने इटली के विरुद्ध सिर उठाया था और वहाँ के इटालियनों को समुद्र तट पर भाग जाने के लिए विवश किया था। यदि रूस ठीक समय पर बीच में आ कर फारस को न दबा देता, तो फारस अवश्य ही तुर्की से मिल जाता। भारत के सीमा प्रान्तों में भी वहाँ के मुसलमानों ने कुछ न कुछ उपद्रव मचाया ही था, जिसे दबाने के लिए अंगरेजों को वहाँ अपनी टाई लाख सेना भेजनी पड़ी थी। स्वयं ब्रिटिश सरकार ने यह बात मंजूर की थी १९१५ में मित्रों के हाथ से उनके एशिया तथा आफ्रिका के अधीनस्थ देश निकलते निकलते बच गये।

जाओ, और यह समझलो कि प्रत्येक सच्चे मुसलमान का यह परम कर्तव्य है कि वह खलीफा के झण्डे के नीचे आवे और अपने धर्म की रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण तक दे दे।" एक दूसरे भारतीय मुसलमान नेता ने अँग्रेज अधिकारियों को सचेत करते हुए कहा था—"मैं वर्तमान सरकार से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुर्कों का विरोध करने की नीति अभी से छोड़ दे। कहीं ऐसा न हो कि उनकी इस नीति से करोड़ों मुसलमानों में विरोध की आग भड़क उठे और कोई भारी अनर्थ हो जाय।" कुछ मुसलमानों ने तो हिन्दुओं और बौद्धों से भी यह प्रार्थना की थी कि आप लोग सचेत हो जाइये और गोरों के इस बढ़े हुए आक्रमणों को रोकिये; और इस विपत्ति के समय हमारी सहायता कीजिये। हिमालय पर्वत में रहने वाले आपके महात्मा लोग उठें और आपके देवता आकर हमारे शत्रु का नाश करें। चीन में भी इसी प्रकार का भ्रातृभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा था। जिस समय चीन में प्रजा-तंत्र वाली राज्यक्रान्ति हुई थी, उस समय वहाँ के मुसलमान चीनियों ने अपने बौद्ध भाइयों को स्वतंत्र होने में पूरी पूरी सहायता दी थी। इस पर प्रजातंत्रवादियों के नेता डा० सन याट सेन ने कृतज्ञता पूर्वक यह घोषणा की थी—"चीन में व्यवस्था और स्वतंत्रता स्थापित करने में हमारे मुसलमान भाइयों ने जो सहायता दी है उसे चीनी कभी न भूलेंगे।" तात्पर्य यह कि यूरोप के महायुद्ध के समय सारे संसार के मुसलमान गोरों के अत्याचार से अत्यन्त पीड़ित तथा त्रस्त हो चुके थे और अपने सिर से गोरों का बोझ हटाने के लिए अन्य वर्णों के भाइयों के साथ मिलने का उपक्रम कर रहे थे।

तथा पश्चिमी एशिया में अपना अधिकार कुछ भी कम करना नहीं चाहते, बल्कि जहाँ तक हो सके, उसे और भी बढ़ाना चाहते हैं। युद्ध-काल में ही सब महाशक्तियों ने आपस में गुप्त सन्धियाँ तथा सममौते करके पहले से ही यह निश्चय कर लिया था कि हम तुर्क साम्राज्य को आगे चलकर इस प्रकार बांट लेंगे। वार्सेल्स में तुर्क साम्राज्य के सम्बन्ध में जो कुछ निर्णय हुआ था, वह इन्हीं गुप्त सन्धियों और सममौतों के आधार पर हुआ था। इसके अतिरिक्त युद्ध के आरंभ में ही अँगरेजों ने घोषणा करके मिस्र को अपने संरक्षण में ले लिया था और शांति महासभा के समय ही इंग्लैण्ड ने फारस के साथ एक सममौता होने की घोषणा कर दी। उस सममौते के अनुसार चाहे नाम के लिए न हो, पर वास्तव में फारस भी अँगरेजों के संरक्षण में आ गया था। इसका परिणाम यही हुआ कि पूर्वी एशिया और पश्चिमी एशिया में यूरोपियनों का राजनीतिक प्रभुत्व इतना अधिक बढ़ गया जितना पहले कभी नहीं था।

लेकिन एक बात और थी। युद्धकाल में मित्र-राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों तथा अधिकारियों ने एक नहीं अनेक बार इस बात की घोषणा की थी कि इस युद्ध का उद्देश्य केवल यही है कि सभी जातियों के लोग स्वतन्त्र हो जायँ और छोटे छोटे राष्ट्रों के अधिकारों की रक्षा हो। एशिया के सभी राष्ट्रों और देशों ने इन घोषणाओं पर अपनी सारी आशाएँ लगा रखी थीं। वे सममते थे कि यूरोपियन राजनीतिज्ञ इस समय जो कुछ कह रहे हैं और जो वादे कर रहे हैं, वे युद्ध की समाप्ति पर अवश्य पूरे होंगे। इन घोषणाओं और वादों को मानों उन्होंने अच्छी तरह गाँठ में बाँध लिया था। पर आगे चल कर उन लोगों ने देखा कि वार्सेल्स में जो

तैयार थे और न उन लोगों में आपस में किसी प्रकार का सम-
झौता आदि ही हुआ था। साथ ही वे यह भी जानते थे कि इस
समय हमारे खलीफा जरमनों के हाथ की कठपुतली हो रहे हैं।
वे जरमनों को भी उतना ही भयंकर समझते थे, जितना अन्यान्य
यूरोपियनों को; क्योंकि यदि वे अपने पुराने अधिकारियों का विरोध
करते तो उसका परिणाम अधिक से अधिक यही होता कि वे अपने
पुराने मालिकों के हाथ में से निकल कर नये मालिकों के हाथ में
पड़ जाते और उनकी और भी अधिक दुर्दशा होती। इसलिए
उन्होंने सोचा कि इस समय इन गोरों को आपस में खूब कटने
मरने दो और दुर्बल हो जाने दो। तब आगे चलकर हम लोग
इनसे समझ लेंगे। इस बीच में हमें अपनी उन्नति करने और
अपना बल बढ़ाने का और भी अधिक अवसर मिल जायगा।
साथ ही तब तक हमें इनकी नेकनीयती या बदनीयती का और भी
पता लग जायगा। यही सब बातें सोच समझ कर उस समय
मुसलमान चुपचाप रह गये।

वार्सेल्स की शान्ति-महासभा में जो कुछ निर्णय हुआ, उससे
मुसलमानों को, यूरोपियनों की नीयत का ठीक ठीक पता चल
गया। वे पहले से ही किसी ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे
जिसमें उन्हें गोरों की नीति का पूरा पूरा पता लग जाय और
फिर किसी को कुछ कहने सुनने की आवश्यकता न रह जाय।

प्रय नहीं हुए। दिन पर दिन वहाँ का राष्ट्रीय आन्दोलन बराबर बढ़ता ही गया और वहाँ वाले इस बात का उद्योग करने लगे कि हमारा देश अँगरेजों के अधिकार से निकल कर बिलकुल स्वतन्त्र हो जाय और अँगरेज हमारे देश से निकल जायँ। पर इंग्लैण्ड ने कभी उनकी ऐसी बातों पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी। प्राय. सभी अँगरेज राजनीतिज्ञ यही समझते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य के पूर्वी और पश्चिमी टुकड़ों को जोड़ने वाली कड़ी मिश्र ही है: और इसीलिए वे कहते थे कि जैसे हो, मिश्र पर सदा के लिए हमारा पूरा पूरा अधिकार रहना चाहिए। इस से सिद्ध होता है कि इंग्लैण्ड और मिस्र के उद्देश्य तथा स्वार्थ में आकाश-पाताल का अंतर था और मिस्र में अब तक जितने उपद्रव आदि हुए, वे सब इसी अंतर के कारण हुए थे। युद्ध से कुछ पहले ही मिस्र वाले इतने अधिक बिगड़ खड़े हुए थे कि अँगरेजों ने अच्छी तरह समझ लिया कि अब शांत उपायों से मिस्र हमारे हाथ में नहीं रह सकता; और इसीलिए उन्होंने वहाँ घोर दमन आरम्भ कर दिया। लार्ड किचनर ने वहाँ पहुँच कर कठोर और भीषण उपायों से वहाँ के राष्ट्रीय आंदोलन को दबाने का उद्योग आरम्भ किया। जब यूरोप में महायुद्ध छिड़ा और तुर्की ने जरमनी आदि का साथ दिया, तब मिस्र में फिर घोर उपद्रव आरम्भ हुए। इस पर इंग्लैण्ड ने वहाँ और भी भीषण दमन आरम्भ कर दिया और मिस्र के शत्रु पक्ष में मिल जाने का बहाना निकाल कर मिस्र पर से तुर्की का अधिकार हटा कर उसकी जगह मिस्र को अपने संरक्षण में ले लिया।

युद्ध-काल में मिस्र को दबाये रखने के लिए अंगरेजों ने वहाँ

न्धि हुई, वह इन घोषणाओं और वादों आदि के आधार पर नहीं लिक मित्रों की ऐसी सन्धियों के आधार पर हुई है, जो उन्होंने पना साम्राज्य बढ़ाने के उद्देश्य से आपस में की थीं। यह नते ही उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और उन्होंने समझ लिया कि मारे साथ घोर अन्याय और विश्वास-घात हुआ है। इसका रिणाम यह हुआ कि एशिया के सभी राष्ट्र और देश बिगड़ खड़े ए और अपना बन्धन छुड़ाने के लिए प्रयत्न में दृढ़ता पूर्वक लग ये। उनके इस उद्योग को देख कर अनेक यूरोपियन राजनीतिज्ञ न ही मन बहुत चिंतित हो रहे हैं और वे समझते हैं कि शीघ्र ी कोई भारी उपद्रव खड़ा होने वाला है। एशिया पर युद्ध का जो कुछ प्रभाव पड़ा था, उसका वर्णन करते हुए इटली के एक हुत बड़े राजनीतिज्ञ ने १९१९ में कहा था—" इस समय सारे मुसलमान और एशियावासी बहुत ही अधिक चंचल हो उठे हैं। [illegible] बड़ा भारी असन्तोष उत्पन्न हो गया

हुत अधिक अंगरेज सैनिक मौजूद थे। दूसरे अंगरेजों ने सूडान से यहाँ बहुत सी काली पल्टनें भी ला रखीं। मिस्र की देशी पुलिस ने भी, भारत की देशी पुलिस की भाँति, दमन में अंगरेज अधिकारियों को खूब सहायता दी। बहुत कुछ उपद्रव, उत्पात, अत्याचार और दमन आदि के उपरांत अंगरेजों ने फिर एक बार मिस्र को दबा कर वहाँ अपना पूरा पूरा अधिकार जमा लिया। पर यह अधिकार भी स्थायी न रह सका और मिस्र में फिर उपद्रव आरम्भ हुए। निरंतर उपद्रव होता देख कर अंगरेजों ने शांति स्थापित करने का प्रयत्न आरंभ किया और मिस्र वालों को अपनी ओर मिलाना चाहा। पर वे लोग सहज में धोखे में नहीं आ सकते थे और हमारे देश के नरमदल की भाँति जूठे टुकड़ों से संतुष्ट नहीं हो सकते थे। इसलिए विवश हो कर अंगरेजों को मिस्र को अनेक अंशों में स्वतंत्रता दे कर संतुष्ट करना पड़ा।

अब भारत को लीजिये। युद्ध के बाद से यहाँ जो असंतोष फैला हुआ है, उससे यहाँ के अंगरेज अधिकारी कितने परेशान हो रहे हैं, यह सभी लोग जानते हैं। यहाँ प्रायः दो सौ वर्षों से अंगरेजों का राज्य है। पर यहाँ वाले भी कभी अंगरेजों के शासन से संतुष्ट नहीं हुए। इधर बीस पचीस वर्षों से यह असंतोष बराबर बढ़ता ही जाता है और युद्ध के बाद से तो उसने बहुत ही भीषण रूप धारण कर लिया है। पहले तो भारत में स्वतंत्रता के लिए जो आंदोलन होता था, वह केवल हिंदू ही करते थे और मुसलमान लोग अंगरेजों की राजभक्ति के ही गीत गाया करते थे बल्कि यों कहना चाहिए कि यहाँ के अंगरेज अधिकारियों ने अपनी चालाकी से हिंदुओं और मुसलमानों को एक

अपनी बहुत अधिक सेनाएँ भेज दीं। पर जब युद्ध समाप्त हो गया, तब वहाँ फिर राष्ट्रीय आंदोलन जोरों से आरंभ हुआ। मित्रों के राजनीतिज्ञ तो पहले से ही अनेक बार यह कह चुके थे कि छोटे छोटे राष्ट्रों के अधिकारों की रक्षा होगी और सब देशों के निवासी स्वतंत्र कर दिये जायँगे। बस उनके उन्हीं कथनों के आधार पर मिस्र के राष्ट्रीय दल वाले कहने लगे कि हमें पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उन्होंने इस बात का भी प्रयत्न किया था कि वार्सेल्स की शांति-महासभा में मिस्र का प्रश्न भी स्वतंत्र रूप [illegible] अंगरेजों के बहुत रोकने और मना करने पर भी

यह फिर सदा के लिए कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। लिए थोड़े ही दिनों में भारत में फिर भीषण रूप से राष्ट्रीय न्दोलन आरम्भ हुआ। इस बार उसने असहयोग का रूप रण किया। संसार के सब से बड़े जीवित महापुरुष महात्मा धी ने सारे संसार के राष्ट्रीय आन्दोलनों का पूरा पूरा अध्ययन रके असहयोग आन्दोलन का आरम्भ किया। महात्मा गान्धी भारतीय और वैष्णव थे, इसलिए उन्होंने अपना अन्दोलन बिलकुल शान्तिमय रखा और पहले से ही ऐसा उद्योग किया, जिसमें कहीं उपद्रव, उत्पात या मार-काट आदि न होने पावे। भारतीय मुसलमानों को भी उनका बतलाया हुआ उपाय बहुत पसन्द आया और उन्होंने भी सहर्ष महात्मा गांधी का नेतृत्व स्वीकृत कर लिया। प्रायः दो वर्षों तक यह आन्दोलन भीषण रूप से चलता रहा। इसके लिए भारत के सैंकड़ों छोटे बड़े नेता जेल गये और हजारों पढ़े लिखे लोगों ने उनका अनुकरण किया। बीच में कुछ कारणों से यह आन्दोलन थोड़े समय के लिए कुछ दब गया था; पर वह फिर दूसरे रूप में जोरों से आरम्भ होना चाहता था। भारत की प्रायः सारी जनता और सभी पढ़े लिखे लोगों ने इस आन्दोलन के साथ अपनी पूरी पूरी सहानुभूति दिखलाई थी और उसका पक्ष ग्रहण भी किया है। उसके विरोधी बहुत थोड़े थे। इस आंदोलन ने दो ही तीन वर्षों में इतनी अधिक जागृति उत्पन्न कर दी थी। चाहे स्वराज्य प्राप्त करने में इस आंदोलन को हुई हो पर देशवासियों और अधिकारियों थीं इस आन्दोलन ने बहुत ही विलक्षण की थी।

ही होने दिया और मुसलमानों को अपने और मिलाने
र कागज की नाव कहाँ तक चल सकती थी! जब सर्व
र मुसलमान मिलकर एक होने लगे और भिन्न भिन्न
तों के प्रभुत्व का विरोध करने लगे, तब भारत के मुस
ी भी आँखें खुलीं और वे अपना पुराना विरोध और वैम
ूलकर हिन्दुओं के साथ उनके राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मि
ो गये और अंग्रेजी शासन का विरोध करने लग गये।

युद्ध काल में सारा भारत पूर्ण रूप से शांत था। यहाँ के निवा-
सियों ने तन, मन और धन से युद्ध में पूरी पूरी सहायता दी थी।
न्होंने अंगरेजों को यह सहायता इसी आशा से दी थी कि आगे
लकर हमारी इस राजभक्ति का हमें यथेष्ट पुरस्कार मिलेगा और
म स्वतंत्र कर दिये जायेंगे। अंग्रेजों ने भी भारतवासियों की
ांखों में धूल झोंकने के लिए उन्हें थोड़ा बहुत अधिकार देना
ाहा; पर साथ ही उन्होंने यहाँ की दीन प्रजा को यह भी दिखला
ना चाहा कि युद्ध में लाख दुर्बल हो जाने पर भी हम तुम्हारा
मन करने के लिए यथेष्ट सबल हैं। और यदि तुम सदा के लिए

धीरे सरकारी न्यायालयों में जाना छोड़ दें और अपने निजी झगड़ों का निपटारा करने के लिए अपनी पंचायतें स्थापित करें। ( ङ ) लोग मेसोपोटानिया में सैनिक मुंशीगिरी अथवा मजदूरी आदि का काम करने के लिए न जायं। ( च ) जो लोग सुधार वाली नई काउन्सिलों के सदस्य होने के उम्मेदवार हैं वे अपनी उम्मेदवारी छोड़ दें और किसी उम्मेदवार के लिए वोट देने वाले वोट न दें। और ( छ ) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने लोगों को यह भी परामर्श दिया था कि सब लोग स्वदेशी और केवल स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार करें। देश करोड़ों बेकारों को मिले रोजी नहीं दे सकती इस लिए यह निश्चय किया गया कि लोग हाथ के कते हुए सूत के और हाथ से बुने हुए कपड़ों का व्यवहार करें।

देश में पहले से ही बहुत अधिक क्षोभ फैला हुआ था और सब लोग बहुत अधिक असंतुष्ट होने के कारण असहयोग के लिए वह पहले से ही तैयार था। अतः यह कार्यक्रम लोगों को बहुत अधिक पसंद आया और इसके अनुसार इतनी शीघ्रता से कार्य होने लगा कि थोड़े ही समय में केवल भारत सरकार ही नहीं बल्कि ब्रिटिश सरकार भी घबरा गई और उसे अपने साम्राज्य के परम उज्वल रत्न भारतवर्ष के हाथ से निकल जाने की बहुत बड़ी आशंका होने लगी। देश के प्रायः सभी छोटे बड़े नेता इस आंदोलन के पक्ष में हो गए और अपने सब काम छोड़ कर देश में जागृति उत्पन्न करने और लोगों को असहयोग का तत्व समझाने लगे। हजारों विद्यार्थी कालेज छोड़ कर देश सेवा के काम में लग गए। सरकार के साथ सब प्रकार का सम्बन्ध लोग परित्याग

धीरे सरकारी न्यायालयों में जाना छोड़ दें और अपने निजी झगड़ों का निपटारा करने के लिए अपनी पंचायतें स्थापित करें। ( ङ ) लोग मेसोपोटानिया में सैनिक मुंशीगिरी अथवा मजदूरी आदि का काम करने के लिए न जायं। ( च ) जो लोग सुधार वाली नई काउन्सिलों के सदस्य होने के उम्मेदवार हैं वे अपनी उम्मेदवारी छोड़ दें और किसी उम्मेदवार के लिए वोट देने वाले वोट न दें। और ( छ ) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने लोगों को यह भी परामर्श दिया था कि सब लोग स्वदेशी और केवल स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार करें। देश करोड़ों बेकारों को मिलें रोजी नहीं दे सकतीं इस लिए यह निश्चय किया गया कि लोग हाथ के कते हुए सूत के और हाथ से बुने हुए कपड़ों का व्यवहार करें।

देश में पहले से ही बहुत अधिक क्षोभ फैला हुआ था और सब लोग बहुत अधिक असंतुष्ट होने के कारण असहयोग के लिए वह पहले से ही तैयार था। अतः यह कार्यक्रम लोगों को बहुत अधिक पसंद आया और इसके अनुसार इतनी शीघ्रता से कार्य होने लगा कि थोड़े ही समय में केवल भारत सरकार ही नहीं बल्कि ब्रिटिश सरकार भी घबरा गई और उसे अपने साम्राज्य के परम उज्वल रत्न भारतवर्ष के हाथ से निकल जाने की बहुत बड़ी आशंका होने लगी। देश के प्रायः सभी छोटे बड़े नेता इस आंदोलन के पक्ष में हो गए और अपने सब काम छोड़ कर देश में जागृति उत्पन्न करने और लोगों को असहयोग का तत्व समझाने लगे। हजारों विद्यार्थी कालेज छोड़ कर देश सेवा के काम में लग गए। सरकार के साथ सब प्रकार का सम्बन्ध लोग परित्याग

ने लगे और स्वदेशी का भी जोरों से प्रचार होने लगा। मद्य
ा दूसरे मादक पदार्थों का व्यवहार भी बहुत कम होते
गा । तात्पर्य यह कि थोड़े ही समय में सारे देश
अपूर्व राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न हो गई और थोड़े ही समय में
तना अधिक काम हो गया जितना आज तक कभी नहीं हुआ था।
अप्रेल १९२१ तक यह आन्दोलन बहुत जोरों के साथ चलता
रहा। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि भारतवासी बिना स्वरा-
ज्य प्राप्त किये दम न लेंगे। देश की सारी शक्ति एक ही उद्देश्य
की सिद्धि में लगी हुई थी जिससे अधिकारियों को बहुत अधिक
चिंता हो रही थी। मई १९२१ के दूसरे सप्ताह में भारत के वत्का-
लीन बड़े लाट लार्ड रीडिंग ने पं० मदनमोहन मालवीय के द्वार
महात्मा गांधी को शिमले बुलाया। वहां महात्मा गांधी और ला
रीडिंग में दो दिन बातें हुईं, जिनमें दोनों ने अपने पक्ष की ब
कह सुनाईं। परन्तु कुछ कारणों से उस समय कोई बातें नहीं हो
सकीं। असहयोग आन्दोलन उसी तरह जोरों के साथ चलता
रहा और जनता पर महात्मा गान्धी का अधिकार दिन पर दिन
बढ़ता ही गया। आन्दोलन को भीषण रूप धारण करते देखकर
सरकार ने भी जोरों से दमन-चक्र चलाना आरम्भ किया । पर
यह आन्दोलन ऐसा नहीं था जो केवल दमन-चक्र से ही शांत
हो जाता। नवम्बर १९२१ में दिल्ली में आल इंडिया कांग्रेस
कमेटी का एक अधिवेशन हुआ कि देश में सत्याग्रह आरम्भ
और सब लोग सत्याग्रह करने के लिए तैयार हो जायँ। इध
असहयोग का जोर बढ़ता जा रहा था और सरकार बड़े
हजारों स्वयंसेवकों को पकड़ पकड़ कर जेल भेज

जा रही थी। उस समय यम से कम पचीस हज़ार आदमी स्वेच्छा-पूर्वक और बड़ी प्रसन्नता के साथ जेल गए थे। महात्मा गांधी ने निश्चय किया था कि फरवरी १९२२ में गुजरात के बारडोली नामक स्थान से सत्याग्रह आरम्भ किया जायगा। इसके लिए वहां पूरी तैयारी हो रही थी। पर इसी बीच में देश के दुर्भाग्य-वश गोरखपुर जिले के चौरा चौरी नामक स्थान में एक गहरा दंगा हो गया, जिसमें कुछ नासमझों ने वहां का थाना जला दिया जिससे वहां के थानेदार और कुछ सिपाही जल मरे। अतः विवश हो कर कांग्रेस कमेटी को यह निश्चय करना पड़ा कि अभी सत्याग्रह रोक दिया जाय और देश को अहिंसा के सिद्धान्त पर सदा दृढ़ रहने के लिए तैयार किया जाय। सत्याग्रह स्थगित हो जाने के कारण बहुत से देशवासी बहुत दुःखी और निराश हुए और उनका उत्साह बहुत ही मन्द पड़ गया। असहयोग और सत्याग्रह की बहुत जोरों के साथ उठी हुई लहर मानों किसी भारी चट्टान के साथ टकरा कर पीछे की ओर लौट पड़ी।

सरकार का उद्देश्य सिद्ध हो गया और उसे अपना मतलब निकालने का अच्छा अवसर मिल गया। इसके कुछ ही दिनों बाद महात्मा गांधी राजद्रोह के अभियोग में पकड़े गए और उन्हें छः वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। बहुत से नेता पहले ही जेल जा चुके थे। महात्मा गांधी के जेल जाने के बाद धीरे धीरे असहयोग आन्दोलन बिलकुल ठंढा पड़ गया और स्वराज्य बहुत दूर जा पड़ा।

इस असहयोग आन्दोलन का अंत चाहे जिस प्रकार हुआ हो पर इसकी उपयोगिता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा

सकता। इससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि सिद्धांततः यह आन्दोलन बिलकुल पूर्ण था और यदि इसका पूर्ण रूप से तथा उपयुक्त रीति से पालन किया जाता, तो संसार की कोई शक्ति भारतवासियों को स्वराज्य प्राप्त करने से रोक नहीं सकती थी। भारत में भारतवासियों पर खाली अंगरेज न शासन करते हैं। और न कभी कर सकते हैं। स्वयं भारतवासी ही अपने देश की पराधीनता के लिए उत्तरदायी हैं और वही बहुत बड़ी सीमा तक अपने देश को अंगरेजों के अधीन बनाए हुए हैं। असहयोग आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य यह था कि जो भारतवासी इस देश को विदेशियों के शासन में रखने में सहायक हो रहे हैं वे अपना हाथ खींच लें। बस फिर अंगरेजों का शासन इस देश से आपसे आप उठ जायगा। परंतु कदाचित् अभी देश के भाग्य में स्वाधीन होना नहीं बदा था, इसलिए स्वतंत्रता-प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन भी भारतवासियों को सफल मनोरथ न बना सका। असहयोग राजनीतिक दृष्टि से तो एक बहुत बड़ा और अमोघ शस्त्र था ही, परंतु इसके और भी अनेक पार्श्व थे जो कम उपयोगी या महत्व के नहीं थे। सबसे पहली बात तो यह है कि असहयोग के साथ अहिंसा भी लगी हुई थी। अहिंसावाद कितने उच्च कोटि का सिद्धान्त है और उसके द्वारा मनुष्य नैतिक दृष्टि से कितने उच्च शिखर पर पहुंच जाता है कदाचित् यह बतलाने की यहां आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति अहिंसा के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन करता है वह स्वयं तो मनुष्य की कोटि से निकल कर देव कोटि में पहुंच ही जाता है पर साथ ही वह दूसरों पर भी इतना अच्छा प्रभाव डालता है कि बहुत लोग उससे बहुत अधिक नैतिक उन्नति कर सकता है। महात्मा गांधी

अहिंसा के परम उपासक थे और उनका सिद्धान्त था कि हिंसा की सहायता से स्वराज्य प्राप्त करने की अपेक्षा देश का अनन्त काल तक पराधीन रहना ही कहीं अच्छा है। इसीलिए उन्होंने चौरी चौरा का हत्याकांड होते ही सत्याग्रह रोक दिया था। असहयोग आन्दोलन देश को केवल स्वाधीन करने के लिए नहीं था, बल्कि जैसा कि एक अवसर पर श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनाथजी टागौर ने कहा था, देशवासियों के सामने एक अच्छा और उच्च आदर्श उपस्थित करने के लिए था। हमारे शासक हमें बहुत ही तुच्छ और नगण्य समझते थे और हमारे विचारों तथा भावों का कोई आदर नहीं करते थे। इसीलिए देश को उनसे असहयोग करने के लिए कहा गया था। यदि हममें और आप में बराबरी का भाव नहीं है तो फिर हमारा और आपका किसी प्रकार साथ या सहयोग नहीं हो सकता। सहयोग और साथ तो सिर्फ बराबरी वालों में हुआ करता है। यदि संयोगवश कुछ समय के लिए इस प्रकार का साथ हो भी जाय, तो या तो दुर्बल पक्ष को पग पग पर अपमानित होना पड़ता है और या दोनों में आन्तरिक वैमनस्य उत्पन्न होता जाता है। यह परिस्थिति दोनों ही पक्षों के लिए हानिकारक होती है इसलिए ऐसी परिस्थिति जहा तक हो सके शीघ्र नष्ट कर दी जानी चाहिए।

असहयोग के सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि यह लोगों के चरित्र को शुद्ध करने वाला और उनमें बल लाने वाला आन्दोलन था। उसका मुख्य आधार नैतिक बल था और वह लोगों में आत्मनिर्भरता तथा स्वाभिमान का भाव उत्पन्न करने वाला था। वह लोगों को उनके उद्देश्य की उच्चता बतलाना चाहता था और

और सबत ...
न्याय और सत्य को कोई चीज़ ... प्रस्तुत करता
... अन्त करके एक ऐसा मार्ग और स्वतन्त्र हो।
... चलकर सारा संसार सुखी और स्वतन्त्र हो।
...तन को चाहे उस समय किसी कारण वश सफ-
...ी पर फिर भी उनकी श्रेष्ठता तथा महत्ता में
सन्देह नहीं किया जा सकता । अब भी यदि
...ा जाय तो यही मानना पड़ेगा कि सब वर्णों और
... कल्याण इसी प्रकार के सिद्धान्तों पर चलने से
...ौर आजकल जिन सिद्धान्तों पर ये गोरी जातियां
...ौर जिस प्रकार का आदर्श लोगों के सामने उपस्थित
...सका परिणाम स्वयं उनके लिए भी और दूसरों के
...ए दुःख तथा हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो
...ध्यात्मिक तथा नैतिक विषयों में भारतवासी सदा सब
...ते आए हैं । अब भी वे आगे बढ़कर संसार को इन
...ाता देना चाहते थे परन्तु अभी दैव उनके अनुकूल
परन्तु फिर भी हमें आशा करनी चाहिए कि कभी न
...ुक्त समय आवेगा और दैव हमारे अनुकूल होगा । उस
... फिर आगे बढ़ेंगे और संसार के सामने ऐसे अच्छे
उपस्थित करेंगे जिनके कारण समस्त मानव जाति के सब
...के दुःखों और दोषों का सदा के लिए अन्त हो जायगा ।
अब हम फिर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं । भारतवा-

सियों में स्वाधीनता का भाव भली भांति जागृत हो गया है और अब पाठक स्वयं ही समझ सकते हैं कि जिस अधिकार का आधार कोरा बल प्रयोग ही हो, वह अधिकार कितने दिनों तक ठहर सकता है। भारतवर्ष स्वतंत्र होगा और अवश्य स्वतंत्र होगा। चाहे आज और चाहे दस बीस वर्ष बाद, उसे सदा अपने अधिकार में रखने की आशा अंग्रेज साम्राज्यवादियों को छोड़ देनी चाहिए।

यदि सच पूछिये तो अनेक विचारवान अंग्रेज पहले से ही यह भविष्यद्-वाणी कर गये हैं कि भारत में अँग्रेजों का शासन कभी स्थायी नहीं हो सकता, और यदि भारतवासी चाहें तो वह बहुत ही थोड़े परिश्रम से सदा के लिए नष्ट हो सकता है। आज से बहुत दिनों पहले मेरेडिथ टाउन्सेंएड ने लिखा था—"अंग्रेज लोग समझते हैं कि भारत में हमारा राज्य सदा अथवा बहुत दिनों तक बना रहेगा। पर मेरी समझ में यह बात ठीक नहीं है। मेरा तो यही विश्वास है कि जो साम्राज्य एक दिन में हमारे हाथ आया है, वह एक रात में हमारे हाथ से निकल सकता है × × × सारे भारत का शासन करने के लिए हमने वहाँ बहुत ही थोड़े से शासक और बहुत ही थोड़े सैनिक रखे हैं। इन थोड़े अंग्रेजों के सहारे ही सारा भारतीय साम्राज्य चलता है और हमारे अधिकार में रहता है। इन थोड़े से अंग्रेजों को छोड़ कर वहां हमारा और कुछ भी नहीं है यदि थोड़े से शासक किसी प्रकार वहाँ से हटा दिये जाँय और थोड़े से सैनिक परास्त कर दिये जाँय तो बात की बात में हमारे शासन और साम्राज्य का अन्त हो जायगा और पुराना भारत फिर ज्यों का त्यों बन रहेगा।

न तो अब तक उसमें कोई परिवर्तन हुआ है और न आगे हो सकता है। हमारे शासन का समर्थन करने के लिए भारतवासियों की सहमति और स्वीकृति के अतिरिक्त वहाँ और कोई बात है ही नहीं। जब तक भारतवासी चाहते हैं, तभी तक हम उनका शासन कर सकते हैं। जिस दिन वे चाहेंगे, उस दिन हमें भारत खाली कर देना पड़ेगा। भारत में न तो कोई गोरी जाति है और न वहाँ उसका कोई स्थायी निवास-स्थान है, बल्कि वहाँ कोई ऐसा गोरा भी नहीं है जो जमकर वहाँ रहना चाहता हो। न तो वहाँ गोरे नौकर चाकर हैं, न गोरी पुलिस और न गोरे डाकिये; और न कोई और ही गोरे कर्मचारी हैं। यदि धूसर वर्ण के लोग केवल एक सप्ताह के लिए भी हड़ताल कर दें तो बात की बात में हमारे इतने बड़े बड़े साम्राज्य का कहीं नाम भी न रह जायगा। हमारा साम्राज्य उसी तरह नष्ट हो जायगा जिस तरह बच्चों का बनाया हुआ ताशों का घर जरासा हिलने से ही गिर पड़ता है। और उस दशा में भारत के जितने गोरे शासक हैं, वे सब के सब स्वयं अपने ही घरों में क़ैदी बन जायँगे और भूखों मरने लगेंगे। न वे अपने घर से बाहर निकल सकते हैं, न खा सकते हैं और न पी सकते हैं।" टाउन्सेण्ड का उक्त कथन असहयोग के सिद्धान्त का कितना अधिक समर्थन करता है और उससे असहयोग की उपयोगिता कितनी अधिक प्रमाणित होती है, इसे पाठक स्वयं ही समझने का उद्योग करें। हाँ, शर्त यह है कि असहयोग पूर्ण और व्यापक होना चाहिए। फिर उससे भारत के निस्तार में कुछ भी विलम्ब नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि भारत की स्वतंत्रता बहुत से अंशों में स्वयं भारतवासियों के ही [illegible] ग। जिस दिन वे सच्चे हृदय से

स्वतंत्र होना चाहेंगे, उस दिन संसार की कोई शक्ति उनको पराधीन न रख सकेगी।

संसार में जहाँ जहाँ गोरों का राज्य है, वहाँ वहाँ वह केवल राजनैतिक ही है। सब जगह गोरों का अधिकार केवल इसी लिए है कि वहाँ के लोग अनेक कारणों से गोरों से दबे रहते हैं और अब तक उन्होंने अपने शासकों का कभी पूरा पूरा विरोध नहीं किया है। पर शासन या अधिकार के ये आधार वास्तव में कोई चीज नहीं हैं। जिस दिन जहाँ की प्रजा गोरों का प्रभुत्व मानना छोड़ देगी और अपने मन में इस बात का दृढ़ निश्चय कर लेगी कि अब हम गोरों के अधिकार में नहीं रहेंगे, उसी दिन और उसी समय गोरों को उनका प्रदेश विवश होकर अवश्यमेव खाली कर देना पड़ेगा। यदि आज धूसर वर्ण के लोग गोरों को अपने देश से निकाल देना चाहें तो गोरों को अवश्य वहाँ से निकल जाना पड़ेगा। फिर उनका क्षण भर भी ठहरना असम्भव हो जायगा। गोरों की प्रजा को वहाँ लड़ना झगड़ना नहीं पड़ेगा। उन्हें अपने शासकों के विरुद्ध केवल शुद्ध और पूरा पूरा सत्याग्रह ही करना पड़ेगा। और गोरों का शासन नष्ट करने में वह सत्याग्रह ही यथेष्ट होगा। उसी सत्याग्रह से गोरों के शासन और राज्याधिकार की जड़ पूरी तरह से हिल जायगी। आज कल धूसर वर्ण के सभी लोग गोरों के अधिकार से निकल [illegible] होना चाहते हैं और यह आग [illegible] में फैल रही है। जो [illegible] इस [illegible] भारत [illegible]

कोई अब गोरों के अधिकार में नहीं रहना चाहता; क्योंकि एक तो इनके अत्याचारों आदि से लोग बहुत पीड़ित हो रहे हैं और दूसरे वे स्वतन्त्रता का मूल्य और उपयोगिता आदि अच्छी तरह समझने लगे हैं।

एक बात और है। यदि धूसर वर्ण के लोग अपने अपने देश से गोरों को निकालने का दृढ़ निश्चय कर लेंगे और इस उद्देश्य से सत्याग्रह अथवा और कोई उपयुक्त उपाय आरम्भ कर देंगे, तो गोरे उनका अधिक विरोध भी न कर सकेंगे। अपनी प्रजा के मुकाबले गोरों को ठहरने और अपना शासन बनाये रखने का अधिक साहस भी न होगा; क्योंकि शासन नष्ट हो जाने में उनकी कोई विशेष हानि भी न होगी। उनकी राजनीतिक और आर्थिक हानि अवश्य होगी और बहुत अधिक होगी, पर ये हानियां ऐसी नहीं हैं जिनके लिए गोरे किसी प्रकार की जान जोखिम सह सकें और प्राण रहते तक अपनी प्रजा का विरोध करने के लिए डटे रहें। अपने शासन और अधिकारों को बचाने का पूरा पूरा उद्योग वे

के लिए अपने लाखों सिपाहियों और करोड़ों रुपयों का नाश करने की आवश्यकता न समझेंगे। हाँ जब तक उनका शासन पूर्ण रूप से नष्ट न होगा, तब तक वे उसे बचाये रखने का अवश्य पूरा पूरा प्रयत्न करेंगे। पर इस में विचारणीय बात यह है कि जब सारा भारत ही उनको निकाल बाहर करने के उद्योग में लग जायगा, तब वे उसे अपने अधिकार में रखने के प्रयत्न में कहाँ तक सफल होंगे? पर उत्तर अफ्रिका में जो देश फ्रांस के अधिकार में हैं, उन में प्रायः दस लाख गोरे बसते हैं, जिनमें से पाँच लाख के लगभग शुद्ध फ्रांसीसी हैं। उनकी रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर फ्रांस अपना सर्वस्व दे सकता है। जब तक फ्रांस के पास एक भी आदमी या एक भी पैसा रहेगा, तब तक वह अपने आदमियों को कत्ल होते या गुलाम बनते न देख सकेगा।

अब यदि हम यह मान लें कि धूसर वर्ण के देशों पर से गोरों का अधिकार बिल्कुल नष्ट हो गया अथवा बहुत कम हो गया, तो क्या यह सम्भव है कि धूसर वर्ण के लोग अपने अपने देश से निकल कर उसी प्रकार गोरों के निवास-स्थानों पर छापा डालना चाहेंगे जिस प्रकार पीत वर्ण के लोग अपना देश छोड़ कर गोरों के प्रदेश में प्रवेश करने के लिए उत्सुक हैं? हमारी समझ में शायद ऐसा कभी न होगा। इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि पीत वर्ण वालों के लिए तो अपने देश में स्थान की बहुत कमी है, पर धूसर वर्ण के लोगों के पास अपने ही देशों में पर्याप्त स्थान हैं। भारत, मिस्र और जावा आदि देशों में अभी वहाँ की बढ़ती हुई प्रजा के बसने के लिए बहुत अधिक स्थान हैं, इसलिए उन्हें गोरों के देशों पर छापा डालने की कोई

आवश्यकता नहीं है। ठीक यही दशा मेसोपोटामिया और फारस आदि देशों की है। यदि इन देशों के निवासियों को जमीन की आवश्यकता हो तो ये अपने ही देशों में अपनी बढ़ती हुई प्रजा के निर्वाह के लिए बहुत अधिक नई जमीन निकाल सकते हैं।

भारत की आबादी अवश्य ही कुछ अधिक घनी है। इसी लिए यहाँ के निवासियों को विवश होकर कनाडा और दक्षिण आफ्रिका आदि स्थानों में रोजगार ढूँढने के लिए जाना पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उन देशों के निवासी और अधिकारी अब भारतीय मजदूरों आदि से भी उतने ही भयभीत होने लगे हैं जितने चीनी मजदूरों से होते हैं। पर जब भारत स्वतंत्र हो जायगा, तब वह अपनी बढ़ती हुई प्रजा के निर्वाह का कोई न कोई उपयुक्त उपाय निकाल ही लेगा। पर हाँ धूसर और पीत वर्ण के लोग मिलकर एक हो जायँगे, तब सम्भव है कि गोरों के निवास-स्थानों पर उनका सम्मिलित और भीषण आक्रमण हो। पर यह अभी कोरा अनुमान ही अनुमान है, इसलिए इस संबंध में विशेष विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इसकी अपेक्षा इस बात की अधिक सम्भावना है कि धूसर वर्ण के मुसलमान आफ्रिका के कृष्ण वर्ण हबशियों से मिल जायँ; क्योंकि वहाँ इस्लाम धर्म का जोरों से प्रचार हो रहा है। इस्लाम एक ऐसी कड़ी है जो धूसर और कृष्ण वर्ण के लोगों को मिला कर एक कर सकती है। पर इस प्रश्न का विचार हम अगले प्रकरण में करेंगे।

## कृष्ण वर्ण

( ४ )

कृष्ण वर्ण के लोग मुख्यतः अफ्रिका में सहारा के रेगिस्तान के दक्षिण में बसते हैं। सारे संसार में कृष्ण वर्ण के मनुष्यों की संख्या १५,००,००,००० है, जिनमें से अधिकांश अपनी जन्म-भूमि आफ्रिका में ही निवास करते हैं। आफ्रिका में बसने वाले हबशियों की संख्या १२,००,००,००० के लगभग है। बाकी हबशी अपने देश से बहुत दूर दो स्थानों में बसते हैं। एक तो आस्ट्रेलिया में और दूसरे अमेरिका में। पूर्वी हबशी एशिया और आस्ट्रेलिया के बीच के द्वीप-पुंजों में बसते हैं। किसी समय इन हबशियों का विस्तार आफ्रिका से लेकर दक्षिण एशिया होते हुए प्रशान्त महासागर तक था और उन्हींके वंशज आज कल पूर्व में बसते हैं। एशिया की दूसरी जातियों ने इनको या तो दबा

अमेरिका में २,५०,००,००० हवशी बसते हैं। इन
इधर हाल में उनके गोरे विजेता गुलाम बनाकर वहाँ से ले
इन हवशियों में से कुछ ने वहाँ के आदिम निवासियों के
और कुछने गोरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके अनेक
की वर्ण संकर जातियों की सृष्टि कर दी है। पर अब उन
संकर जातियों का भी सम्बन्ध बहुत से अंशों में अफ्रिका के
शियों के साथ ही मानना पड़ेगा।

अफ्रिका में सहारा रेगिस्तान के दक्षिण में कृष्ण वर्ण के
अनंत काल से बसते आये हैं। पहले पीत वर्ण के लोगों की
कृष्ण वर्ण के लोग भी सारे संसार से अलग ही रहते थे
दूसरों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखते थे। उनका
चारों ओर से समुद्रों से घिरा हुआ था और उनमें समुद्र
पार करने की योग्यता नहीं थी; इसलिए वे जंगलियों की भाँ
घने देश में ही सीमा-बद्ध रहते थे। इधर चारसौ वर्षों से गोरे
उनके देश में प्रवेश करना आरम्भ किया है। पर इससे ब
पहले मिश्र की ओर से धूसर वर्ण के लोगों का वहाँ बहुत
प्रवेश हो गया था। पहले पूर्व की ओर से अरबों ने
प्रवेश करके हवशियों पर विजय प्राप्त की थी। धूसर वर्ण क
हवशियों पर केवल राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके ही
नहीं हुए; बल्कि उन्होंने उनके साथ विवाह-सम्ब

वहाँ साधारण व्यापारियों की भांति जाते और अपना काम करते चले आते थे। हाँ दक्षिण अफ्रिका में उन्होंने अपने उपनिवेश अवश्य स्थापित कर लिये थे। पर इसके उपरान्त शीघ्र ही एक विलक्षण और भीषण परिवर्तन हो गया। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में यूरोप वालों की शनि की दृष्टि अफ्रिका पर पड़ी और प्रायः एक पीढ़ी के अन्दर ही अन्दर यूरोपियन महाशक्तियों ने आफ्रिका को आपस में बाँट लिया। हबशी और अरब दोनों ही यूरोपियनों के अधिकार में आ गये। केवल लाइबीरिया और एबीसीनिया ही स्वतंत्र बच रहे। उधर गोरों के उपनिवेश और आबादी खूब बढ़ने लगी। मध्य आफ्रिका मे तो बहुत अधिक गरमी पड़ती थी, इसलिए गोरे वहां बस ही नहीं सकते थे. पर उत्तर और दक्षिण आफ्रिका में, जहाँ का जल-वायु गोरों के लिए बहुत ही अनुकूल और उपयुक्त था, गोरों के बहुत बड़े बड़े उपनिवेश स्थापित हो गये। आज कल एल्जीरिया और ट्यूनिस के समुद्र-तटों पर करीब दस लाख और दक्षिण आफ्रिका में प्रायः पन्द्रह लाख गोरे बसते हैं। एशिया में तो गोरे अपनी जड़ नहीं जमा सके हैं, पर आफ्रिका के अनेक स्थानों में उन्होंने पूरी तरह अपनी जड़ जमा ली है।

आफ्रिका के सम्बन्ध मे इस समय एक बहुत बड़ा प्रश्न है। वह यह कि उत्तर और दक्षिण आफ्रिका में स्थायी रूप से बसने हुए भी क्या गोरे लोग मध्य आफ्रिका पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व बनाये रख सकेंगे? जल वायु को देखते हुए मध्य आफ्रिका मे गोरे बस तो सकते ही नहीं, फिर उनका राजनीतिक अधिकार कहाँ तक दृढ़ और स्थायी रह सकेगा? आफ्रिका में प्राकृतिक

सम्पत्ति बहुत अधिक है। वहां से यूरोप को बहुत अधिक खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल मिल सकता और मिलता है। अब यह बात स्वतःसिद्ध है कि यदि मध्य-आफ्रिका में गोरों का प्रभुत्व बना रह सकता है, तो वह केवल हवशियों के कारण ही बना रह सकता है। अर्थात् गोरे मध्य आफ्रिका में बस तो सकते ही नहीं, अतः उनके प्रभुत्व का बना रहना अथवा नष्ट हो जाना स्वयं हवशियों की इच्छा और योग्यता आदि पर ही निर्भर करता है। इस प्रश्न की मीमांसा करने के लिए हमें पहले यह देखना चाहिए कि स्वयं हवशियों की प्रवृत्ति और भाव कैसे हैं और धूसर वर्ण के लोगों के साथ उनका कैसा सम्बंध है।

पहली बात तो यह है कि हवशी लोग केवल गोरों से ही नहीं बल्कि धूसर और पीत वर्ण के लोगों से भी अनेक बातों में बहुत ही भिन्न हैं। संसार के और सभी वर्णों के लोगों से हवशी लोग बिलकुल भिन्न हैं। उनमें सभ्यता की अपेक्षा बर्बरता की मात्रा ही बहुत अधिक है। यही कारण है कि सभी बातों में उनमें बहुत जल्द और बहुत अधिक आवेश आ जाता है। दूसरी बात यह है इसी बर्बरता के कारण उनकी वंश-वृद्धि भी बहुत शीघ्रता से और बहुत अधिक होती है। जितने थोड़े समय में जितनी अधिक वंश-वृद्धि हवशियों की हो सकती है, उतने थोड़े समय में उतना अधिक यदि संसार के और किसी वर्ण की नहीं होती। उनकी ... उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट और विपत्तियाँ आदि

आज संसार में उनका कहीं पता भी न लगता। सब से अन्तिम बात यह है कि जहाँ एक बार किसी दूसरे वंश में कृष्ण वर्ण का रक्त प्रवेश कर जाता है, तब फिर वह वहाँ से निकलना नहीं जानता। अर्थात् एक बार कृष्ण वर्ण के लोग जिस वंश के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, उस वंश को वे सदा के लिए अपने अन्तर्भुक्त कर लेते हैं। कृष्ण वर्ण का रक्त एक बार प्रविष्ट हो जाने पर फिर निकाले नहीं निकलता।

आफ्रिका का भविष्य बहुत से अंशों में हबशियों की वंश-वृद्धि पर ही निर्भर करता है। बहुत काल तक हबशी लोग बिलकुल जंगलियों की तरह रहते थे। उनकी जनन-शक्ति तो बहुत अधिक थी ही, पर प्रकृति ने कुछ ऐसी अवस्था कर दी थी जिससे उस वृद्धि में अनेक बाधाएँ आ पड़ती थीं, और वे बढ़ बढ़ कर भी अन्त में नष्ट हो जाते थे। उनकी जनन-शक्ति जितनी ही बढ़ी हुई थी, उतनी ही उनमें मृत्यु-संख्या भी अधिक थी। राजनीतिक दृष्टि से हबशी लोग बिलकुल अयोग्य थे; क्योंकि वे जंगली ही थे। उनमें छोटे-छोटे फिरके थे जो सदा आपस में पशुओं की भाँति भीषण रूप से लड़ते झगड़ते रहते थे और इस प्रकार अपनी वृद्धि का प्रतिघात किया करते थे। उनके धर्म भी प्रायः ऐसे ही थे जिनमें नित्य ही नर-बलि आदि की आवश्यकता पड़ा करती थी। हबशियों में इधर हाल तक इतनी अधिक नर-बलि हुआ करती थी जिसे सुन कर सभ्य लोग सहसा विश्वास ही नहीं, कर सकते। यदि ये सब बातें किसी और वर्ण के लोगों में होतीं तो कदाचित् उस वर्ण का बहुत शीघ्र नाश हो जाता। पर हबशी, सन्तान उत्पन्न करने में बड़े तेज होते हैं। इसलिए इस नाश से भी

उनकी कोई विशेष हानि नहीं हुई। पर उधर गोरों के शासन के कारण हबशियों का आपस का लड़ना झगड़ना भी और नर बलि भी प्रायः नहीं के समान हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हबशियों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी होती जाती है। दक्षिण अमेरिका के कुछ स्थानों में तो इधर पचास साठ वर्ष के अन्दर ही उनकी संख्या दस गुनी तक बढ़ गई है। अतः यह बात एक प्रकार से बिलकुल निश्चित ही है कि थोड़े ही समय में हबशियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जायगी।

अब प्रश्न यह है कि जब हबशियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जायगी, तब गोरों के प्रति उनके भाव कैसे होंगे ? इस प्रश्न का अभी तक कोई ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोरे शासकों के प्रति उनके भाव पीत और धूसर वर्ण वालों के भावों से कुछ न कुछ भिन्न अवश्य होंगे। इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि हबशियों का न तो कोई पुराना महत्त्वपूर्ण इतिहास है और न कोई उज्ज्वल भूतकाल, जिसका उनको गर्व हो सके और जिसके आधार पर अधिक उच्चाकांक्षी हो सकें। हाँ, संसार की वर्तमान अवस्था को

और मानव-जाति की उन्नति में उनका भी बहुत बड़ा अंश अवश्य है। पर हबशियों ने आज तक कोई ऐसा काम नहीं किया। वे सदा से जंगलियों और पशुओं की भाँति अकेले रहते थे। पीछे से धूसर वर्ण के कुछ लोगों ने वहाँ पहुँच कर उनमें अपने रक्त और अपने भावों आदि का सम्मिश्रण अवश्य कर दिया था। पर इससे भी उनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। यूरोप और एशिया वालों की तरह उनमें मौलिकता का गुण बिलकुल नहीं है।

हबशियों पर मौलिकता के अभाव का यह परिणाम पड़ता है कि वे सहज में दूसरों के प्रभाव में आ जाते हैं। एशिया वाले तो अपना प्राचीन इतिहास और अपनी पुरानी योग्यता जानते हैं, इसलिए वे विदेशियों की श्रेष्ठता स्वीकृत नहीं करते, पर हबशियों का कोई पुराना इतिहास नहीं है, इसलिए उनके सामने जो नई बात आ जाती है, उसीको वे सब कुछ समझ बैठते हैं और विदेशियों को अपना प्रभु और शिक्षक मान बैठते हैं। आफ्रिका के हबशियों ने आज तक धूसर वर्ण वालों को भी और गोरों को भी अपने से श्रेष्ठ तथा अपना स्वामी और शिक्षक माना है। अपने गोरे और भूरे आक्रमणकारियों का उन्होंने बहुत ही कम विरोध किया है, चटपट इस्लाम और ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है, और सदा विदेशियों की दासता स्वीकृत की है। एशिया वालों ने आज तक कभी ऐसा नहीं किया।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि आफ्रिका के प्रभुत्व के संबंध में यूरोपियनों और अरबों में प्रतिद्वंद्विता है। अरब वाले तो बहुत दिनों से आफ्रिका पर प्रभुत्व प्राप्त करने के काम में लगे हुए थे, पर बीच में ही यूरोपियन कूद पड़े और

उन्होंने अरबों और हबशियों दोनों को अपने अधिकार में कर लिया। अब देखना यह है कि क्या अरब वाले हबशियों के साथ मिल कर गोरों को आफ्रिका से निकाल सकते हैं? इस समय धूसर जगत् में जो क्रांति हो रही है, उसे देखते हुए अनुमान यही होता है कि अरब वाले हबशियों को अपनी ओर मिला लेंगे और गोरों को वहाँ से हटा देने का उद्योग करेंगे। उनका यह उद्योग तीन मुख्य बातों पर निर्भर करता है। एक तो यह कि आफ्रिका में धूसर वर्ण वालों का आंतरिक बल कितना है। दूसरे यह कि इस बात की कितनी सम्भावना है कि हबशी लोग गोरों से बिगड़ खड़े होंगे? और तीसरे यह कि जिस समय अरब वाले और हबशी मिल कर सिर उठावेंगे उस समय गोरे उन दोनों का कहाँ तक विरोध कर सकेंगे?

आफ्रिका में धूसर वर्ण वालों का अड्डा सहारा के रेगिस्तान के उत्तर में है। मिश्र से मरक्को तक के हबशियों को अरबों ने एक प्रकार से अपने में मिला लिया है और उनको मुसलमान बना लिया है। आज से प्राय: बारह सौ वर्ष पहले अरबों ने हब-शियों पर विजय प्राप्त की थी। तब से अब तक हबशियों में अरबों के रक्त का बहुत अधिक सम्मिश्रण हो चुका है। मिश्र,

आदि की भी बहुत कुछ रक्षा की है और अरबों के साथ अधिक विवाह-सम्बन्ध भी नहीं किया। वहाँ शुद्ध अरबों की संख्या भी बहुत अधिक है, पर वे सब वहाँ प्रायः विदेशियों की ही भाँति रहते हैं। इस समय वहाँ फ्रांसीसियों का शासन है। विशेषतः एल्जीरिया इधर सौ वर्षों से राजनीतिक दृष्टि से बिलकुल फ्रांसीसी हो रहा है। अब वहाँ बहुत से यूरोपियन भी आ बसे हैं और उनकी संख्या दस लाख के लगभग हो गई है। बर्बरों की प्रवृत्ति भी कुछ फ्रांसीसियों की ओर ही है। फ्रांसीसी अधिकारी उन्हें अपनी ओर मिलाये रखने के भी अनेक प्रयत्न करते हैं। एल्जीरिया में बर्बरों और यूरोपियनों में विवाह आदि भी होने लग गये हैं। अतः इस बात की बहुत कुछ सम्भावना है कि कुछ दिनों में उत्तर पश्चिम आफ्रिका पूर्ण रूप से गोरों का ही हो जाय। एल्जीरिया और ट्यूनिस आदि में गोरों के विरुद्ध जो उपद्रव होते हैं, वे प्रायः वहाँ के अरबों के ही कारण होते हैं।

उत्तर पूर्व आफ्रिका में अरबों का पूरा पूरा प्रभाव है। सिनूसी मत का सब से अधिक प्रचार भी पहले वहीं के विकट खानाबदोशों में ही हुआ था। यद्यपि वहाँ के जंगली गिनती में बहुत थोड़े हैं, तथापि संसार में सबसे भयंकर लड़ाके हैं। सहारा रेगिस्तान के दक्षिण में जो हबशी रहते हैं, और जिनका अरबों के साथ सम्बंध हो गया है, वे भी लड़ने भिड़ने में पूरे शैतान ही हैं। जो लोग आफ्रिका के सभी हबशियों को मुसलमान बनाना चाहते हैं, उनका विचार है इन्हीं जंगली लड़ाकों को उन हबशियों की सेना के संचालन का अधिकार दिया जाय और वे हैं भी इस काम के लिए सब से अधिक उपयुक्त।

इस समय आफ्रिका में इस्लाम धर्म का प्रचार भी खूब ज़ोरों के साथ हो रहा है। इस प्रचार को देख कर यूरोपियन सशंक हो रहे हैं। सर चार्ल्स इलियट ने एक अवसर पर कहा था कि यह इस्लाम धर्म ही आफ्रिका के हबशियों को ईसाइयों का घोर विरोधी बना सकता है और उनमें ऐसी एकता उत्पन्न कर सकता है, जो और किसी उपाय से नहीं हो सकती। प्रायः बीस वर्ष पहले डी॰ आर॰ मैक पाल ने एक अवसर पर कहा था कि आफ्रिका के भीतरी भागों में इस्लाम धर्म का बहुत ही आश्चर्यजनक रूप से प्रचार हो रहा है। काफिरों के धर्म को तो वह पीसे डालता है। उसके मुकाबले में ईसाई-धर्म के प्रचार का विचार कोरी कल्पना ही है। आफ्रिका में भूमध्य रेखा के उत्तर में वहाँ की जंगली जातियों में युद्ध-प्रिय इस्लाम धर्म का जो बहुत ही शीघ्रता से प्रचार हो रहा है, वह बहुत ही भयंकर है और आगे चल कर आफ्रिका में जातीय प्रभुत्व के लिए जो युद्ध होगा, वह इसी के आधार पर होगा। आफ्रिका की कुछ थोड़ीसी जातियों को छोड़ कर बाकी सभी जातियाँ बहुत लड़ाकी हैं। वे तो केवल बल के सिद्धान्त को जानती हैं। उन पर विजय प्राप्त की गई थी। उसके बदले में वे भी विजय प्राप्त करेंगी। उनके लिए शांति और उच्च आदर्शों से पूर्ण ईसाई धर्म की अपेक्षा भयंकर और युद्धप्रिय इस्लाम धर्म कहीं अधिक आकर्षक है। इसीलिए मध्य आफ्रिका में इस्लाम धर्म

सकता है। थोड़े ही दिन हुए, अँगरेज अधिकारियों को अचानक इस बात का पता लगा कि न्यासालैण्ड में इस्लाम धर्म का प्रचार हो रहा है। जाँच करने पर मालूम हुआ कि जंजीबार के अरब लोग वहाँ धर्मप्रचार कर रहे हैं। उन्होंने अपना प्रचार-कार्य १९०० में आरम्भ किया था। उसके दस ही वर्ष बाद वहाँ की यह अवस्था हो गई कि न्यासालैण्ड के दक्षिणी प्रदेश के प्रत्येक गाँव में एक झोंपड़े में मसजिद और एक मुल्ला दिखाई पड़ने लगा। यद्यपि यह आन्दोलन यूरोपियनों के ही विरुद्ध था, तथापि अङ्गरेज अधिकारियों को उसे रोकने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि यदि हम इस काम में हस्तक्षेप करेंगे तो अन्य स्थानों में कोई उपद्रव खड़ा हो जायगा। एक और ध्यान रखने की बात यह है कि न्यासालैण्ड में ही कुछ ऐसे ईसाइयों का प्रचार-कार्य भी हो रहा है जो गोरों के विरोधी हैं।

इस प्रकार दो कारणों से हबशियों में इस्लाम धर्म का प्रचार जोरों से हो रहा है। पहला कारण तो यह है कि हबशी युद्धप्रिय हैं, और इस्लाम धर्म लोगों को योद्धा बनाने में सहायक होता है। और दूसरा कारण यह है कि हबशी भी अँगरेजों के दासत्व से निकलना चाहते हैं और मुसलमान भी। यही कारण है कि दक्षिण आफ्रिका के जुलुओं और बेचुअनों में शान्त ईसाई धर्म का बहुत ही धीरे धीरे प्रचार हो रहा है। अभी तक अंग्रेजी के दक्षिण में इस्लाम धर्म का कुछ भी प्रचार नहीं हुआ है। पर गोरों को इस बात का भय सदा बना ही रहता है कि कहीं वहाँ भी इस्लाम धर्म अपने पैर न पसारे। दक्षिण में ईसाई धर्म का अवश्य ही बहुत कुछ प्रचार हुआ है। वहाँ के अधिकांश आदिम निवासी

ईसाई हो गये हैं। पूर्व मध्य-आफ्रिका में भी ईसाई धर्म का थोड़ा बहुत प्रचार हुआ है। युगाण्डा तथा पश्चिमी आफ्रिकन गायना में ईसाईयों की कमी नहीं है। आगे चलकर एक न एक दिन आफ्रिका के सभी आदिम निवासी या तो ईसाई और या मुसलमान हो जाँयगे, काफिर नहीं रहेंगे। जो ईसाई हो जायँगे, वे तो गोरों का दासत्व स्वीकृत किये रहेंगे और जो मुसलमान हो जायँगे, वे हब्शियों की युद्धप्रियता से लाभ उठाकर आफ्रिका से गोरों को निकाल देने और उस महादेश को अपना बनाने का उद्योग करेंगे।

आफ्रिका के जिन स्थानों में इस्लाम धर्म का प्रचार नहीं हुआ है, वहाँ के निवासी भी प्रायः गोरों के प्रभुत्व के विरोधी ही हैं। दक्षिण आफ्रिका में गोरों के विरोध का भाव बहुत अधिक और मध्य एशिया में उससे कुछ कम है। आफ्रिका के हब्शी चाहे जो धर्म ग्रहण कर लें, पर यह निश्चित है कि गोरो ने उनको जिस दासता में जकड़ रखा है, उसे वे कभी पसन्द नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त हब्शियों में जातीय एकता का भाव भी दिन पर दिन बढ़ता जाता है। यही कारण है कि यदि संसार के किसी भाग में और कहीं कभी गोरों का कोई पराजय होता है, तो उसका सारा समाचार सारे आफ्रिका में आप से आप फैल जाता है और उसे सुनकर वे मन ही मन बहुत प्रसन्न होते हैं। रूस-जापान-युद्ध में जब रूस का पराजय हुआ था, तब आफ्रिका के हब्शियों ने खूब खुशी मनाई थी।

इधर दस बारह वर्षों में गोरों के विरोध का यह भाव दक्षिण आफ्रिका में बहुत बढ़ गया है। दक्षिण आफ्रिकन यूनियन में गोरों

की आबादी १५, ००, ००० के लगभग है और उनके चारों ओर उनसे चौगुने हबशी बसते हैं। हबशियों की आबादी दिन पर दिन भीषण रूप से बढ़ती भी जाती है। कहीं कहीं तो वे अभी से गोरों की अपेक्षा दस गुने हो गये हैं। यही कारण है कि वहाँ के गोरों को अनेक प्रकार के सामाजिक और कानूनी बन्धन बना कर अपनी रक्षा के उपाय करने पड़ते हैं। इन बन्धनों को देखकर हबशी और भी घबराते हैं और गोरों से असन्तुष्ट हो जाते हैं। इस घबराहट और असन्तोष का परिणाम यह होता है कि वहाँ दक्षिण आफ्रिका में हबशियों के उपद्रव, उत्पात और विद्रोह आदि दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि आफ्रिका में कुछ ऐसे ईसाई भी धर्म-प्रचार कर रहे हैं जो गोरों के विरोधी हैं। यह प्रचार-कार्य पन्द्रह बीस वर्ष से आरम्भ हुआ है। इसके मूल प्रचारक अमेरिका में रहने वाले कुछ ईसाई हबशी थे। इससे यह सिद्ध होता है कि अमेरिका के हबशियों को भी अपनी मातृभूमि और अपने जाति-भाइयों के उद्धार की चिंता है। जब से इन ईसाइयों का प्रचार-कार्य और आन्दोलन आरम्भ हुआ, तबसे बहुत से हबशी ईसाई गोरे धर्माधिकारियों के अधिकार से निकल कर हबशी ईसाई धर्मा-धिकारियों के अधिकार में आ गये हैं। आरम्भ से ही ये ईसाई भी गोरों का विरोध करते आ रहे हैं। इससे भी वहाँ की गोरी सरकारें बेतरह घबरा रही हैं। १९०७ में नेटाल में जुलुओं का जो उपद्रव खड़ा हुआ था, उसके सम्बन्ध में भी कुछ लोगों का यही अनुमान है कि वह इन्हीं हबशी ईसाइयों का खड़ा किया हुआ था। उसके थोड़े ही दिनों बाद वहाँ के अधिकारियों ने आज्ञा दे

लोग प्राचीन काल में बहुत अधिक मात्रा में और आजकल वे
नी उन्नति में लगे हुए हैं और अपनी संघटन-शक्ति का यथेष्ट
परिचय दे रहे हैं। एशिया वाले गोरों की केवल नकल ही नहीं
ते। वे गोरों के विचारों, आदर्शों और उपायों आदि को अपने
आवश्यकतानुसार तोड़ मरोड़ कर ग्रहण कर रहे हैं और यह
दिखला रहे हैं कि इनमें भी गोरों के समान ही सब काम करने
की स्वाभाविक योग्यता है। प्राचीन काल में एशियावालों ने
अनेक बार गिर कर फिर अपनी पूरी उन्नति की है, इसलिए हमें
पूरी आशा है कि इस बार भी वे अपनी इस गिरी हुई दशा से
उठकर संसार को चकित कर देंगे।

पर आफ्रिका वालों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। आफ्रिका
वालों ने आज तक कभी यह प्रमाणित नहीं किया कि उनमें आधु-
निक ढंग पर अपना सङ्गठन करने का भाव या शक्ति भी है। उन्होंने
कभी अपनी निज की कोई सभ्यता नहीं खड़ी की। उनकी इधर
उधर की कुछ शाखाओं ने, उदाहरणार्थ अमेरिका वाली शाखा ने,
जो उन्नति करके दिखलाई भी है, वह उनकी निज की नहीं है,
बल्कि अमेरिकन शिक्षा और परिस्थिति आदि के दबाव के कारण
है। जब तक उन पर बाहरी प्रभाव पड़ता रहता है, तब तक तो
वे बराबर थोड़ी बहुत उन्नति करते रहते हैं। पर जब उन पर से
वह दबाव उठ जाता है, तब वे फिर अपनी पूर्व दशा को पहुँच

मल नकल में ही उनकी इतिकर्तव्यता हो जाती है। उस नकल आगे वे अब तक नहीं बढ़ सके हैं। वे दूसरों की बातें ज्यों ते त्यों ग्रहण कर लेते हैं, अपनी आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन ा परिवर्द्धन आदि नहीं कर सकते। हबशियों का अब तक का नारा इतिहास इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

इस संबंध में मेरेडिथ टाउंसेण्ड का कथन है कि आज तक कृष्ण वर्ण की किसी जाति ने अपनी सभ्यता स्थापित करने की योग्यता नहीं दिखलाई। उन्होंने आज तक अपने देश से बाहर निकल कर कभी दूसरे देशों पर कोई विजय नहीं प्राप्त की और न दूसरे वर्णों के लोगों पर अपना किसी प्रकार का कोई प्रभाव ही डाला है। न तो उन्होंने आज तक पत्थर के मकानों वाला कोई नगर बनाया, न कोई जहाज बनाया, न किसी साहित्य की सृष्टि की और न कोई धर्म या सम्प्रदाय निकाला। कहा जाता है कि हबशी लोग संसार के सब से बड़े महादेश मे गड़े हुए हैं और मानव जाति के लिए मानों नष्ट हो चुके हैं। पर यह बात ठीक नहीं है। वे यदि चाहते तो सारे संसार में फैल सकते थे; क्योंकि वे सदा नील नदी के मुहाने पर ही थे जहाँ से भूमध्य सागर तक पहुँच सकते थे। इसके अतिरिक्त पश्चिम और पूर्व में भी उनको समुद्र तक पहुँचने का सुभीता था। एशिया की अपेक्षा आफ्रिका कदाचित् अधिक उर्वर है और वहाँ प्राकृतिक सम्पत्ति तो अवश्य ही एशिया की अपेक्षा अधिक है। वहाँ बड़ी बड़ी नदियाँ भी मौजूद हैं जिनमें नावें आदि अच्छी तरह चल सकती हैं आफ्रिका के हबशी बहुत हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ होते हैं और संसार की सब से कड़ी गरमी सहते हैं। उनकी संख्या भी इतनी

अधिक है कि वे जो चाहें सो कर सकते हैं। यदि वे चाहते तो जंगलों को काट कर बड़ी बड़ी सड़कें और नगर तैयार कर सकते थे। पर वे चुपचाप बैठे रहे और उन्होंने आज तक कुछ भी नहीं किया। यदि यह कहा जाय कि वे बाहरी संसार से बिल्कुल अलग और अकेले पड़ गये थे, तो यह बात भी ठीक नहीं है। उनकी अपेक्षा कहीं अधिक अलग और अकेले पेरू के निवासी पड़े थे। समरकंद के तातार भी उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सीमा-बद्ध और बंद थे। पर वे भी एक बार आपस के झगड़ों को दूर कर उठ खड़े हुए थे और उन्होंने उत्तर में ओखोट्स्क के सागर से बाल्टिक तक और दक्षिण में नर्मदा तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। आस्ट्रेलिया के जंगलियों की अपेक्षा हबशियों ने कहीं ही अधिक उन्नति की थी। उन्होंने आग का उपयोग सीखा, इस बात को जान लिया कि अनाज बोने से अनाज उत्पन्न होता है, झोपड़ों में रहने का महत्व जाना, और कमान और तीर का व्यव-हार करना सीखा और कपड़े पहनना भी सीखा। पर इतना सब कुछ करके वे रुक गये। इससे आगे न बढ़ सके। जब आर्य लोग यहाँ पहुँचे, तब उन्होंने इनका हाथ पकड़ कर इनको एक

मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हबशियों की संख्या भी बराबर बढ़ती जाती है और गोरों के प्रति उनके असंतोष में भी दिन पर दिन वृद्धि होती जाती है। वे आफ्रिका को अपने अधिकार में करेंगे। सम्भव है कि इस काम में पहले पहल उनको धूसर वर्ण से भी कुछ सहायता मिले, पर आगे चल कर वे भी स्वतंत्र ही होंगे। जो हो, गोरों के हाथ से आफ्रिका भी निकल ही जायगा। इसे चाहे गोरे अपना दुर्भाग्य समझें और चाहे सौभाग्य। धूसर वर्ण के लोग इस समय गोरों या उनके अधिकारों पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहते। वे केवल दासत्व से निकलना और अपने अधिकारों की रक्षा करना चाहते हैं। पर इस्लाम धर्म ही ऐसा है जो अपने अनुयायियों को युद्ध की ओर प्रवृत्त करता है। और अरब वाले भी प्रसिद्ध योद्धा हैं। यदि आफ्रिका में इस्लाम धर्म का पूरा पूरा प्रचार हो जायगा तो मुसलमानों के हाथ में एक ऐसी तलवार आ जायगी जिसमें वे आवश्यकता पड़ने पर अपने अत्याचारियों से अच्छी तरह बदला ले सकेंगे। वे अत्याचारी इस दल से घबराते तो बहुत हैं, पर कठिनता यह है कि वे फिर भी अपने अत्याचार कम नहीं करते और सीधे रास्ते पर नहीं आते। वे अंधे होकर पाप भी करते हैं और मन ही मन पाप के फल से भी डरते हैं। पर फिर भी पाप से हाथ नहीं खींचते। बेचारे क्या करें, वे जिस सभ्यता और जिस शिक्षा के फेर में पड़े हैं, वह उन्हें इसी मार्ग पर चलने के लिए विवश करती है और उनकी आँखें खुलने ही नहीं देती।

आफ्रिका में खाद्य पदार्थ भी खूब अधिकता से होते हैं और दूसरे कच्चे माल भी यथेष्ट मान में उत्पन्न होते हैं। बस इन्हीं के

लालच से गोरों ने उत्तर और दक्षिण में अच्छी तरह अपना अड्डा
जमाया है। वे वहाँ बस गये हैं, और उन देशों को अपना बना
बैठे हैं। उन प्रदेशों को उपयोगी बनाने में भी उन्होंने बहुत कुछ
परिश्रम किया है और इसीलिए वे अब उन प्रदेशों पर अपना
अधिकार जताते हैं। पर वे यह सोचने की आवश्यकता नहीं
समझते कि आरम्भ में ही उनको इस बात का कोई अधिकार नहीं
था कि वे दूसरों के देश में जाकर वहाँ के निवासियों को जीत
कर अपने अधीन करते और उनके देश की सम्पत्ति पर अधिकार
जमाते। उन्होंने उन देशों में बहुत कुछ सुधार और उन्नति अवश्य
की है, पर जब उन देशों के निवासी संसार की सारी व्यवस्
अच्छी तरह समझ लेंगे, सयाने हो जायँगे, तब वे उनको वहाँ
निकालने का उद्योग करेंगे। उस समय दोनों में खूब झगड़ा हो
वे गोरे कहेंगे कि हम ने इन देशों को बहुत परिश्रम करके उपयो
बनाया है, और हबशी कहेंगे कि तुम इन देशों को उपयोगी बन
वाले होते कौन हो? तुम अपने घर का रास्ता लो। उन देशों
अङ्गरेजों और फ्रांसीसियों की ही प्रधानता है और उन्हीं दोनों
हबशियों की मुठभेड़ होंगी। धूसर वर्ण का आफ्रिका पर व

वाले धूसर वर्ण के लोगों को दबा कर हबशियों को और उनके देश को अपने अधिकार में कर लेना चाहिए। पर वे स्वार्थ के कारण यह नहीं सोच सकते कि यह औषध भी एक प्रकार के रोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस उपाय से सम्भव है कि वे और कुछ समय तक आफ्रिका पर अधिकार बनाये रखें, पर सदा के लिए किसी देश को अपने अधिकार में रखने का विचार शेखचिल्ली के विचारों से कम नहीं है। ऐसे शेखचिल्ली यह भी समझते हैं कि कम से कम आफ्रिका के सम्बन्ध में हमें कृष्ण अथवा धूसर वर्ण के लोगों से कुछ भी भयभीत न होना चाहिए और वहाँ अपना बल बढ़ाने का उद्योग करना चाहिए। वे बेचारे पुराने इतिहासों से तो कुछ शिक्षा ग्रहण ही नहीं कर सकते; क्योंकि स्वार्थ ने उनकी आँखों पर गहरा परदा डाल रक्खा है। पर हमें आशा करनी चाहिए कि समय अवश्य उनकी आँखें खोल देगा कि न तो कोई सदा बलवान और शासक बना रह सकता है, और न सदा दूसरों को मूर्ख बना कर उनके धन आदि का अपहरण ही कर सकता है।

---

## रक्त वर्ण

### ( १ )

रक्त वर्ण के लोग प्रायः सब अमेरिका के [illegible] में [illegible] रेगा तक रहते हैं। ये लोग अबोरिजिनल या अमेरिकन इंडि-यन कहलाते हैं। जिस समय कोलम्बस ने भारत को ढूंढते ढूंढते अमेरिका का पता लगाया था और उसी को भूल से भारत समझा था, उस समय ये रक्त वर्ण के लोग सारे उत्तर और दक्षिण अमेरिका में भरे हुए थे। यद्यपि ये लोग भी कृष्ण वर्ण के लोगों की भाँति सारे संसार से अलग रहते थे, तथापि ये पीत और धूसर वर्ण के लोगों के समान ही अथवा उनसे कुछ ही कम सभ्य थे। पर गोरों ने यहाँ पहुंच कर उनका इतना अधिक और इतने भीषण रूप से नाश किया कि अब उनकी बहुत ही थोड़ी संख्या बच रही है। गोरों ने उनका शिकार खेल खेल कर और उनको गोलियां मार मार कर उनका बहुत बड़ा अंश बहुत ही बुरी तरह नष्ट किया। जितने भीषण उपायों से और जितने स्वार्थान्ध होकर गोरों ने इन रक्त वर्ण वालों का नाश किया, यदि उसका पूरा पूरा वर्णन किया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार हो जाय। और साथ ही लोगों को यह भी पता लग जाय कि आरंभ

में जिन गोरों ने अमेरिका पर अधिकार प्राप्त किया था, वे वास्तव में मनुष्य नहीं, बल्कि पूरे पूरे राक्षस थे। इन गोरों ने रक्त वर्ण वालों का नाश कर अन्त में उत्तर अमेरिका का वह सारा प्रदेश अपने हाथ में कर लिया जो आज कल कनाडा और संयुक्त राज्य कहलाता है। दक्षिण अमेरिका का दक्षिणी भाग भी इन गोरों ने इन्हीं उपायों से अपने लिए खाली कर लिया और अब रक्त वर्ण के लोग केवल ब्रेजिल और पेरू आदि देशों में ही, और वह भी बहुत ही थोड़ी संख्या में पाये जाते हैं। अब उत्तर और दक्षिण अमेरिका के बाकी समस्त प्रदेश इन गोरों की मानों पैतृक सम्पत्ति बन गये हैं। गोरों ने अनेक देशों के निवासियों को जीतकर अपने अधिकार में तो अवश्य कर लिया है, पर यदि उन्होंने कहीं किसी जाति का देश छीनने के लिए जंगली जानवरों की तरह किसी सभ्य जाति का शिकार खेला है, तो वह यहीं अमेरिका में। यों तो गोरी जाति पर आधुनिक इतिहास में जितने अधिक कलङ्क हैं, उतने शायद सारे संसार की अन्य जातियों पर सब मिलाकर भी उतने अधिक कलंक न होंगे, पर रक्त वर्ण के लोगों के नाश के सम्बन्ध में उन पर जो कलंक है, उसके सामने उन सब कलंकों की भी कोई गिनती नहीं है! बहुत ही अच्छा होता, यदि इस सम्बन्ध का कोई विस्तृत और निष्पक्ष इतिहास लिखा जाता, क्योंकि उससे लोगों को इस बात का पता तो लग जाता कि जो गोरी जाति आजकल अपने परम सभ्य होने का इतना अधिक अभिमान करती है, उसकी सभ्यता की नींव कैसी कैसी घृणित और निन्द-नीय करतूतों में रखी गई थी! अस्तु।

दक्षिण अमेरिका के मध्य के कुछ प्रदेशों में अब भी रक्त वर्ण

के थोड़े से लोग इन गोरों के लिए भार-स्वरूप बच ही गये हैं। उन्हें शायद इन लोगों ने कृपाकर चिड़ियाखानों में नहीं तो कम से कम प्रदर्शिनियों आदि में रखने के लिए ही बचा रखा है। लेकिन फिर भी शुद्ध रक्त वर्ण के लोगों की बहुत ही कमी है। उनमें अधिकांश को या तो इन गोरों ने स्वयं ही वर्णसंकर बना डाला है और या उनमें अपने गुलाम हबशियों का रक्त मिलवा दिया है। इस समय शुद्ध और वर्ण संकर दोनों प्रकार के अमेरिकन इण्डियनों की संख्या ४,००,००,००० के लगभग है। इसके अतिरिक्त इनके प्रदेशों में लाखों करोड़ों हबशी आदि भी रहते हैं। पर गोरों की आबादी औसत १० प्रति सैंकड़े से अधिक नहीं है। पाठकों को इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि लेख में हमने वेस्ट इण्डीज टापुओं अथवा दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी प्रदेशों को नहीं लिया है। वेस्ट इण्डीज में तो रक्त वर्ण वालों का प्रायः पूरा पूरा नाश ही हो चुका है और वहां हबशियों की बस्ती बस गई है और दक्षिण अमेरिका को, और विशेषतः वहाँ के आर्जेण्टाइन और युरुग्वे प्रदेशों को इन गोरो ने अपनी बपौती बना लिया है। वहाँ हबशी तो बिलकुल नहीं हैं, पर रक्त वर्ण के बहुत ही थोड़े से लोग हैं। इधर कुछ दिनों से बेचारे रक्त वर्ण वालों की जान बचने लगी है और धीरे धीरे उनकी संख्या में कुछ वृद्धि होने लगी है। यह उस प्रदेश की बात है जिसे आज कल ये गोरे लैटिन अमेरिका कहने लगे हैं और जो दक्षिण अमेरिका के रायो ग्रैण्ड से उसके दक्षिणी अन्तरीप हार्न तक विस्तृत है।

लेटिन अमेरिका का विकास स्पेन वालों की विजय से आरम्भ हुआ था। यहाँ विजय शब्द जरा ध्यान रखने योग्य है; क्योंकि

इसका प्रयोग वास्तव में शिकार के लिए किया गया है। जिस प्रकार जंगली पशुओं का शिकार करके उन पर विजय प्राप्त की जाती है, उसी प्रकार यहाँ रक्त वर्ण वालों का शिकार करके उन पर भी विजय प्राप्त की गई थी। पहले अमेरिका के संयुक्त राज्यों में गोरों ने अपने उपनिवेश स्थापित किये थे और वहाँ वे अपने बाल-बच्चों को ले जाकर रहे थे। वहाँ के रक्त वर्णवालों को, जिन की उच्च कोटि की सभ्यता के आज कल बड़े बड़े गीत गाये जाते हैं और जिनकी प्राचीन सभ्यता आदि की खोज करने के लिए करोड़ों रुपये वार्षिक का व्यय किया जाता है, इन गोरों ने पहले स्वार्थवश बिलकुल जंगली समझ लिया था, और अनेक प्रकार के अत्याचारपूर्ण कृत्यों से उनका नाश आरम्भ कर दिया था। जहाँ रक्त वर्ण के लोग मिलते थे, वहीं वे या तो गोलियों से मार डाले जाते थे और या अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि बाल-बच्चे भी छोड़ कर जंगलों में भागने के लिए विवश किये जाते थे। ये रक्त वर्ण वाले थे तो परम सभ्य, पर इनका एक मात्र-दोष यही था कि ये गोली बारूद का आविष्कार नहीं कर सके थे और न परम सभ्य गोरे विजेताओं की तरह छल कपट और स्वार्थ-साधन करना जानते थे। इनके यहाँ उस समय पूर्ण सत्य-युग व्याप रहा था, इसी लिए ये कलियुगी राक्षसों का मुकाबला करने में असमर्थ थे। इनका यह अपराध कुछ कम नहीं था, इस लिए गोरे इनका नाश करने के लिए विवश हुए थे। चुटकी बजाते हुए इन थोड़े से गोरों ने रक्त वर्णवालों के देशों में पहुंच कर उन के बड़े बड़े राज्य और साम्राज्य नष्ट कर दिये, उनके पुरुषों का नाश कर दिया और उनकी स्त्रियों तथा सम्पत्ति को अपने अधि-

कार में कर लिया। यहीं इन गोरों की सभ
में बीजारोपण था। हजार दो हजार दान
देवताओं का जितने सहज में और जितन
किया, यदि उनका पूरा पूरा वर्णन किया
मनुष्य का खून खौलने लगे और यह उन
का मुँह देखने में भी पाप समझे। जि
को फतह करने के लिए स्पेनी महावीर का
उस समय उसके केवल ६०० साधारण सैनिक
पिंजारों ने तो केवल ३१० साथियों को  कर ही
अपनी विजय यात्रा आरम्भ की थी। बस इसीसे
कि ये गोरे कितने वीर थे और बेचारे रक्तवर्ण वाले
और नामर्द थे! इन महावीरों को इतने थोड़े से
सहायता से गोले गोलियाँ चलाकर इतने अधिक मनुष्यों
करते लज्जा भी न आई। लज्जा कैसे आती वहाँ तो जर
और जन इन तीनों की प्राप्ति का प्रश्न था। अपने पूर्वजों के
कृत्यों का समर्थन करने के लिए ही न आज कल के यूर
जोरों के साथ इस सिद्धात का प्रतिपादन करते हैं कि संस
जो सब से अधिक योग्य और समर्थ होगा, वही जीवित
सकेगा, अयोग्य और असमर्थ को नष्ट हो जाना पड़ेगा।
योग्यता और सामर्थ्य का आज कल संसार में यही अर्थ रह गय
है कि मनुष्य हो कर भी अपने से अयोग्यों और असमर्थों क
नाश कर डालो, उनकी जमीन, उनकी दौलत और उनकी औरतें
छीन लो। बस फिर तुम संसार में
माने जाओगे और

यश के जो भागी बनोगे, वह-अलग ! क्यों, कैसी सभ्यता है !

पाठक कहीं भ्रम में न आ जायँ और यह न समझ बैठें कि यह तो कई शताब्दि पहले की बात है। आज कल के गोरे ऐसा नहीं करते अथवा ऐसा करना नहीं चाहते। उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि आज कल संसार में इन गोरों के द्वारा जो कृत्य हो रहे हैं, उनका बीजारोपण इन्हीं कृत्यों से हुआ था। फल-फूल चाहे देखने में बीज के बिलकुल समान न हो, पर उनमें बीज का प्रभाव सदा बना रहता है। आज कल के गोरों के कृत्य इन्हीं पुराने कृत्यों के केवल कुछ सुधारे और सँवारे हुए रूप ही हैं। और कुछ नहीं। पहले के मुक्के खाली हाथ चलते थे, आजकल वे मुक्के मगरमच्छ के दस्ताने चढ़ा कर चलाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त पहले खाली जहर दिया जाता था; आजकल चीनी में लपेटकर दिया जाता है। बस, इतनी ही उन्नति और इतना ही सुधार हुआ है। इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है। जो निर्घृण कृत्य पहले खुले आम किया जाता था, उसे अब उसी तरह करने का साहस उनको नहीं रहा। अत वह मुँह ढांक कर किया जाता है।

आजकल अन्य-वर्णीय जातियों के जो लोग अमेरिका में रहते हैं उनकी संख्या कम करने के लिए वहां कु कु क्लैक्स क्लैन नामक एक गुप्त संस्था निर्माण हो गई है इसका संगठन बड़ा गुप्त और शक्तिशाली है। उसके सदस्यों की संख्या लाखों में है। उनका उद्देश है गोरों के मनुष्य के मार्ग में विघ्न उपस्थित करने वाली सभी जातियों का हर उपाय से नाश करना उसके पास साधन-सम्पत्ति भी खासी है। कहा जाता है कि वहां के बड़े बड़े अधि-

कहीं तक उनके सदस्य हैं। परन्तु यह कहना कठिन है ... वर्णों की सभी जातियों में जो गोरों का द्वेष बढ़ रहा है उसके ... वेग के सामने यह बेचारी संस्था कहाँ तक टिक सकेगी।

गोरे बहादुरों ने निहत्थे और निरीह पुरुषों को अपने पूर्व... की भूमि छोड़ कर भागने या नष्ट होने के लिए विवश किया और उनकी अतुल संपत्ति पर अधिकार कर लिया। इस संपत्ति के सम्बन्ध में हम इतना ही कह देना यथेष्ट समझते हैं कि वह अतु... थी और इतनी अधिक थी, जितनी इन गोरों ने पहले कभी स्व... में भी नहीं देखी थी। यदि इन विजेताओं और विजितों की उ... समय की आर्थिक अवस्था की तुलना की जाय तो कहना पड़े... कि अभागे विजित लोग लखपती और करोड़पती थे और उन... सामने गोरे विजेता बहुत ही साधारण, बल्कि प्रायः दरिद्र थे। उस समय विजेताओं का मुख्य उद्देश्य भी सम्पत्ति प्राप्त करना ही था और इसी सम्पत्ति के लिए उन्होंने ऐसे ऐसे क्रूर कृत्य कि... थे, जिनकी तुलना नहीं हो सकती। इन्होंने पहले तो रक्त वर्ण वालों को मार कर उनकी सम्पत्ति पर अधिकार किया और त... उनके देश पर। जब ये वीरवर अपने घर से इतना बड़ा धर्मयुद्ध करने निकले थे, तब ये अपने साथ अपनी स्त्रियों को तो ले ह... नहीं गये थे। और दूसरे, विजेताओं को इस बात का अधिका... भी होता है कि वे विजितों की सम्पत्ति के अतिरिक्त उनके देश और स्त्रियों पर भी अधिकार कर लें। इसलिए इन्होंने उन भाग... हुए अथवा मरे हुए रक्त वर्ण वालों की स्त्रियों को भी अपने अधि... कार में कर लिया और उस प्रकार रक्त वर्ण वालों पर सर्वाङ्ग पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। पुरुषों के नाश के कारण रक्त वर्ण की

वंशवृद्धि तो बिलकुल रुक गई और वर्ण-संकर सृष्टि ने जोर पकड़ा। एक गये बीते गोरे सिपाही के पास भी रक्त वर्ण के सैकड़ों गुलाम और सैकड़ों स्त्रियाँ दिखाई देने लगीं। अंधे के हाथ बटेर नहीं बल्कि बटेरों का झुण्ड लग गया। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में सारा देश वर्ण संकरों से भर गया। आजकल के अधिकांश यूरोपियन भी और अमेरिकन भी इन कृत्यों की बहुत अधिक निंदा करते हैं, पर वे इसके लिए केवल स्पेनियों को ही दोषी ठहराते हैं। पर हम इस समय केवल वर्णों के कृत्यों और अवस्थाओं आदि का ही वर्णन कर रहे हैं और हमें अपने काम के लिए गोरों की भिन्न भिन्न शाखाओं का विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम उन शाखाओं में इसलिए कोई विशेष अन्तर भी नहीं समझते कि आखिर वे सब हैं तो एक ही वंश-वृक्ष की शाखा; इसलिए हम उन सब को एक मान कर ही चलते हैं। आशा है, इसके लिए पाठक हमें दोषी न ठहरावेंगे।

स्पेनियों ने रक्त वर्ण की स्त्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके जो सन्तान उत्पन्न की थी, वह मेस्टिज़ो या चोलो कहलाई। रक्त वर्ण के जिन लोगों को स्पेनियों ने पकड़ कर अपना गुलाम बनाया था, वे बेचारे अपने गोरे प्रभुओं के अत्याचार सहने में असमर्थ थे; इसलिए और कोई उपाय न देख कर धीरे धीरे स्वर्ग का रास्ता पकड़ने लगे। लोग कहते हैं कि एक पाप से अनेक पापों की सृष्टि होती। गोरों ने अमेरिका में इतने पाप किये थे। इन पापों से और पापों की सृष्टि क्यों न होती! उनके पास यथेष्ट सम्पत्ति भी हो गई थी, यथेष्ट भूमि भी हो गई थी और यथेष्ट स्त्रियाँ भी हो गई थीं। भला पाप के इतने साधनों के रहते वे

अधिक दाम क्यों न करते ! जब उनके रक्त वर्ण के गुलाम कम मिलने लगे, तब नये गुलामों की चिन्ता हुई; क्योंकि इतने ऐश्वर्य वैभव होते हुए इनका काम बिना गुलाम के कैसे रह सकता था ! इस काम के लिए उन्हें आफ्रिका के हबशी सबसे अधिक उपयुक्त दिखाई दिये । वे झट आफ्रिका से हबशी गुलाम ला ला कर भेड़ बकरियों की तरह उनका व्यवसाय करने लगे । इन हबशी गुलामों के साथ भी जो जो अत्याचार हुए, उनका वर्णन सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । न तो हमारे पास उसका वर्णन करने के लिए स्थान ही है और न हम में इतनी सामर्थ्य ही है । यदि पाठक चाहें तो अन्य ग्रंथों में उनका वर्णन पढ़ सकते हैं । हमारा तात्पर्य केवल यह बतलाना ही है कि स्पेनियों के कारण वहाँ वर्ण संकरता कितनी और कैसे वृद्धि हुई। रक्त वर्ण की स्त्रियों को तो गोरे अपने पास रखते ही थे और उनसे सन्तान उत्पन्न करते ही थे। अब वे हबशी जाति की स्त्रियों को भी कृतार्थ करने लगे । इस संयोग से मुलटो नामक वर्ण-संकर जाति की सृष्टि हुई । उधर रक्त और कृष्ण वर्ण के लोगों के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न हुई, वह जम्बू कहलाई । तात्पर्य यह कि थोड़े ही समय में दक्षिण अमेरिका में गौर, कृष्ण और रक्त इन तीनों वर्णों के संयोग से अनेक ऐसी रंगविरंगी और तरह तरह की वर्ण संकर जातियों की सृष्टि हो गई जो सब प्रकार से अभूतपूर्व और अनुपम थी ।

लेकिन इतना होने पर भी एक बात थी । राजनीतिक दृष्टि से इन वर्ण-संकर जातियों का उन देशों में कुछ भी महत्व नहीं था । स्पेनी लोग अपने आपको देश का मालिक और शासक समझते थे और उनके राज्य में शुद्ध गोरों के अतिरिक्त और किसी को

किसी प्रकार का राजनीतिक, सामाजिक अथवा नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं था। इतने पर भी तमाशा तो यह था कि यूरोप में जन्म लेनेवाले स्पेनी अमेरिका उपनिवेश में जन्म लेनेवाले अपने स्पेनी भाइयों को भी अपने से तुच्छ समझते थे। अमेरिका में जन्म लेनेवाले स्पेनी यूरोप में क्रियोल कहे जाते थे। धीरे धीरे ये क्रियोल लोग अनेक बातों में पतित भी होते गये जिसके कारण वे दिन दिन अपनी जन्मभूमि में और भी निकृष्ट माने जाने लगे। एक तो उन देशों का जल-वायु कुछ गरम होने के कारण इन युरोपियनों के अनुकूल नहीं था, और दूसरे कृष्ण तथा रक्त वर्ण की स्त्रियों के साथ सम्बन्ध होने के कारण भी वे दिन पर दिन पतित और अयोग्य होते जाते थे। यद्यपि कानून बनाकर अनेक रुकावटें खड़ी की गई, तथापि रक्त और कृष्ण वर्णने गोरे वर्ण को अपने आप में मिला लिया। फिर भी जब तक वहाँ स्पेनियों का शासन था, तब तक स्पेनी वंश की थोड़ी बहुत रक्षा होती ही जाती थी, अथवा यों कहना चाहिए कि जिस व्यक्ति का रंग कुछ गोरा होता था, वही गौर वर्ण का मान लिया जाता था और समाज में उसी का आदर होता था। पर आगे चलकर वह बात भी न रह गई।

इसके उपरान्त लैटिन अमेरिका में स्पेन के विरुद्ध क्रान्ति हुई। क्रियोलों को यूरोपवाले तुच्छ समझते थे और उनके साथ भी अनेक प्रकार के अन्याचार करने लग गये थे। इसलिए क्रियोलों ने यूरोपियनों के साथ लड़ना भिड़ना आरम्भ कर दिया। उनका यह झगड़ा १८०९ में आरम्भ हुआ था और प्रायः बीस वर्ष तक चलता रहा। दोगले गोरों ने शुद्ध गोरों को दबा लिया और शुद्ध

गोरों को वहाँ से भागना पड़ा। दूसरी वर्ण-संकर जातियों ने भी उस विद्रोह में क्रियोलों का साथ दिया था, इसलिए जब क्रियोलों की विजय हो गई, तब वे वर्ण-संकर उनसे अपना पुरस्कार माँगने लगे। क्रियोल चाहते थे कि अब जो नई सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था हो, उसमें भी वही पुराना सिद्धान्त काम दे, औ... वर्ण को ही सब प्रकार के अधिकार प्राप्त हों। वे चाहते ... राजकार्यों मे मत देने का अधिकार केवल गोरों को ही प्राप्त ... उस समय उत्तर अमेरिका और फ्रान्स में राज्य-क्रान्तियाँ हो ... थी और सब जगह प्रजातंत्र की चिल्लाहट भी हुई थी। इसलिए ... वहाँ के वर्ण-संकर भी कहने लगे कि हमें मत देने का अधिकार ... मिले और सब लोगों को समान् अधिकार मिलें। केवल वर्ण के ... चार से किसी को अधिक और किसी को कम अधिकार ... यँ। यह गडबड देखकर राज्य-क्रान्ति का प्रधान नेता बोल... वहाँ से गायब हो गया और उसके पीछे उसके साथियों ... पकों में छोटे मोटे अनेक युद्ध छिड गये, जो बहुत दिनों ... रहे। सारे देश मे अराजकता फैल गई, जिसके परिणाम-स्... हाँ गोरों का प्रभुत्व तो घट गया और वर्ण-संकरों का राज... तथा सामाजिक अधिकार बढ़ गया। गोरे अमीरों पर ... र्ण-संकर सैनिक आक्रमण करके उन्हें अपनी आज्ञानुसार ... लिए विवश करते थे। वे गोरे अमीरों पर अनेक प्रकार ... ार करके उनके गुलामों को मुक्त करते थे और अपनी ... र प्रजातंत्र राज्य स्थापित करते थे।

... ब बातों का परिणाम स्वभावतः बहुत बुरा हुआ। ... णाम हो भी नहीं सकता था। पहले स्पेनियों के शासन-

काल में वर्ण-संकरों पर अत्याचार होते थे और बलपूर्वक शान्ति रक्खी जाती थी। अब वर्ण-संकर लोग स्पेनिशों पर अत्याचार करते थे और सब जगह अशान्ति तथा अराजकता का राज्य हो गया था। इस झगड़े में अयोग्य वर्ण संकरों की खूब बन आई और उनके हाथों अनेक शुद्धवंशियों और योग्य तथा बुद्धिमान पुरुषों का अन्त भी हुआ। स्पेनियों ने पाप का जो बीज बोया था, अब वही फल फूल रहा था। सबको वे फल चखने और वे फूल सूँघने पड़ते थे। प्रकृति की ओर से यह अनिवार्य दण्ड था जो सबको भोगना पड़ता था। भला उससे कोई कैसे बच सकता था।

प्रायः उन्नीसवीं शताब्दि मध्य तक लैटिन अमेरिका की अराजकता आदि के कारण यही दुर्दशा होती रही। अराजकता के साथ अत्याचार भी सदा अनिवार्य ही हुआ करता है। जो जबरदस्त होता था, वही बरसों तक दूसरे को अपने अधिकार में रखता और उनपर हुकूमत चलाता था। कहीं कहीं कुछ शान्ति भी स्थापित हो चली थी। पर अधिकांश स्थानों में यही होता था कि कुछ जबरदस्त अपने थोड़े से साथियों को लेकर अधिकारारूढ़ हो जाते थे और अपने आसपास के प्रदेशों को अपनी आज्ञानुसार चलने के लिए विवश करते थे। पर इन जबरदस्तों और वर्ण-संकरों के कारण शान्ति स्थापित नहीं होने पाती थी। पर दो एक प्रदेश ऐसे भी थे जिनमें अराजकता नहीं फैल सकी थी और जहाँ शान्तिपूर्वक उन्नति हो रही थी। इन प्रदेशों में चिली मुख्य था। बात यह थी कि चिली का जलवायु बहुत ठण्डा था और वहाँ सोने आदि की खानें भी नहीं थीं, जिससे विदेशियों को अधिक लूटपाट का अवसर मिलता। और इस प्रकार असन्तोष

की उत्पत्ति होगी। यूरोप के अनेक देशों के शुद्ध गोरे वर्ग के लोग वहाँ आकर बसने लगे। वे लोग अपने साथ अपनी स्त्रियाँ और बच्चों को भी वहाँ ले जाते थे इसलिए झगड़ों बखेड़ों का अवसर और भी कम हो गया था। वे लोग देश के मूल वासियों के साथ विवाह सम्बन्ध भी बहुत कम स्थापित करते थे, जिससे वर्ण-संकरी सृष्टि भी वहाँ नहीं होने पाती थी। वहाँ के मूल निवासी इन गोरों से दूर रहते थे और कभी कभी उनसे लड़ भी जाते थे। पहले एक बार चिली में भी क्रान्ति की लहर उठी थी, पर उसका मूल राजनीतिक था, सामाजिक या वर्ण सम्बन्धी नहीं। इसके अतिरिक्त वहाँ नित्य नये शुद्ध गोरे वर्ण के लोग पहुँचते थे जो वहाँ के मूल निवासियों को दबाये रखते थे और अधिक उपद्रव नहीं होने देते थे। अमेरिका की स्वतंत्रता के युद्ध में जो अनेक अँगरेज सम्मिलित हुए थे, वे पीछे से उस देश को अनुकूल पाकर उसी में आ बसे थे। जरमनों की संख्या भी वहाँ कम नहीं थी। इन सब कारणों से चिली में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक व्यवस्था और शान्ति थी।

शान्ति और व्यवस्था आदि में चिली के बाद पेरू, कोलम्बिया और कास्टारिका आदि का नम्बर था। इन देशों में भी बहुत से शुद्ध युरोपियन जा बसे थे जो सामाजिक दृष्टि से देशियों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझे जाते थे। वे गोरे भी अपनी सामाजिक श्रेष्ठता को भली भांति रक्षा करते थे। चिली में तो देशियों की संख्या कम थी, पर इन देशों में देशियों और हबशियों दोनों की संख्या बहुत अधिक थी। वर्ण संकरों की संख्या भी कम नहीं थी। वहाँ भी कुछ झगड़े बखेड़े हुए थे और अब तक थोड़े बहुत होते रहते

हैं, पर अन्य देशों की अपेक्षा कम। वहाँ गोरों का ही विशेष प्रभुत्व है। पर वे गोरे अपने वंश की शुद्धि शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं और उनकी दूसरी या तीसरी पीढ़ी वर्ण-संकर हो जाती है। कास्टारिका एक छोटा सा ठण्डा देश है और बहुत दिनों से वहाँ गोरों का उपनिवेश स्थापित है। वहाँ गोरो ने अपेक्षाकृत अच्छी उन्नति की है।

आरजेण्टाइन और युरुग्वे में भी वहाँ के मूल निवासियो अथवा विदेशियों का उतना अधिक सामाजिक पतन नहीं हुआ है। क्रान्ति के समय वहाँ भी रक्त तथा कृष्ण वर्णवालो की अधिकता थी और उन्होंने भी गोरों को दबा लिया था। वे दोनो देश थे तो ठण्डे और युरोपियनों के अनुकूल ही, पर वहाँ सोना आदि अधिक नहीं था, इसलिए आरम्भ मे स्पेनियों ने उसकी उपेक्षा की थी, वहाँ की भूमि बहुत अधिक उपजाऊ थी जो वहाँ के आदिम निवासियों के हाथ में थी। जो थोड़े से गोरे वहाँ पहुँचे भी थे, वे समुद्र तट पर दो एक बड़े बन्दर बनाकर वहीं रहते थे। पर पीछे से वहाँ पशु-पालन और कृषि-कर्म बहुत अधिकता से होने लगा जिसके कारण वहाँ गोरे भी अधिक संख्या में पहुँचने लगे, अब वहाँ गोरों की ही अधिकता और उन्हीं का प्रभुत्व है। वहाँ के देशी उनके सामने दबते जा रहे हैं। ब्रेजिल के दक्षिणी

फल यहाँ लाखों स्टेशियन, पुर्तगाली और जरमन बसते हैं। ब्रेज़िल के इन दक्षिणी प्रान्तों में बहुत अधिक संख्या गोरों की है और उत्तर के प्रान्तों में रक्त तथा कृष्ण वर्ण के लोगों की अधिकता है।

परन्तु लैटिन अमेरिका के जो प्रदेश गरम हैं, वे प्रायः रक्त वर्णवालों के ही हाथ में हैं। अब यहाँ गोरों का प्रभुत्व प्रायः नहीं के समान हो गया है। वहाँ जो थोड़े बहुत गोरे परिवार हैं भी, उनमें देशियों का रक्त मिल गया है। तो भी उन देशों में उनका प्रभुत्व कम नहीं होने पाया है। पर आजकल वहाँ भी मेक्सिको की भांति उपद्रव होने लगे हैं और गोरों के विरुद्ध वहाँ के रक्त तथा कृष्ण वर्ण के लोग सिर उठाने लगे हैं। कदाचित् वे भी इन गोरों के प्रभुत्व से सन्तुष्ट नहीं हैं।

अनेक विद्वानों का मत है कि लैटिन अमेरिका के वर्णसंकर योग्यता आदि में शुद्ध गोरों की अपेक्षा बहुत कम हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। गोरों और रक्त वर्ण वालों के संयोग से उत्पन्न मेस्टिजो कुछ पर योग्य होते हैं गोरों तथा कालों के संयोग से उत्पन्न मुलटो और भी अयोग्य होते हैं। रक्त तथा कृष्ण वर्ण के संयोग से जो जम्बो उत्पन्न होते हैं, वे तो सब से गये बीते हैं। पेरू के एक प्रसिद्ध विद्वान् का मत है कि अमेरिका के इतिहास में वर्ण सम्बंधी प्रश्न बड़ा ही विकट है। उससे इस बात का पता चलता है कि किस प्रकार कुछ लोगों की उन्नति और किस प्रकार कुछ की अवनति हुई। उसी प्रश्न पर विचार करने से यह भी मालूम हो सकता है कि आज कल अमेरिका में जो अव्यवस्था है, वह किस कारण से है। इसी वर्ण संबंधी प्रश्न पर वहाँ की साम्पत्तिक, व्यापारिक तथा शिल्प संबंधी उन्नति

निर्भर है। शासन की दृढ़ता और देशहित के भावों का आधार भी यही वर्ण संबंधी प्रश्न है। वर्ण संकरता के कारण वहाँ अनेक जटिल प्रश्नों की सृष्टि हो गई है। ऐसी विकट अवस्था में क्या यह संभव है कि लोगों में राष्ट्रीयता के भाव समान रूप से हों? ऐसी स्थिति में पड़े हुए देश किसी बलिष्ठ आक्रमणकारी या श्रेष्ठ आगन्तुक का आक्रमण भी नहीं सह सकते। आगे चलकर वह विद्वान् बतलाता है कि जो गोरे वहाँ पहुँच कर वर्ण-संकर हो गये हैं, वे बहुत ही निकम्मे, आलसी और अयोग्य हो गये हैं। दिन पर दिन उनका भी और उनके साथ रक्त तथा कृष्ण वर्ण वालों का भी अनेक दृष्टियों से पतन होता जाता है। अंत में उस विद्वान् ने उद्धार का एक मात्र उपाय यही बतलाया है कि युरोप के शुद्ध गोरे वहाँ पहुँच कर अपना अधिकार तथा प्रभुत्व स्थापित करें। इसके अतिरिक्त रक्षा का और कोई उपाय नहीं है। इसी से मिलता जुलता मत और भी अनेक विद्वानों का है। पर हम यह बात नहीं मानते। हमारी समझ में इस प्रकार की बातें कर के गोरे उन प्रदेशों में अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए बहाने निकालते और पेशबंदियाँ करते हैं। यदि आज वहाँ बहुत से गोरे पहुँच जायँ तो उसका परिणाम यही होगा कि वे कुछ दिनों तक वहाँ के धन का खूब अपहरण करेंगे और तब थोड़े दिनों बाद जब वहाँ के देशी निवासियों की आँखें खुलेंगी, तब फिर वही झगड़े बखेड़े खड़े होंगे जो गोरों के अन्यान्य अधीनस्थ देशों में हो रहे हैं। और अंत में फिर भी विजय देशियों की ही होगी। हाँ इससे पहले गोरों को अनर्थ और अपहरण करने का यथेष्ट अवसर मिल जायगा। इससे पहले जो जो अनर्थ और

उपद्रव हुए हैं। वे भी इन्हीं गोरों के कारण हुए हैं। गोरों ने वहाँ पहुँच कर अनेक प्रकार के अत्याचार किये, लोगों की धन संपत्ति लूटी और देशियों को अपना गुलाम बनाया। इसके बाद वे ऐश आराम में लग गये और वर्ण-संकरी सृष्टि उत्पन्न करने लग गये। आज कल जो उपद्रव और उत्पात होते हैं, वे इन्हीं सब दुष्कर्मों के परिणाम हैं। अब यदि गोरे फिर वही काम किसी दूसरे और अधिक सभ्य रूप में करना चाहेंगे, तो आगे चल कर उसका परिणाम भी इससे कुछ मिलता जुलता ही होगा; क्योंकि गोरों का यह नियम सा हो गया है कि वे पहले तो किसी देश को उन्नत करने और सभ्य बनाने के बहाने अपने हाथ में कर लेते हैं और तब वहाँ अत्याचार और अपहरण करने लगते हैं। अब कुछ दिनों बाद लोगों की आँखें खुलती हैं और वे उनके अधिकार से निकलने का उद्योग करते हैं, तब ये अपना हक बतलाने लगते हैं और दूसरों को विद्रोही तथा अराजक ठहराते हैं। यदि दक्षिण अमेरिका के गरम प्रदेशों मे शांति और व्यवस्था स्थापित करने के बहाने बहुत से गोरे जा बसेंगे, तो थोड़े दिनों बाद उन प्रदेशों में भी वही दृश्य देखने मे आवेंगे जो आज कल गोरों के अधीनस्थ अन्यान्य देशों में देखने में आते हैं। संसार के अनेक बड़े बड़े देशों को तो इन गोरों की शांति और व्यवस्था आदि का पूरा पूरा परिचय मिल चुका है और वहाँ से इनके प्रस्थान का समय समीप आ रहा है। इसलिए अब ये अपने लिए नये नये शिकार ढूँढने की चिंता में लगे हुए हैं और उन्हीं नये शिकारों

हम यह मानते हैं कि दक्षिणी अमेरिका में आज कल शांति तथा व्यवस्था का बहुत अधिक अभाव है। पर प्रश्न तो यह है कि इसमें दोष किसका है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इस के दोषी गोरे ही प्रमाणित होंगे। उन्होंने पहले तो देशियों को लूट मार कर बिलकुल दरिद्र बना दिया और तब कृष्ण वर्ण वालों को ला कर उनके साथ रक्त वर्ण वालों का संयोग करा दिया। साथ ही स्वयं भी अनेक प्रकार के दुराचार तथा अनाचार किये और देश को वर्णसंकरों से भर दिया। अब यदि वे दरिद्र वर्णसंकर अनेक प्रकार के उपद्रव करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। पुराने गोरों ने तो पुराने उपायों से उन लोगों का नाश और पतन किया जिसकी निंदा आज कल के अनेक गोरे भी करते हैं। पर वे ही निन्दक अब सुधार के ऐसे उपाय बताते हैं जो उन पुराने उपायों के केवल परिवर्तित और संशोधित रूप ही हैं। उनका भी मुख्य उद्देश्य अपहरण ही था और इनका भी वही उद्देश्य है। अन्तर केवल उसके प्रकार में है। पर ऐसे लोगों को समझ रखना चाहिए कि जो काम बुरा है वह चाहे अच्छे प्रकार से किया जाय और चाहे बुरे प्रकार से किया जाय, उसका परिणाम सदा बुरा ही होगा। केवल प्रकार बदलने से बुरे काम की बुराई दूर नहीं हो सकती। और साथ ही अब गोरों के शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने के बहाने अधिक दिनों तक नहीं चल सकते।

गोरों ने दक्षिण अमेरिका के रक्त-वर्ण वालों का सर्वस्व लूट लिया, पर उनकी किसी प्रकार की उन्नति करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। अब उनकी दशा प्रायः जंगलियों की सी हो गई है। आधुनिक संसार का, न तो उनको कोई ज्ञान है और न

अनुभव। ये गाँवों में रहकर खेती बारी करते और पशु पालते हैं। गोरे उन पर ठीक ठीक शासन नहीं कर सकते इसलिए ये लोग अवसर पाकर सिर उठाते हैं। ये अपने साथ कुछ आदमी ले लेते हैं और लूट मार कर करके गोरों से अपना पुराना बदला निकालने का उद्योग करते हैं। धीरे धीरे ये अपना अधिकार भी बढ़ा लेते हैं। जब शिक्षित और सभ्य गोरे अधिकार प्राप्त करके अनेक प्रकार के अनर्थ और अत्याचार करने लगते हैं, तब यदि अमेरिका के सीधे सादे रक्त वर्ण वाले अधिकार प्राप्त करके, और वह भी केवल बदला चुकाने के लिए, अनर्थ और अत्याचार करें तो इसमें गोरों को कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। पुराने गोरों की बात जाने दीजिये। यदि आजकल के गोरे भी वास्तव में परोपकारी होते और अमेरिका के रक्त वर्ण वालों का सचमुच कल्याण करना चाहते, तो आज वहाँ शान्ति भी स्थापित हो सकती है और देश भी उन्नत हो सकते हैं। पर कठिनता तो यह है कि गोरे सब जगह केवल अपना ही मतलब निकालना चाहते हैं और ढोंग रचते हैं दूसरों के उपकार का। उपकार के बहाने जिन लोगों का ये लोग अपकार करते हैं, वे यदि इससे असंतुष्ट हों और इनके साथ किसी प्रकार का वैर करें तो इसमें दोष किसका है? स्वयं उपद्रव खड़ा करना और फिर उस उपद्रव के लिए दूसरों को दोषी ठहराना यही गोरों का एक मुख्य सिद्धांत है। इस सिद्धांत के सहारे उन्होंने अबतक अपना बहुत कुछ काम निकाला है और बहुत अधिक आर्थिक लाभ किया है। पर धूर्तता आदि की भी कोई सीमा होती है। इधर सैकड़ों बरसों से संसार इनकी चाल बाजियाँ देख रहा है और अब वह धीरे धीरे होशियार होता जाता

है। अब वह इनके जाल से निकलना चाहता है और भविष्य में इनकी धूर्तता से बचना चाहता है। पर ये भी कुछ कम चतुर नहीं हैं। ये नित्य नये नये बनाते चले जाते हैं। और जब तक इनका बल चलेगा तब तक बनाते रहेंगे। इस जाल का अंत तभी होगा, जब सारा संसार इन गोरों का विश्वास करना छोड़ देगा।

आजकल दक्षिण अमेरिका की जो अवस्था है, उसका संक्षिप्त रूप यही है। गोरों ने वहाँ पहुच कर जो क्रान्ति की, उसके परिणाम स्वरूप वहाँ नई नई क्रान्तियाँ होती हैं। और उन्होंने पहले जो अत्याचार किये थे, उन अत्याचारों के फल स्वरूप वहाँ नये नये अत्याचार होते हैं। इन क्रान्तियों और अत्याचारों का परिणाम यह होता है कि देश के धन और जन की यथेष्ट हानि होती है और देशवासियों का दिन पर दिन पतन होता जाता है। गोरों का अधिकार वहाँ से प्रायः उठ सा गया है और धीरे धीरे वे वहाँ से हटने लगे हैं। वर्ण-संकरों ने अपना अधिकार जमाना चाहा था, पर उन को भी सफलता नहीं हो सकी। वहाँ की अराजकता और अत्याचार देखकर नये गोरों को वहाँ जाकर बसने का साहस भी नहीं होता। वे सोचते है कि जलती हुई आग में बाल बच्चों को लेकर कूदने कौन जाय ? इसलिए

देश पर फिर से अधिकार कर लेंगे। १९१२ में दक्षिण अमेरिका सम्बन्धी अपनी पुस्तक में लार्ड ब्राइस ने लिखा था कि बोलिविया में इधर रक्त-वर्ण वालों के उपद्रव बढ़ चले हैं। अब उनके पास पहले की अपेक्षा हथियार भी अधिक हो गये हैं। उनकी संख्या तो पहले से ही बहुत अधिक है। यदि वे लोग मिल कर गोरों के विरुद्ध कोई उपद्रव करना चाहें तो भीषण उपद्रव कर सकते हैं। उनके उपद्रव की तो इन गोरों को इतनी चिंता है, और स्वयं जो जो अनर्थ तथा अन्याचार कर चुके हैं, उनका कोई ध्यान ही नहीं है। दूसरों का सर्वस्व छीन लेना और जब वे लोग अपना माल वापस करने की कोशिश करें, तो चिन्तित और भयभीत होना ही इन सभ्य गोरों का कर्तव्य रह गया है।

लेटिन अमेरिका के अधिकांश प्रजातंत्र राज्यों में से गोरों का प्रभुत्व तो उठ ही गया। अब वहाँ के वर्ण-संकरों के हाथ से रक्त-वर्ण वाले सब अधिकार छीनना चाहते हैं। अतः अब हमें संक्षेप में इस बात का विचार करना चाहिए कि ये रक्त वर्ण वाले शासन-कार्यों के लिए कहाँ तक योग्य हैं, उनके हाथ में शासन आ सकता है या नहीं और यदि आ सकता है तो वे उसे कहाँ तक अपने हाथ में रख सकते हैं।

इस बात में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि रक्त-वर्ण वाले कृष्ण-वर्ण वालों की अपेक्षा कहीं अधिक योग्य हैं। हबशियों ने विदेशियों के प्रभाव में पड़ कर और उनकी सहायता पा कर भी अब तक कोई विशेष महत्व का अथवा प्रशंसनीय काम नहीं किया। न तो पहले उनकी कोई निज की ही सभ्यता थी और न वे बाद में दूसरों की सहायता से ही

अपनी सभ्यता संघटित कर सके। पर रक्त-वर्ण वालों ने सदा सारे संसार से अलग रह कर भी अपनी बहुत अच्छी सभ्यता संघटित की थी। उन्होंने अपने यहाँ सभ्य समाज की सृष्टि की अनेक प्रकार की उन्नति की और बड़े बड़े राज्य तथा साम्राज्य स्थापित किये। इससे पता चलता है कि उनमें बुद्धि का कभी अभाव नहीं था। मध्य अथवा पौराणिक युगों में युरोप अथवा एशिया वालों ने जितनी अधिक उन्नति की थी, यदि उतनी अधिक नहीं तो भी उससे कुछ ही कम उन्नति इन रक्त वर्ण वालों ने भी अवश्य की थी।

रक्त वर्ण वाले बहुत दृढ़चित्त होते हैं और वे जल्दी दूसरों के प्रभाव में नहीं आते। पर कदाचित अपने इसी गुण के कारण वे विशेष उन्नति भी नहीं कर सकते। वे एक बार जिस अवस्था में पहुँच जाते हैं, उस अवस्था से आगे बढ़ने में उनको बहुत अधिक समय लगता है। यही कारण है कि लोगों को इस बात का सन्देह होता है कि वे आधुनिक सभ्यता की दौड़ में न ठहर सकेंगे। हाँ, यह बात दूसरी है कि आधुनिक सभ्यता की आज कल की दौड़ का ढंग ही बिलकुल बदल जाय। रक्त वर्ण वाले अपनी पुरानी चाल ढाल ही बहुत अधिक पसंद करते हैं और उनको गोरों की चाल ढाल बिलकुल पसंद नहीं है। यद्यपि उनकी भिन्न भिन्न जातियों में परस्पर बहुत अधिक अन्तर है, तथापि मुख्य गुण सब में एक ही है। एक विद्वान् का मत है कि रक्त वर्ण वाले बहुत ही पिछड़े हुए हैं। उनकी बुद्धि मन्द होती है और वे नये विचार ग्रहण नहीं कर सकते। सम्भव है कि आगे चल कर उनमें परिवर्तन हो जाय और वे उन्नति कर सकें, पर

दी। केवल बाधा ही नहीं खड़ी कर दी। बल्कि एक प्रकार से उनका सर्वनाश कर दिया। क्रूर विजेताओं ने उन पर भीषण रूप से आक्रमण करके उनकी सारी सभ्यता का नाश कर दिया, उनका सर्वस्व लूट लिया और उनको गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया। बस उनकी सारी बनी बनाई इमारत गिर गई और उनकी सभ्यता तथा उन्नति का एक प्रकार से अन्त ही हो गया। वे अपने ढंग पर अपनी उन्नति तो करने ही नहीं पाते थे और अपने कारणों से अपने आपको अपने स्पेनी विजेताओं के अनुकूल भी नहीं बना सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे अपनी सब पुरानी आदतों को भूल गये और कोई नई बात सीख ही न सके। बस यही बात गत चार सौ वर्षों से वहाँ हो रही है। इन चार सौ वर्षों में उन्होंने कोई नई बात तो सीखी नहीं और अपनी पुरानी सीखी सिखाई सब बातें भुला दीं। उनके जितने मानसिक गुण थे, वे सब नष्ट हो गये और अब से बिलकुल अयोग्य गुलाम रह गये हैं। न तो उनको यथेष्ट भोजन मिलता है और न कोई उनके स्वास्थ्य आदि का ही ध्यान रखता है। उन्हें दिन रात पशुओं के समान काम करना पड़ता है। इसलिए दिन पर दिन उनका नाश होता जाता है। अपने शारीरिक, आर्थिक तथा मानसिक कष्टों को भुलाने के लिए वे आज-कल खूब शराब पीते हैं और यह शराबखोरी उनके नाश में और भी अधिक सहायक होती है।

एक बात और ऐसी है, जो उनके नाश में बहुत अधिक सहायक हो रही है। उनमें वर्ण-संकरता भी भीषण रूप से बढ़ रही है। इसके कारण स्वयं उनका भी पतन होता है और उनके साथ साथ गोरों आदि का भी। वेनेजुला तथा मध्य अमेरिका के दूसरे

उन पर अधिकार जमाने की ताक में हैं । पर यहाँ प्रसंगवश हम यह बतला देना चाहते हैं कि दक्षिण अमेरिका को हम लोग अपने लिए बहुत ही उपयुक्त समझते हैं । वहाँ बहुत सी जमीन बेकार पड़ी है और प्रचुर प्राकृतिक सम्पत्तिका कोई उपयोग नहीं हो रहा है । अराजकता और अनाचार आदि की भी वहाँ कमी नहीं है । तब फिर पीत वर्ण वालों की निगाह उन देशों पर क्यों न हो ? यदि उनको अवसर मिल गया तो वे थोड़े ही समय में ऐसे आश्चर्यजनक रूप से सारे दक्षिण अमेरिका में अपना अधिकार कर लेंगे जिसकी इतिहास में समता न हो सकेगी ।

इधर जापान की पर राष्ट्रीय नीति सदा यही रही है कि जिस प्रकार हो, अपने साम्राज्य की वृद्धि की जाय और पीत वर्ण-वालों के रहन के लिए और अधिक देश हस्तगत किये जायँ । इसलिए लैटिन अमेरिका पर उसकी पूरी-पूरी नजर है । बहुत दिनों से जापानी राजनीतिक इस लैटिन अमेरिका वाले प्रश्न पर विचार कर रहे हैं । उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में चीनियों ने आगे बढ़कर उनका काम और भी प्रशस्त कर दिया था । उस समय बहुत से चीनी आकर पेरू में बस गये थे उनकी भीषण वृद्धि देख कर पेरूवाले इतना घबरा गये थे कि उनको अनेक प्रकार के कानून बनाकर चीनियों का वहाँ आना रोकना पड़ा था । जो बेचारे चीनी कुली वहाँ जाकर बसे थे, उनका रक्षक और समर्थक कोई नहीं था । लेकिन इतना होने पर भी उन्होंने वहाँ यथेष्ट सफलता प्राप्त की थी । यह देखकर जापानियों का हौसला और भी बढ़ गया । काउण्ट ओकुमा ने अमेरिका के प्रसिद्ध समाजशास्त्र-वेत्ता प्रोफेसर रासमें कहा था कि दक्षिण अमेरिका में और

दिन पर दिन बढ़ती जाती है और अमेरिका में स्थान बहुत अधिक है। वहाँ प्राकृतिक सम्पत्ति भी बहुत अधिक है और उपज्र भी खूब होते हैं। आजकल संसार जिस ढंग से चल रहा है, यदि उसी ढंग से यह और कुछ दिनों तक चलता रहा, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि और और विदेशी वहाँ पहुँच कर अपना प्रभुत्व जमा लेंगे। पर अभी यह कोई नहीं कह सकता कि वहाँ किसका प्रभुत्व होगा। सम्भव है कि अमेरिका के संयुक्त राज्य वहाँ के और सब देशों को भी मिलाकर एक कर लें और उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका पर उसका और उसके साथियों का अधिकार हो जाय। यह भी सम्भव है कि यूरोप की कुछ बड़ी बड़ी शक्तियाँ जब यह देखें कि दक्षिण अमेरिका की बहुत अधिक प्राकृतिक सम्पत्ति बिलकुल व्यर्थ पड़ी है और वहाँ के लोग उसका दुरुपयोग कर रहे हैं, तब वे मिलकर उस पर आक्रमण करें और उसे अपने अधिकार में कर लें और यह भी सम्भव है कि जापानी वहाँ पहुँचने का उद्योग करें।

रंग ढंग देखते हुए कुछ लोगों को इस बात का संदेह हो रहा है कि शीघ्र ही दक्षिण अमेरिका पीत वर्ण वालों के हाथ में चला जायगा। हम पहले ही बतला चुके हैं कि पीत वर्णवालों की संख्या बराबर बढ़ती जाती है और उनके पास रहने के स्थान की बहुत कमी है। वे अपने लिए किसी उपयुक्त और प्रशस्त स्थान की चिंता में हैं। हम यह तो बतला ही चुके हैं कि पीत वर्ण वालों ने यह निश्चय कर लिया है कि हम अपने प्रदेशों में विदेशियों को अब नहीं घुसने देंगे। आगे चलकर हम यह भी बतलावेंगे कि गोरों के किन किन देशों पर उनकी नजर है और वे किस प्रकार

ध्नों को जहाँ पाओ, वहीं उनको मार डालो, उनकी आँखें निकाल लो, उनका सिर तोड दो, आदि आदि।

जापानियों के लिए ये सब बातें बहुत ही अनुकूल पड़ती है। मेक्सिको के रक्त वर्णवालों के ऐसे भावों से वे यथेष्ट लाभ उठाना चाहते हैं और इसीलिए समय समय पर उनको उत्तेजित भी करते रहते हैं। वे रक्त वर्ण वालो को अपनी ओर मिलाने के लिए कहते हैं कि हम दोनों जातियो में तो बहुत कुछ समानता है और किसी समय हम दोनो बिलकुल एक थे। पर बीच में अलग हो गये थे और एक दूसरे को भूल गये थे। १९१४ के आरंभ में मेक्सिको का एक राजदूत राजनीतिक उद्देश्य से जापान भी गया था। वहाँ उसका खूब सत्कार हुआ था और दोनो देशो के निवासियों में मित्र-भाव स्थापित करने के अनेक उद्योग किये गये थे। महायुद्ध के समय जापान और मेक्सिको में प्रायः आपसदारी का संबंध था। जहाँ तक संसार को मालूम है, अभी तक दोनों देशों में कोई गुप्त सममौता नहीं हुआ है। पर फिर भी मेक्सिको के एक लेखक का कहना है कि १९१२ में ही मेक्सिको के राष्ट्रपति मडेरो ने दक्षिण अमेरिका के अन्यान्य प्रजातंत्रों तथा जापान के साथ सममौता कर लिया था कि आवश्यकता पड़ने पर सब लोग मेक्सिको की सहायता करेंगे। यह भी कहा जाता है कि जब मेक्सिको नगर में आंतरिक विद्रोह के कारण बारह दिन तक भीषण मार-काट होती रही और अंत में यह अपवाद फैली कि अमेरिका के संयुक्त-राज्य बीच में हस्तक्षेप करना चाहते हैं, तब राष्ट्रपति मडेरोने कहा था कि अभी शायद अमेरिकन सरकार को यह मालूम नहीं है कि इस बार उसको मेक्सिको से नहीं बल्कि

जो युद्ध किया था, उसे मेक्सिको वाले अभी तक भूले
थे उसका बदला चुकाना चाहते हैं। और संयुक्त राज्य
से प्रदेश वापस लेना चाहते हैं, जो उस समय उनसे छीने
थे। जब युरोप में महायुद्ध आरम्भ हुआ, तब अमेरिका के
राज्य युद्ध के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। यह देखकर मे
वालों ने उनके विरुद्ध भीषण विद्रोह खड़ा कर दिया था।
हियों ने दक्षिण मेक्सिको के निवासियों में घोर असन्तोष
किया, दक्षिण के हबशियों को भी भड़काया और टेक्सा
अशान्ति उत्पन्न की। ये चाहते थे कि अमेरिकन संयुक्त रा
दक्षिण के कुछ प्रदेश तो फिर से मेक्सिको में मिला लि
और शेष कुछ प्रदेशों में कृष्ण वर्ण वालों का प्रजातंत्र स्था
दिया जाय। इस काम के लिए वे जो सेना संघटित करना
थे, उस में वे गोरों को बिलकुल नहीं रखना चाहते थे।
यह भी विचार था कि अमेरिकन संयुक्त राज्यों के दक्षिणी
की गोरी प्रजा एक दम कत्ल कर दी जाय। पर मेक्सिको
के ये विचार कार्य रूप में परिणत न हो सके और उनका विद्रोह
सहज में ही दबा दिया गया।

यद्यपि उस समय मेक्सिको वालों को विद्रोह में सफलता नहीं
हुई, तथापि उस विद्रोह से इतना पता अवश्य चलता है कि वहाँ
के निवासी गोरों के घोर विरोधी हैं। उस विद्रोह के नेता ऐसे वैसे
नहीं, बल्कि बहुत समझदार और प्रभावशाली लोग थे। इधर
कुछ दिनों से मेक्सिको में गोरे अमेरिकनों पर भी खूब आक्रमण
होते हैं। वहाँ के समाचार-पत्र तो खुले आम लोगों को अमेरिका
के विरुद्ध भड़काते हैं और स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि इन अमेरि-

अब तक तो जापानी लैटिन अमेरिका के सम्बन्ध में कि
प्रकार के विचार ही कर रहे थे, पर अब उन्होंने उन विचारों
अनुसार थोड़ा बहुत काम करना भी आरम्भ कर दिया है। दक्षिण
अमेरिका के पश्चिम तट के देशों में जापानी व्यापारियों आदि की
संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। वहाँ के बाजार अभी से
जापानी माल से भरने लगे हैं। जापानी महाजन वहाँ अनेक प्रकार
के अधिकार और सुभीते प्राप्त करने के उद्योग में लगे हुए हैं।
अमेरिका के संयुक्त राज्यों को यह देखकर चिन्ता हो रही है और
वे इस बात का उद्योग कर रहे हैं कि मेक्सिको आदि देशों में
जापानियों को किसी प्रकार के अधिकार न मिलने पावें।

अभी लैटिन अमेरिका में जापान कोई बहुत बड़ी कारवा
नहीं कर रहा है। अभी तो वहाँ की नाप-जोख ही उसने शुरू
की है। अभी वह वहाँ के लिए अपना कार्यक्रम बना रहा है। ह
आगे चलकर वह कार्रवाई भी करने लगेगा। वह अभी से अपनी
कार्रवाई शुरू कर देता, पर अमेरिका के बाधक होने के कारण
ही वह अभी कुछ रुक रहा है। वह अ[illegible] है वि

यदि हम दक्षिण अमेरिका के देशों पर अधिकार करना चाहेंगे तो उसके पहले हमें अमेरिका के संयुक्त राज्यों से लोहा बजाना पड़ेगा। अभी वह अमेरिका के साथ लड़ना नहीं चाहता; क्योंकि पूर्वी एशिया में ही अभी उसे कई काम दिखाई पड़ते हैं। तो भी वह समय की प्रतीक्षा में है। ज्यों ही वह उपयुक्त समय देखेगा, त्यों ही वह अपना काम कर गुजरेगा। लैटिन अमेरिका में उसने बहुत से लोगों को अपना पक्षपाती और समर्थक भी बना लिया है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों ने अनेक ऐसे नियम बनाये हैं जो रक्त वर्णवालों तथा वर्ण संकरों के मार्ग मे बहुत बाधक होते हैं। इसलिए वे लोग अमेरिका के विरोधी हो रहे हैं। वे मनरो-सिद्धान्त को अपने लिए हानिकारक समझते हैं और जापानियो को अपना सहायक मानते हैं वे यह भी समझते हैं कि इन गोरो के अत्याचार से अन्य वर्णों के लोगो को यदि कोई बचा सकता है, तो वह जापान ही बचा सकता है।

मेक्सिको में जापान धीरे-धीरे अपनी कार्रवाई करता चलता है। वहाँ की तीन बातें उनके लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। एक तो यह कि वहाँ वाले अमेरिकन संयुक्त राज्यों के घोर विरोधी हैं। दूसरे यह कि वहाँ के मेस्टिजो गोरों से बहुत घृणा करते हैं। और तीसरे यह कि वहाँ के रक्त वर्णवालों मे जातीयता के भावों का विकास और प्रचार हो रहा है। इधर कुछ दिनों में मेक्सिको की अवस्था बहुत ही खराब हो रही है। वहाँ भीषण विद्रोह और मार-काट हो रही है। वहाँ के मेस्टिजो तो गोरों के शत्रु हो रहे हैं और रक्त वर्णवाले गोरों के भी शत्रु हो रहे हैं और मेस्टिजो के भी। १८४७ में अमेरिका के संयुक्त राज्यों ने मेक्सिको के साथ

जो युद्ध किया था, उसे मेक्सिको वाले अभी तक भूले नहीं
वे उसका बदला चुकाना चाहते हैं। और संयुक्त राज्यों से
वे प्रदेश वापस लेना चाहते हैं, जो उस समय उनसे छीन लि
थे। जब युरोप में महायुद्ध आरम्भ हुआ, तब अमेरिका के सं
राज्य युद्ध के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। यह देखकर मेक्सि
वालों ने उनके विरुद्ध भीषण विद्रोह खड़ा कर दिया था। वि
द्रोहियों ने दक्षिण मेक्सिको के निवासियों में घोर असन्तोष उ
किया, दक्षिण के हबशियों को भी भड़काया और टेक्सा में
अशान्ति उत्पन्न की। वे चाहते थे कि अमेरिकन संयुक्त राज्यों
दक्षिण के कुछ प्रदेश तो फिर से मेक्सिको में मिला लिये ज
और शेष कुछ प्रदेशों में कृष्ण वर्ण वालों का प्रजातंत्र स्थापित
दिया जाय। इस काम के लिए वे जो सेना संघटित करना चा
थे, उस में वे गोरों को बिलकुल नहीं रखना चाहते थे। उन
यह भी विचार था कि अमेरिकन संयुक्त राज्यों के दक्षिणी प्रा
की गोरी प्रजा एक दम कतल कर दी जाय। पर मेक्सिको वा
के ये विचार कार्य रूप में परिणत न हो सके और उनका विद्रो
सहज में ही दबा दिया गया।

यद्यपि उस समय मेक्सिको वालों को विद्रोह में सफलता न
हुई, तथापि उस विद्रोह से इतना पता अवश्य चलता है कि य
के निवासी गोरों के घोर विरोधी हैं। उस विद्रोह के नेता ऐसे वै
नहीं, बल्कि बहुत समझदार और प्रभावशाली लोग थे। इध
कुछ दिनों से मेक्सिको में गोरे अमेरिकनों पर भी खूब आक्रमण
होते हैं। वहाँ के समाचार-पत्र तो खुले आम लोगों को अमेरिका
के वि

कनों को जहाँ पाओ, वहीं उनको मार डालो, उनकी आँखें निकाल लो, उनका सिर तोड दो, आदि आदि।

जापानियों के लिए ये सब बातें बहुत ही अनुकूल पड़ती है। मेक्सिको के रक्त वर्णवालों के ऐसे भावों से वे यथेष्ट लाभ उठाना चाहते हैं और इसीलिए समय समय पर उनको उत्तेजित भी करते रहते हैं। वे रक्त वर्ण वालों को अपनी ओर मिलाने के लिए कहते हैं कि हम दोनों जातियों में तो बहुत कुछ समानता है और किसी समय हम दोनो बिलकुल एक थे। पर बीच में अलग हो गये थे और एक दूसरे को भूल गये थे। १९१४ के आरंभ में मेक्सिको का एक राजदूत राजनीतिक उद्देश्य से जापान भी गया था। वहाँ उसका खूब सत्कार हुआ था और दोनों देशों के निवासियों में मित्र-भाव स्थापित करने के अनेक उद्योग किये गये थे। महायुद्ध के समय जापान और मेक्सिको में प्राय. आपसदारी का संबंध था। जहाँ तक संसार को मालूम है, अभी तक दोनों देशों में कोई गुप्त समझौता नहीं हुआ है। पर फिर भी मेक्सिको के एक लेखक का कहना है कि १९१२ में ही मेक्सिको के राष्ट्रपति मडेरों ने दक्षिण अमेरिका के अन्यान्य प्रजातंत्रों तथा जापान के साथ समझौता कर लिया था कि आवश्यकता पड़ने पर सब लोग मेक्सिको की सहायता करेंगे। यह भी कहा जाता है कि जब मेक्सिको नगर में आंतरिक विद्रोह के कारण बारह दिन तक भीषण मार-काट होती रही और अंत में यह अफवाह फैली कि अमेरिका के संयुक्त-राज्य बीच में हस्तक्षेप करना चाहते हैं, तब राष्ट्रपति मडेरोने कहा था कि अभी शायद अमेरिकन सरकार को यह मालूम नहीं है कि इस बार उसको मेक्सिको से नहीं बल्कि

में पड़ जायगी। उस दशा में हम लोग अमेरिका से निकाल दिये जायँगे। पर हम लोग मेक्सिको को पूरी पूरी सहायता देंगे। उनको सहायता देना हमारा कर्तव्य है; क्योंकि अमेरिकन गोरे हमारे शत्रु हैं। उन्होंने हमारे किनारों के पास के हवाई और फिलिपाइन्स टापुओं पर अधिकार कर लिया है और वे अब हमारे देखते देखते एक ऐसे राष्ट्र को कुचल डालना चाहते हैं, जो हमारा मित्र है और जो आगे चल कर हमारा साथी हो सकता है। साथ ही वे हमारा व्यापार भी नष्ट करना चाहते हैं और हमारी जल-शक्ति को भी संकट में डालना चाहते हैं। इसलिए मेक्सिको की हर तरह से सहायता करना हमारा परम धर्म है।

अमेरिका के रक्त वर्ण वाले भी गोरों से घबरा गये हैं और जापान की सहायता से अपना उद्धार करना चाहते हैं। पर कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो जापानियों की विजय में बड़ा भारी संकट देखते हैं। वे समझते हैं कि इस समय तो जापान मीठी मीठी बातें करके रक्त वर्णवालों को फुसला लेगा और अपना काम निकाल लेगा; और जब उसका काम निकल जायगा, दक्षिण अमेरिका के अनेक देशों पर उसका पूर्ण अधिकार हो जायगा, तब वह भी रक्त वर्ण वालों के साथ वैसा ही दुर्व्यवहार करेगा जैसा गोरे करते हैं। जापान आज कल जिस ढंग से चल रहा है, उसे देखते हुए यह कोई विशेष आश्चर्य की भी बात नहीं है। इसीलिए चिली, आर्जेंटाइन और पेरू आदि के गोरे अधिकारी जापानियों के घोर विरोधी हैं और उन्हें यथासाध्य अपने देश में घुसने नहीं देते। इसलिए जहाँ एक ओर जापानी अपना काम निकालने के लिए तरह तरह की चालें चल रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर बहुत

जापान में काम पड़ेगा। जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि इन
वालों ने रक्त वर्ण वालों को बहुत कुछ अपनी ओर मिला लि
है और ये गोरों के विरोधी तो पहले से हैं ही।

जापान के साथ चाहे मेक्सिको का कोई समझौता हुआ
और चाहे न हुआ हो, पर असल बात यह है कि मेक्सिको व
अमेरिका से बहुत नाराज़ है। यदि कभी कोई भारी झगड़ा ह
होगा तो मेक्सिको चाहे जापान को सहायता दें या न दें,
वह अमेरिका को अवश्य ही किसी प्रकार की सहायता न देगा
अमेरिका के दूसरे शत्रु देशों के साथ भी मेक्सिको की मित्रता
मेक्सिको में जो जापानी रहते हैं, वे समय समय पर ऐसी ब
से भी अपना कुछ न कुछ काम निकाल ही लेते हैं। और
नहीं तो मेक्सिको वालों का मत ही अपनी ओर खींच लेते है
१९१६ में जब मेक्सिको में उपद्रव खड़ा हुआ था,
समय वहाँ के कुछ प्रमुख जापानियों ने अपने दूसरे देशभाइयों
नाम एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था। उस घोषणा-पत्र में कहा
गया था कि मेक्सिको हमारा मित्र राष्ट्र है। उसके साथ हमारा
घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध है। हमारी तरह वह भी वीरों की जाति
है। वह अत्याचारी अमेरिकनों का प्रभुत्व कभी सहन न करेगी।
यदि किसी जबरदस्त राष्ट्र के साथ उसका झगड़ा हो तो उस
समय हम उसको छोड़ नहीं सकते। मेक्सिको वाले अपनी रक्षा
करना तो जानते हैं, पर उनको सहायता की आवश्यकता है। हम
उनको वह सहायता पहुचा सकते हैं। यदि अमेरिकन गोरे मेक्सिको
पर आक्रमण करेंगे और कैलिफोर्निया के तट पर अधिकार
कर लेंगे तो जापानी व्यापार और जापानी जल-सेना बड़े संकट

के लोग किसी प्रकार न ठहर सकेंगे। एशिया वाले बात बात में रक्त-वर्ण वालों को दबा कर परास्त करेंगे, उनकी उन्नति का प्रत्येक मार्ग रोक देंगे और इस समय रक्त-वर्ण वालों के पास जो जगहें या पद हैं, उनसे भी उनको निकाल देंगे। अनेक अंशों में रक्त-वर्णवालों की अवस्था भारतीय शूद्रों के समान हो जायगी। उन्हें खराब से खराब जमीनें जोतने बोने के लिए मिलेंगी और छोटे तथा तुच्छ काम करने पड़ेंगे। उस दशा में वे निराश होकर और भी अधिक दुर्व्यसनों में फँस जायँगे और सब प्रकार से नगण्य हो जायँगे।

बस लैटिन अमेरिका की वर्तमान अवस्था यही है। वहाँ भी राजनीतिक प्रश्न उतने महत्व का नहीं है जितने महत्व का वर्ण-सम्बन्धी प्रश्न है। आज से चार सौ वर्ष पहले स्पेन-वालों ने रक्त-वर्णवालों पर जैसी पूर्ण विजय प्राप्त की थी, उससे अधिक पूर्ण विजय कदाचित् और कोई हो ही नहीं सकती। उस समय गोरे विजेताओं के सामने रक्त-वर्ण वाले बिलकुल पशुओं के समान हो गये थे। रक्त वर्ण वाले अपनी सभ्यता आदि का भी नाश कर चुके थे और गोरों के हाथ की कठपुतली बन गये थे। लेकिन फिर भी रक्त-वर्ण का अंत नहीं हो सका और उनमें कुछ न कुछ जातीयता का भाव बना ही रहा। फिर भी वहाँ के देशों में रक्त-वर्ण वालों की ही संख्या अधिक थी। कृष्ण-वर्ण वालों को वहाँ ले जाकर गोरों ने अपने हक में और भी बुरा किया। वहाँ जाकर बसने-वाले गोरों की संख्या बहुत ही कम थी। और जो गोरे वहाँ गये भी थे, उन्होंने अन्य वर्णों के लोगों के साथ विवाह-सम्बन्ध करके अपना और भी अधिक नाश कर लिया। और सबके अंत

गोरे उनका विरोध भी कर रहे हैं और स्पष्ट रूप से कहते हैं कि हमें हर तरह से जापानियों का विरोध करना चाहिए और दक्षिण अमेरिका के देशों को उनकी साम्राज्य-लिप्सा का शिकार न होने देना चाहिए।

प्रोफेसर रास का मत है कि यदि दक्षिण अमेरिका में एशिया वालों को आने से रोका न जाय तो बहुत सम्भव है कि इस शताब्दि के अन्त में वहाँ पचीस तीस लाख एशियाई और उनकी सन्तानें बढ़ जायँगी। यदि ऐसा हुआ तो दक्षिण अमेरिका के भविष्य में बड़ा भारी परिवर्तन हो जायगा। आज कल यूरोप के राजनीतिज्ञ सोचते हैं कि आगे चल कर हमारे यहाँ की प्रजा दक्षिण अमेरिका में अच्छी तरह रह और बहुत अधिक संख्या में बढ़ सकेगी पर यदि एशिया वाले वहाँ जाकर बस जायँगे तो फिर यूरोप वालों की वहाँ गुजर न हो सकेगी। मेस्टिजो लोगों के कुशासन से वे अपनी प्रजा को निकालने का जो विचार कर रहे हैं, वह भी पूरा न हो सकेगा गोरों को या तो अपनी जन-संख्या की वृद्धि रोकनी पड़ेगी और या अपने लिए कोई और स्थान ढूँढना पड़ेगा। क्योंकि अमीर गोरे सदा दरिद्र एशिया वालों के साथ प्रतिद्वन्द्विता करने से घबराते हैं। और फिर दक्षिण अमेरिका ईसाइयों के हाथ से भी निकल जायगा और वहाँ के कुछ प्रजातंत्र राज्य एशिया वालों के अधिकार में चले जायँगे।

प्रोफेसर रास का यह भी मत है कि यदि दक्षिण अमेरिका में एशियावालों का प्रभुत्व हो जायगा, तो फिर रक्त-वर्ण वालों की कुछ भी उन्नति न हो सकेगी और एक प्रकार से उनका अन्त हो [illegible] जापानियों और चीनियों के मुकाबले में रक्त वर्ण

ा किसी प्रकार न ठहर सकेंगे । एशिया वाले घात घात में र्णवालों को दबा कर परास्त करेंगे, उनकी उन्नति का प्रत्येक ाक देंगे और इस समय रक्त-वर्ण वालों के पास जो जगह हैं, उनमे भी उनको निकाल देंगे । अनेक अंशों में र्णवालों की अवस्था भारतीय शूद्रों के समान हो जायगी। ख़राब से ख़राब जमीनें जोतने बोने के लिए मिलेंगी और ाथा तुच्छ काम करने पड़ेंगे । उस दशा में वे निराश होकर ी अधिक दुर्व्यसनों में फँस जायँगे और सब प्रकार से ा हो जायँगे ।

में जो गोरे बच गए थे, उन्होंने आपस में लड़ भिड़कर उन
और भी अधिक नाश कर लिया।

जब झगड़ा पड़ा, तब गोरों ने अधगोरों की सहायता लेक
विजय प्राप्त की। पर उनकी विजय हो जाने पर अध-गोरे
पुरस्कार माँगने लगे। अब एक नया झगड़ा खड़ा हो गया जिस
अध-गोरों की विजय हुई और उनके हाथ में राजनीतिक अधिक
चले गये। उन अध-गोरों ने रक्त तथा कृष्ण-वर्ण वालों से सह
यता ली थी, इसलिए अब उन लोगों के भी बढ़ने की बारी आई
जब रक्त तथा कृष्ण वर्ण-वालों का एक नया आन्दोलन ख
हो गया है। यदि उनका यह आन्दोलन सफल हो गया तो पि
गोरों का वहाँ कहीं ठिकाना न लगेगा। इधर सौ वर्षों से यही
रहा है कि लैटिन अमेरिका में गोरों का प्रभुत्व दिन पर दि
घटता जाता है और रक्त तथा कृष्ण-वर्ण वालों का बल बरा
बढ़ता जाता है।

पर लक्षणों से यह भी जान पड़ता है कि कदाचित् रक्त औ
कृष्ण वर्ण वालों के हाथ से भी लैटिन अमेरिका निकल जाय
या तो उस पर गोरों का अधिकार हो जाय और या पीत व
वालों का। क्योंकि रक्त तथा कृष्ण वर्ण वाले अभी तक अप
किसी प्रकार की योग्यता का कोई प्रमाण नहीं दे सके हैं। उन
अयोग्यता के कारण जो स्थान खाली होगा, उसकी पूर्ति की चिं
में अभी से लोग लगे हैं और अपनी अपनी ओर से तैयारियाँ क
रहे हैं।

लैटिन अमेरिका की दशा भी अनेक अंशों में आफ्रिका क
दशा से मिलती जुलती है। आफ्रिका की भांति लैटिन अमेरिक

में भी अपने पैरों आप खड़े होने की योग्यता नहीं आई है। या तो यह गोरों के हाथ में जाय और या पीत वर्णवालों के हाथ में। गोरे तो वहाँ पहले से ही मौजूद हैं और उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के अनेक स्थानों को वे बिलकुल अपना बना चुके हैं। वहाँ के अनेक देश अब सभी बातों में गोरों के देश हो चुके हैं। पीत-वर्ण वाले यदि वहाँ अपना अधिकार जमाना चाहेंगे तो उनको वहाँ पूरा उद्योग करना पड़ेगा। उन्होंने वह उद्योग आरम्भ कर दिया है और कुछ स्थानों में अपने पैर भी जमा लिये हैं। उनके डर से गोरे अभी से अपने बचने के उपाय सोच रहे हैं और चाहते हैं कि पीत वर्ण-वाले यहाँ घुसने न पावें। उधर पीत वर्ण-वाले भी अपनी चालों से बाज नहीं आते। इस समय लैटिन अमेरिका के सम्बन्ध में गोरों और पीत वर्णवालों में एक प्रकार की प्रति-द्वन्द्विता चल रही है। अब देखना यह है कि दोनों में से विजय किसकी होती है। रक्त वर्णवाले इस समय पीत वर्णवालों के पक्ष पाती हो रहे हैं और गोरों को केवल अपने बल का भरोसा है। पर हम एक बात जानते हैं। अभी वहाँ चाहे गोरों का प्रभुत्व स्थापित हो जाय और चाहे पीत वर्णवालों की तूती बोलने लगे, पर एक बात बिल-कुल निश्चित है। वह यह कि दोनों में से कोई रक्त वर्णवालों का समूल नाश न कर सकेगा। और जब तक रक्त वर्णवालों का अस्तित्व बना रहेगा, तब तक लैटिन अमेरिका का झगड़ा कभी खतम न होगा आज रक्त वर्णवाले अयोग्य ठहराये जाते हैं और कदाचित् कुछ अयोग्य हैं भी। पर इस समय जो लोग उनकी अयोग्यता से लाभ उठाकर उनके देश पर अधिकार करेंगे, उनसे आगे चलकर वे बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। यह तो निश्चित ही

में जो गोरे बच रहे थे, उन्होंने आपस में लड़ भिड़कर अपना और भी अधिक नाश कर लिया।

अब झगड़ा बढ़ा, तब गोरों ने अधगोरों की सहायता से विजय प्राप्त की। पर उनकी विजय हो जाने पर अध-गोरे अपने पुरस्कार माँगने लगे। अब एक नया झगड़ा खड़ा हो गया जिसमें अध-गोरों की विजय हुई और उनके हाथ में राजनीतिक अधिकार चले गये। उन अध-गोरों ने रक्त तथा कृष्ण-वर्ण वालों से सहायता ली थी, इसलिए अब उन लोगों के भी बढ़ने की बारी आ गई। जब रक्त तथा कृष्ण वर्ण-वालों का एक नया आन्दोलन खड़ा हो गया है। यदि उनका यह आन्दोलन सफल हो गया तो फिर गोरों का वहाँ कहीं ठिकाना न लगेगा। इधर सौ वर्षों से यही हो रहा है कि लैटिन अमेरिका में गोरों का प्रभुत्व दिन पर दिन घटता जाता है और रक्त तथा कृष्ण-वर्ण वालों का बल बराबर बढ़ता जाता है।

पर लक्षणों से यह भी जान पड़ता है कि कदाचित् रक्त और कृष्ण वर्ण वालों के हाथ से भी लैटिन अमेरिका निकल जाय या तो उस पर गोरों का अधिकार हो जाय और या पीत वर्ण वालों का। क्योंकि रक्त तथा कृष्ण वर्ण वाले अभी तक अपनी किसी प्रकार की योग्यता का कोई प्रमाण नहीं दे सके हैं। उनकी अयोग्यता के कारण जो स्थान खाली होगा, उसकी पूर्ति की चिन्ता में अभी से लोग लगे हैं और अपनी अपनी ओर से तैयारियाँ कर रहे हैं।

लैटिन अमेरिका की दशा भी अनेक अंशो में आफ्रिका व[illegible] से मिलती जुलती है। आफ्रिका की भांति लैटिन अमेरिका

में भी अपने पैरों आप खड़े होने की योग्यता नहीं आई है। या तो वह गोरों के हाथ में जाय और या पीत वर्णवालों के हाथ में। गोरे तो वहाँ पहले से ही मौजूद हैं और उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के अनेक स्थानों को वे बिलकुल अपना बना चुके हैं। वहाँ के अनेक देश अब सभी बातों में गोरों के देश हो चुके हैं। पीत-वर्ण वाले यदि वहाँ अपना अधिकार जमाना चाहेंगे तो उनको वहाँ पूरा उद्योग करना पड़ेगा। उन्होंने वह उद्योग आरम्भ कर दिया है और कुछ स्थानों में अपने पैर भी जमा लिये हैं। उनके डर से गोरे अभी से अपने बचने के उपाय सोच रहे हैं और चाहते हैं कि पीत वर्ण-वाले वहाँ घुसने न पावें। उधर पीत वर्ण-वाले भी अपनी चालों से बाज नहीं आते। इस समय लैटिन अमेरिका के सम्बन्ध में गोरों और पीतवर्णवालों में एक प्रकार की प्रति-द्वन्द्विता चल रही है। अब देखना यह है कि दोनों में से विजय किसकी होती है। रक्त वर्णवाले इस समय पीत वर्णवालों के पक्ष पाती हो रहे हैं और गोरों को केवल अपने बल का भरोसा है। पर हम एक बात जानते हैं। अभी वहाँ चाहे गोरों का प्रभुत्व स्थापित हो जाय और चाहे पीत वर्णवालों की तूती बोलने लगे, पर एक बात बिलकुल निश्चित है। वह यह कि दोनों में से कोई रक्त वर्णवालों का समूल नाश न कर सकेगा। और जब तक रक्त वर्णवालों का अस्तित्व बना रहेगा, तब तक लैटिन अमेरिका का झगड़ा कभी खतम न होगा आज रक्त वर्णवाले अयोग्य ठहराये जाते हैं और कदाचित् कुछ अयोग्य हैं भी। पर इस समय जो लोग उनकी अयोग्यता से लाभ उठाकर उनके देश पर अधिकार करेंगे, उनसे आगे चलकर वे बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। यह तो निश्चित ही

है कि कभी उनका समूल नाश न होगा; और यह भी निश्चित है कि वे कभी न कभी योग्य भी अवश्य ही होंगे। उनकी वर्तमान अयोग्यता कम से कम अब स्थायी नहीं रह सकती। वे आगे चलकर जब वे योग्य होंगे, तब उन लोगों से अपना पूरा पूरा बदला चुका लेंगे जो इस समय उनकी अयोग्यता से लाभ उठावेंगे। गोरों से वे असन्तुष्ट हो ही गये हैं और उनसे अपना पीछा छुड़ाने की चिन्ता में लगे ही हैं। इसी तरह आगे चलकर वे पीत वर्णवालों से भी, यदि पीत वर्णवालों का अधिकार उनके देशों पर हो गया तो, अपना पिण्ड छुड़ाना चाहेंगे। उस समय पीत वर्णवाले भी उनसे वैसे ही दुःखी हो जायँगे जैसे कि आजकल गोरे हैं। दूसरों के देशो पर अधिकार करने का परिणाम अच्छा नहीं होता। उससे सदा अशान्ति और कष्टों की वृद्धि ही होती है। अतः जो लोग यह चाहते हों कि संसार की अशांति और अधिक न बढ़े, यहीं उसका अंत हो जाय, उनको उचित है कि वे अयोग्य जातियों के देशों पर अधिकार करने का विचार कुछ कम कर दें और उन अयोग्य जातियों को योग्य बनाने की चिंता करें। पर योग्य बनाने का वह उद्योग वैसा नहीं होना चाहिए जैसा आजकल के गोरे करते हैं। अर्थात् उसकी ओट में स्वार्थ-साधन नहीं होना चाहिए। वह उद्योग सच्चे हृदय से होना चाहिए और संसार की सब जातियों को अपना भाई समझ कर होना चाहिए।

# गोरों का प्रसार

( ६ )

सन् १५०० से लेकर १९०० तक संसार में गोरों का जितना अधिक प्रसार हुआ है, उसकी उपमा संसार के लिखित इतिहास में नहीं मिल सकती। इस पुस्तक के आरम्भ में यह बतलाया जा चुका है कि गोरों का वास्तविक निवास-स्थान कहाँ कहाँ है और उनका राजनीतिक-प्रभुत्व किन किन देशों मे है। संसार मे इस समय जितने मनुष्य बसते हैं, उनमें से प्रायः एक तृतीयांश गोरे हैं। यह भी बतलाया जा चुका है कि सारे संसार में मनुष्यों के बसने योग्य जितना स्थान है, उसके दो पंच-मांश में तो गोरों की बसती है और सारे संसार का नौ दशमांश इन गोरों के राजनीतिक अधिकार में है। संसार की यह परिस्थिति विलक्षण और अभूत-पूर्व होने के साथ ही साथ असह्य भी है। आज तक कोई जाति न तो संख्या में इतनी बढ़ी थी और न अधिकार में ही।

गोरों के प्रसार के सम्बन्ध में एक और भी विलक्षण बात यह है कि इसका आरम्भ बिलकुल अचानक हुआ था और उनके विकास की गति बहुत ही तीव्र थी। कोलम्बस की यात्रा से दस ही वर्ष पहले कोई यह नहीं सकता था कि तीन चार सौ वर्षों के

तातारों के हाथ में चला गया था और मूर लोग दक्षिण स्पेन पर अधिकार करके बैठे हुए थे।

पन्द्रहवीं शताब्दि के अन्त में गोरी जाति की जो अवस्था थी, उसे देख कर तो यही कहना पड़ता है कि उस समय उसका प्रायः अन्तिम काल आ गया था। उस समय की स्थिति देखते हुए कम से कम उसका भविष्य अच्छा तो कभी कहा ही नहीं जा सकता था। उन दिनों या तो यूरोप की आबादी ज्यों की त्यों रहती थी या घटती जाती थी। बाहर से बड़े बड़े प्रबल शत्रु आ कर उस पर आक्रमण किया करते थे और स्वयं वहाँ की प्रजा में भी अनेक प्रकार के गृह-विवाद तथा युद्ध आदि चल रहे थे। इन सब बातों को देखते हुए उस समय कौन कह सकता था कि यही गोरी जाति, जो इस समय अनेक प्रकार की दुर्दशा भोग रही है, तीन चार सौ वर्षों के अन्दर ही सारे संसार की स्वामिनी हो जायगी? पर अन्त में हुआ यही।

पर अचानक दो ही तीन वर्षों में सारी परिस्थिति बदल गई। १४९२ में कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया, १४९४ में वास्को डी गामा ने आफ्रिका की परिक्रमा करके भारत का मार्ग ढूँढ निकाला। कोलम्बस भी वास्तव में भारत का ही मार्ग ढूँढने के लिए निकला था, पर संयोगवश उसके द्वारा अमेरिका का आविष्कार हो गया। तात्पर्य यह है कि गोरों के अभ्युदय का आरम्भ भारत पहुँचने की चिंता में ही हुआ था। उससे पहले यूरोप वाले समुद्र से बहुत घबराते थे। पर कोलम्बस और वास्को-डी गामा की कृपा से पलक मारते ही उनकी वह घबराहट दूर हो गई और वे बड़ी बड़ी समुद्री यात्रायें करने लगे। बात की

घात में उन्होंने समुद्र पर अधिकार कर लिया और समुद्र ही संसार के प्रभुत्व की कुंजी थी। अतः समुद्र पर अधिकार होते ही सारे संसार पर उनका अधिकार हो गया।

पन्द्रहवीं शताब्दि से पहले तो यूरोप के गोरों को एशिया की केवल बहुत ही वीर जातियों से काम पड़ता था। एशिया के बड़े बड़े योद्धा और बड़े बड़े उद्योगी पुरुष युद्ध अथवा व्यापार करने के लिए यूरोप पहुँचा करते और यूरोप वालों को बराबरी पर उनका मुकाबला करना पड़ता था। यूरोप वाले न तो मुकाबले के युद्ध में ही एशिया वालों के सामने ठहर सकते थे और न व्यापार में ही उनके साथ प्रतिद्वन्द्विता कर सकते थे। बेचारे करते कहाँ से! वे उतने अधिक सभ्य और योग्य तो थे ही नहीं। पर हाँ, उनका भाग्य बहुत प्रबल था, इसलिए इन दो बड़े आविष्कारों के बाद गोरों को बहुत सुभीता हो गया। सारे संसार की अनेक सीधी सादी जातियाँ उनके सामने आ पड़ीं और वे अनेक प्रकार से उन पर विजय प्राप्त करने लगे। कहीं कल से, कहीं छल से और कहीं बल से वे लोगों के देश और सम्पत्ति आदि पर अधिकार करने लगे और उनको लूट लूट कर अपना घर भरने लगे।

मध्य युग में गोरों ने बड़े बड़े कष्ट और भारी भारी विपत्तियाँ सही थीं। इसलिए उनमें कुछ सहन-शक्ति भी आ गई थी और वे कुछ अनुभव भी प्राप्त कर चुके थे। इसके अतिरिक्त संसार का यह भी एक नियम है कि बहुत अधिक कष्ट के उपरांत सुख भी होता है। गोरों को अपने प्रसार का अनायास एक बहुत ही अच्छा अवसर मिल गया था। उन्होंने उस अवसर का सदु-
[illegible]

ालों की मार खा खा कर यूरोप वाले मजबूत तो हो ही चुके थे और उनकी कृपा से सभ्यता के मार्ग पर भी कुछ कुछ चल निकले थे। ऐसी दशा में यदि कृष्ण और रक्त-वर्ण के लोग उनसे डर गये, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

जिस प्रकार छत्ते में से शहद की मक्खियाँ निकल निकल कर सारा जंगल भर देती हैं, उसी प्रकार अब ये गोरे भी यूरोप से निकल निकल कर सारा संसार भरने लगे। बस फिर क्या था! यूरोप की मरती हुई गोरी जाति मे एक नये जीवन का संचार हो गया नित्य नये विचार उत्पन्न होने लगे, नित्य नये साधन निकलने लगे और नित्य नये कल-पुरज़े बनने लगे। इस प्रकार घात-प्रतिघात से यूरोप वालों की दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति होने लगी। जिन स्पेनियों और पुर्तगालियों ने आरम्भ में समुद्र पर विजय प्राप्त करके नये नये महाद्वेशों का आविष्कार किया था, वे तो सुस्ती और अयोग्यता आदि के कारण पिछड गये और उनके स्थान पर यूरोप के उत्तरी देशों के निवासियों ने पहुँच कर सारे संसार पर अपना प्रभुत्व जमाना आरंभ कर दिया। चार सौ वर्ष तक वे लोग बराबर आगे बढ़ते गये। इस बीच में उनका कदम कभी नहीं रुका। इस निरन्तर और अविरत प्रसार का परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दि के अंत में प्रायः सारा संसार गोरों के अधिकार में आ गया।

लगातार चार सौ वर्षों तक उन्नति और अधिकार वृद्धि करते करते अंत में गोरों को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि अब हमारा प्रसार कभी रुक नहीं सकता। अब दिन पर दिन हमारी उन्नति होती जायगी और हमारे अधिकार बढ़ते जायँगे। उन्नति के अभि

मान ने उनको यह सोचने का अवसर ही न दिया कि संसार
परिवर्तनशील है और इसमें सदा कोई अविनाशात्मक नहीं रह सकता
उन्होंने अवश्य ही बड़े बड़े दार्शनिक और बड़े बड़े विद्वान्
उत्पन्न किये, पर कोई उनको यह न समझा सका कि जिसकी उ
होती है, उसीकी अवनति भी होती है, जो ऊपर चढ़ता है, व
नीचे भी गिरता है और जो आगे बढ़ता है, वही पीछे भी ह
है । परन्तु उनके न समझने के कारण प्रकृति तो अपना क
रोक ही नहीं सकती थी । विवश हो कर ईश्वर ने ही गोरों
समझाने बुझाने का काम अपने हाथ में लिया । पर अधिकार
जल्दी किसी को ठीक मार्ग पर आने नहीं देता । और फिर
मनुष्य बीच में ही सँभल कर ठीक मार्ग पर आ जाय तो
आगे चल कर उसका पतन और नाश कैसे हो ? इधर बीस-
वर्षों में प्रकृति ने गोरों को जो चेतावनी दी है, उसकी अव
उन्होंने इसीलिए की है । सन् १९०४ में रूस-जापान युद्ध हों
पहले यदि ढूँढ़ा जाता तो लाख पचास हजार गोरों में से
शायद ही एकाध ऐसा गोरा निकलता जो यह समझता होता
गोरों का यह प्रसार यह उन्नति कभी रुक भी सकती है ।
फिर अवनति या पतन की कल्पना तो बहुत दूर की बात
तीन चार सौ वर्षों की उन्नति ने तो उनको अंधा कर ड
था । भविष्य की ओर उनकी दृष्टि जाती भी तो द
कर जाती ! अमेरिका, आस्ट्रेलिया और साइबेरिया के आ
निवासियों को इन गोरों ने कीड़े मकोड़े समझ कर या
मार डाला था या किसी प्रकार उनको दूर करके अपना म
[illegible] करते हुए उन प्रदेशों को अपना निवास-स्थान बना लि

था। एशिया और आफ्रिका को अपने अधिकार में करके उन्होंने करोड़ों मनुष्यों को अपना गुलाम बना लिया था और मुट्ठी भर गोरे उनका शासन करने लग गये थे। ये दोनों घटनाएँ देखकर गोरों को अपनी अजेयता का पूरा पूरा विश्वास हो गया था और उन्होंने समझ लिया था कि अब सारे संसार पर सदा के लिए हमारा अधिकार हो गया अब हम जिसके साथ जैसा चाहेंगे, वैसा व्यवहार करेंगे। कोई हमारे सामने चूँ तक न कर सकेगा। संसार के सब लोग हमारे सामने सिर झुका ही रहे हैं और हमारे अधिकार में आ ही चुके हैं। अब किसकी मजाल है जो हमारे सामने सिर भी उठा सके? वे सोचते थे कि संसार के गरम देशों में अब तक अन्य वर्णों के लोगों का अस्तित्व हमने केवल इसी लिए रहने दिया है कि वहाँ हम बस तो सकते ही नहीं। और फिर हमें गुलामी के लिए कुछ आदमियों की भी आवश्यकता होगी ही। और यह बात एक प्रकार से ठीक भी है। यदि जल-वायु की दृष्टि से सारा संसार इन गोरों के बसने के योग्य होता तो बहुत सम्भव था कि इन चार सौ वर्षों में वे अन्य समस्त वर्णों का समूल नाश कर देते और तब सारे संसार में केवल गोरे ही गोरे दिखाई देते। पर कठिनता यह थी कि सारा संसार उनके बसने के योग्य नहीं था। जो देश उनके बसने के योग्य थे, उनको तो उन्होंने वहाँ के आदिम निवासियों से खाली करा ही लिया और जो देश उनके बसने के योग्य नहीं थे, उन पर वे राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके ही सन्तुष्ट हो रहे। तो भी वे यही सोचते थे कि ये अन्य वर्ण वाले कभी हमारे विरुद्ध सिर उठाने का साहस भी न कर सकेंगे। और यदि कभी दुर्भाग्यवश सिर उठावेंगे भी तो उनको

पीस डालने में इन्हें अधिक विलम्ब न लगेगा। पर कुछ लोग भी थे जो और आगे बढ़ गये थे। वे सोचते थे कि धीरे विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि गोरे लोग गरम देशों में रहने के उपाय भी निकाल लेंगे और गोरों को गरम देशों में रहने के कारण जो रोग होते हैं, वे रोग सदा के लिए विज्ञान की कृपा से समूल नष्ट हो जायेंगे। उस दशा में गोरों को खूब सुभीता हो जायगा और वे सारे संसार में पैर पसार कर सुखपूर्वक सो सकेंगे। संसार की और कोई जाति रह ही न जायगी। केवल गोरे गोरे रहेंगे। न किसी का डर और न किसी का खटका। चलो छुट्टी हुई!

अधिकार-मद और अज्ञान के कारण इन गोरों ने अनेक शास्त्रों के आधार पर अपने मतलब के तरह तरह के सिद्धान्त भी गढ़ लिये थे और उन सिद्धान्तों का मनमाना अर्थ लगाना भी आरम्भ कर दिया था। उनमें से एक सिद्धान्त यह भी था कि जो सबसे योग्य होगा, वही बच रहेगा। जो प्रबल होगा, उसी का अस्तित्व बना रहेगा। बस, इस सिद्धान्त के सामने यह सिद्धांत कब ठहर सकता था कि संसार की सभी चीजें नश्वर हैं, और जो बढ़ता है वह घटता भी है? वे समझते थे कि जो सबसे अधिक योग्य और प्रबल होता है वही सर्वश्रेष्ठ भी होता है। पर वे यह समझने का कष्ट नहीं उठाते थे कि इस परिवर्तनशील संसार में और बातों के साथ साथ परिस्थिति आदि में भी परिवर्तन हुआ करता है और एक परिस्थिति में जो सबसे अधिक योग्य होता है, दूसरी परिस्थिति में वह सबसे अधिक निकृष्ट भी हो सकता है। और यदि परिस्थिति किसी दुर्बल के ही अनुकूल हो, तो फिर दुर्बल [illegible] है। ठीक इसी

नियम के अनुसार स्वयं गोरों की भी उन्नति हुई थी। उस समय परिस्थिति उनके अनुकूल थी, इसलिए वे इतने उन्नत हो गये। पर उनकी समझ में यह बात नहीं आई थी, और कदाचित् अब तक भी नहीं आई है कि अब परिस्थिति उनके प्रतिकूल होती जा रही है। इन गोरों ने अर्थशास्त्र के अनेक बड़े बड़े और बढ़िया सिद्धान्त ढूँढ निकाले और उसकी बहुत उन्नति की। उसी अर्थ-शास्त्र का एक सिद्धान्त यह भी है कि जब बाजार में खराब सिक्का चलने लगता है, तब अच्छा सिक्का आपसे आप गायब हो जाता है। अर्थात् उस दशा में लोग अच्छे सिक्के को तो दबा दबा कर घर में रखने लगते हैं और बाजार में केवल खराब सिक्के ही रह जाते हैं। इस सिद्धान्त को तो गोरे खूब अच्छी तरह जानते थे, पर स्वयं अपने सम्बन्ध में वे स्वप्न में भी उसका प्रयोग नहीं कर सकते थे। वे सोच ही नहीं सकते थे कि कभी किसी योग्य को कोई अयोग्य भी परास्त कर सकता है। पर संसार में ऐसा भी होता है और अवश्य होता है। एक योग्य के मुकाबले में योग्य बनना और योग्यता में उस पहले योग्य से बहुत बढ़ जाना बहुत कठिन होता है इसीलिए प्रकृति ने यह भी एक नियम बना रखा है कि जब योग्यता प्राप्त करके योग्य का मुकाबला करना कठिन हो जाय, तब अयोग्य ही किसी प्रकार योग्य पर विजय प्राप्त कर लिया करे। पर गोरे इन बातों को जान बूझ कर भी नहीं समझते थे और अपने आपको भीषण भ्रम में डाले हुए थे। वे जब तक चाहें, तब तक अपने आपको भ्रम में डाले रहें, पर प्रकृति को तो वे भ्रम में डाल सकते ही नहीं और न उसका काम ही रोक सकते हैं। इसलिए प्रकृति अपना काम कर रही है। आशा है कि

शीघ्र ही उनके भ्रम की भांति उनका अधिकार भी नष्ट हो जायगा। अपनी अजेयता के सम्बन्ध में गोरों को जो दृढ़ विश्वास था, वह तो रूस-जापान युद्ध के समय जापान की कृपा से दूर हो गया और उसके बाद से उनके अधिकार के नाश के लक्षण भी दिखाई देने लगे।

कुछ दिनों तक तो गोरों के लिए उनका अज्ञान ही लाभदायक था। पहले तो गोरों ने आफ्रिका और एशिया के अनेक भागों पर पूरा पूरा अधिकार किया और तब उसके बाद उन्होंने पूर्वी एशिया के पीत वर्ण को अपने अधिकार में लाने का विचार किया यूरोप वाले चाहते थे कि हम लोग चीन को आपस में बाँट लें, और साईबेरिया का भक्षण करके रूस चाहता था कि प्रशान्त महासागर और जापान हमारे हाथ में आ जाय। गोरों का हौसला भी उस समय खूब बढ़ा-चढ़ा था और उनको अपने आप पर विश्वास भी पूरा पूरा था। इसलिए वे आगे बढ़ने के सिवा और कुछ जानते ही न थे। पर फिर भी उनमें थोड़े से समझदार अवश्य ऐसे थे जो यह समझ गये थे कि अब गोरों का और अधिक प्रसार नहीं हो सकता और उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ खड़ी होने वाली हैं। प्रोफेसर पियर्सन और मेरेडिथ टाउन्सेंड आदि ने इन गोरों को पहले ही सचेत करना चाहा था। पर गोरों ने या तो उनकी बातें सुन कर बुरा माना था, उनकी हँसी उड़ाई और या उनकी उपेक्षा की। मनुष्य का यह स्वभाव ही है कि

... या वह उसकी बातों को हँसी में टाल देता है। बस, वही ... उस समय गोरों की भी हुई थी। वे अपने सम्बन्ध में कोई ... भविष्यद्वाणी सुनना ही नहीं चाहते थे। और जो कोई ... को जबरदस्ती सुनाना चाहता था, उससे वे बुरा मानते थे और ... की उपेक्षा करते थे। कुछ थोड़े से ऐसे समझदार गोरे भी थे ... यह मानते थे कि इन लोगों की भविष्यद्वाणी ठीक होगी, पर ... यह समझते थे कि अभी इसमें बहुत विलम्ब है। ऐसा कोई ... हीं था जो यह समझता हो कि गोरों का पतन बहुत ही समीप ... और उस पतन की गति उनकी उन्नति की गति की उपेक्षा कहीं अधिक तीव्रतर और वेगपूर्ण होगी।

सन् १८९९ में मेरेडिथ टाउन्सेंड का यह विश्वास था कि शीघ्र ही सारे एशिया पर गोरों का इतना पूर्ण और प्रभावशाली राज्य स्थापित हो जायगा कि फिर एशिया वाले किसी प्रकार गोरों के अधिकार से निकल ही न सकेंगे। अफ्रिका की भांति एशिया को भी गोरे सदा के लिए आपस में बाँट लेंगे। एशिया वाले सदा के लिए यूरोप वालों के दास हो जायँगे। पर जब बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में रूस-जापान युद्ध हुआ और रूस परास्त हो गया, तब एशिया में विलक्षण जागृति उत्पन्न हुई, जिससे गोरों का मोह दूर हो गया और १९११ में ही टाउन्सेंड को अपना पुराना मत बदलना पड़ा। उसे कहना पड़ा कि अब एशिया में गोरों का राज्य अधिक समय तक नहीं रह सकता और शीघ्र ही उन्हें यहाँ से बोरिया-बन्धना बाँध खिसकना पड़ेगा। इधर दस बारह वर्षों की घटनाओं से उसके इस मत का और भी अधिक समर्थन होता जा रहा है और ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों

इस बात के अधिकाधिक प्रमाण मिलते जाते हैं कि एशिया में गोरों के प्रभुत्व के दिन समाप्ति पर आ रहे हैं। बात यह है कि १९०० में ही गोरों का प्रताप-सूर्य शीर्षबिन्दु तक पहुंच चुका था और तभी से वह ढलने लगा है। अब गोरे लाख उद्योग करें, पर उनके प्रताप सूर्य की नीचे की ओर की गति किसी प्रकार रुक नहीं सकती। आर्थर बन्दर पर जापानियों के गोले बरसने के साथ ही साथ गोरों के प्रभुत्व और अधिकार का ह्रास आरम्भ हो गया था और इधर यूरोपीय महायुद्ध ने तो मानों एक प्रकार से उसकी पूर्ति का ही बीज बो दिया है।

---

# पतन का आरम्भ

( १ )

मानव-जाति के इतिहास में रूस जापान युद्ध एक ऐसी घटना है जिसका महत्व समय के बीतने के साथ ही साथ बराबर बढ़ता जाता है। उस युद्ध में और जो कुछ हुआ वह तो हुआ ही, पर साथ ही एक और बहुत बड़ी बात हुई। उस युद्ध से गोरों की प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा आघात पहुँचा। पहले अन्यान्य वर्णों के लोग यही समझा करते थे कि गोरे अजेय हैं, युद्ध में कोई उन पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। पर उस युद्ध के कारण लोगों की यह भावना नष्ट हो गई और गोरों की अजेयता का भ्रम लोगों के हृदय से दूर हो गया। यही नहीं बल्कि गोरों के अनेक रहस्य भी लोगों पर प्रकट हो गये और उनके दोषों तथा दुर्बलताओं पर पड़ा हुआ परदा हट गया। लोगों के लिए उन पर टीका टिप्पणी करने का मार्ग खुल गया और सारे संसार ने समझ लिया कि यदि पूरा पूरा उद्योग किया जाय, तो ये गोरे भी नीचा देख सकते हैं। यह कोई साधारण बात नहीं थी, और इसी कारण इस युद्ध का अन्य वर्णों वालों के लिए बहुत अधिक महत्व है।

जिस समय यह युद्ध हुआ था, उस समय लोगों ने उसको बहुत ही कम महत्व समझा था। विशेषतः गोरों की समझ में तो उस युद्ध का और भी कम महत्व आया था। अन्य वर्णों में भी बहुत ही थोड़े ऐसे समझदार और दूरदर्शी थे जो उसका ठीक ठीक महत्व समझ सके थे। गोरे तो बहुत दिनों से एक पर एक विजय प्राप्त करने के कारण मदान्ध हो रहे थे और उन्नीसवीं शताब्दि में अनेक देशों और जातियों को अपने अधिकार में कर चुके थे। उनकी संख्या भी बहुत अधिक बढ़ चुकी थी। सन् १५०० में कुल गोरों की संख्या ७,००,००,००० थी और उस समय सब के सब गोरे केवल यूरोप में ही बसते थे। इसके तीन सौ वर्ष बाद अर्थात् सन १८०० में यूरोप में रहने वाले गोरों की संख्या दूनी से भी अधिक अर्थात् १५,००,००,००० हो गई थी। इसके अतिरिक्त यूरोप के बाहर अन्यान्य देशों में जो गोरे बसते थे, वे अलग थे। और उनकी संख्या भी १,००,००,००० थी। इस प्रकार तीन सौ वर्षों में गोरे दूने से भी अधिक हो गये थे। पर इसके उपरान्त सौ वर्षों में उनकी जो वृद्धि हुई, वह और भी आश्चर्यजनक थी। सन् १९०० में यूरोप में गोरों की आबादी ४५,००,००,००० हो गई थी और यूरोप के बाहर सारे संसार में १०,००,००,००० गोरे हो गये थे। इस प्रकार केवल सौ वर्षों में ही यूरोप में गोरों की संख्या तिगुनी और यूरोप के बाहर सारे संसार में दस गुनी हो गई थी। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में सारे संसार में ५५,००,००,००० गोरे थे। अर्थात् चार सौ वर्षों में वे लगभग अठगुने हो गये थे। भला इस वृद्धि का कहीं ठिकाना है! पर उनकी यह वृद्धि इस दृष्टि से बिलकुल स्वाभाविक और

अनिवार्य ही थी कि सारे संसार पर उन्हींका राज्य था और संसार के सारे सुख भी मानों उन्हींके हो गये थे।

यूरोप के गोरों की जो वृद्धि हुई थी, उसमें सब से अधिक और परम आश्चर्यजनक वृद्धि अंग्रेजों की हुई थी। सन् १४८० में इंगलैण्ड की आबादी केवल २०,००,००० थी। यद्यपि मध्य-युग में अनेक युद्धों आदि के कारण प्रायः सारे यूरोप की आबादी बहुत कम हो गई थी, तथापि इङ्गलैण्ड की यह आबादी अपेक्षाकृत और भी कम थी। इसके एक सौ वर्ष बाद, महारानी एलिजबेथ के समय में इंगलैण्ड की आबादी बढ़ कर इससे ठीक दूनी अर्थात् ४०,००,००० हो गई। पर सन १९०० में वहाँ की आबादी बढ़ कर ३,००,००,००० और सन १९१० में ३,५०,००,००० हो गई थी। यह आबादी केवल इंगलैण्ड की थी और सारे ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड में उस समय ४,५५,००,००० आदमी बसते थे। यह तो केवल इंगलैंड, स्काटलैंड और आयर्लैंड की बात हुई। पर इसी बीच में अंगरेज जाति संसार के कोने कोने में फैल गई थी और इस समय सारे संसार में १०,००,००,००० से कम अंगरेज नहीं हैं। यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से आधे के लगभग ऐसे अंगरेज या उनकी संतानें हैं जो अमेरिका के संयुक्त राज्यों में जा कर बस गई हैं। इस प्रकार लगभग चार सौ वर्षों में अंगरेजों की संख्या प्रायः पचास गुनी हो गई है।

उन्नीसवीं शताब्दि में गोरों की जन-संख्या में जो यह असाधारण वृद्धि हुई थी उसके कई कारण थे। एक तो यह कि वे सारे संसार का राज्य पा जाने के कारण परम सुखी हो गये थे, और दूसरे

यह कि नये नये आविष्कार करके और मानविज्ञान में
उन्नति करके लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों आदि पर बहुत कुछ
कार प्राप्त कर लिया था। उनकी यह उन्नति साधारणतः यन्त्र-यु
क्रांति के नाम से प्रसिद्ध है। यह यन्त्र-युग की क्रांति अठारहवीं शत
के अंतिम दशकों में आरम्भ हुई थी और तब से अब तक उस
संसार की व्यवस्था और रूप में बहुत ही शीघ्रता के साथ अनेक
भीषण और आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिये हैं। जितने अधिक
परिवर्तन इन सौ डेढ़ सौ वर्षों में हुए हैं, उतने आज तक और
कभी नहीं हुए थे। अब तक मनुष्य की ऐहिक उन्नति क्रमशः
विकास मात्र के रूप में हुआ करती थी, पर अब उसमें एका-
एक भीषण क्रांति हो गई थी। क्रांति-काल से पहले मनुष्य ने एक
बारूद को छोड़ कर बहुत दिनों से और कोई नया ऐहिक यन
नहीं प्राप्त किया था। इस क्रान्ति से पहले संसार में वैसे ही रथ
और वैसे ही जहाज आदि देखने में आते थे, जैसे उससे हजारों
र्ष पहले काम में आते थे और उनका शिल्प आदि भी हजारों
र्षों से ज्यों का त्यों और प्रायः एक ही रूप से चला जाता था।
सहसा संसार की सारी बातें बदल गईं। भाफ और बिजली
जिनों से सारा संसार भर गया, प्रकृति की गुप्त और भीषण
याँ मनुष्य की [illegible] हो गईं प्रकृति के दुर्गम भाण्डार उसके
[illegible]

गोरी जाति से है। संसार में यह भीषण परिवर्तन, यह विकट क्रान्ति केवल गोरों ने ही की थी। ये सब आविष्कार गोरों के ही किये हुए थे, और किसी ने रत्ती भर भी उसमें कोई सहायता नहीं की थी। और यही कारण है कि इन सब आविष्कारों से सब से पहले उन्हीं गोरों ने ही लाभ भी उठाया। संसार में जो यह नई व्यवस्था उत्पन्न हुई थी, उसमें दो बातें सर्व-प्रधान थीं। एक तो यह कि तरह तरह की नई कलें आदि बनने के कारण थोड़े से आदमी बहुत अधिक माल तैयार करने लग गये थे, और दूसरे यह कि स्वयं मनुष्य के एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने जाने और माल-असबाब ले जाने तथा ले आने के अनेक सुगम साधन उत्पन्न हो गये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि चीजें बनने भी किफायत में लगीं और उनके भेजने या मँगाने में भी बहुत किफायत होने लगी। यूरोप मानों सारे संसार के लिए चीजें बनाने का कारखाना बन गया और सारे संसार का धन वहीं आ कर जमा होने लगा इसीके परिणाम-स्वरूप वहाँ की आबादी भी भीषण रूप से बढ़ने लगी। माल, पूँजी और आदमियों का यूरोप मानों गोदाम बन गया। वहाँ के लोग संसार के सभी भागों से कच्चा माल मँगा मँगा कर तरह तरह की चीजें तैयार करने लगे और उन चीजों को सारे संसार में भेज भेज कर वहाँ का धन अपने घर में भरने लगे। उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ से अब तक गोरों ने, और विशेषतः यूरोप के गोरों ने जितना अधिक धन एकत्र किया है, उसका हिसाब लगाना तो दूर रहा, कदाचित् उसकी ठीक ठीक कल्पना भी नहीं हो सकती। हाँ सारे संसार के व्यापार की वृद्धि का हिसाब लगाकर यदि आप चाहें तो उसकी थोड़ी बहुत कल्पना

कर सकते हैं। सन १८१८ में सारे संसार में लगभग ३
का व्यापार हुआ था। अर्थात् सृष्टि के आरम्भ काल से
उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ तक मनुष्य व्यापार-क्षेत्र में जो
कर सका था, उसका मूल्य, एक साल में ३ अरब बढ़ ही पु
सका था। सन १८५० में भी सारे संसार का यह व्यापार उ
समय केवल दूना हो सका था, अर्थात् लगभग १२ अरब का
व्यापार हुआ था। पर सन १९०० में वह बढ़ कर प्रायः ६०
अरब हो गया था और सन १९१३ में तो वह बढ़ कर १ ह
और २० अरब तक पहुँच गया था। अर्थात् सौ वर्ष से भी क
समय में वह प्रायः बीस गुना हो गया था। यहाँ इस बात का भी
ध्यान रखना चाहिए कि ये अंक केवल एक वर्ष के हैं। इन्हीं अंकों
से इस बात का अनुमान हो सकता है कि इधर के सौ वर्षों में
यूरोप के गोरों ने सारे संसार का कितना अधिक धन अपने घर
में भर लिया होगा और सारे संसार को धन से कितना खाली कर
दिया होगा।

समय समय पर की है। यहाँ उन सब का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि मनुष्यत्व और सभ्यता के ऊँचे ऊँचे आदर्शों को एकदम से छोड़ कर गोरे लोग केवल स्वार्थ-साधन में लग गये और पूरे धन-लोलुप बन गए। फिर भी गोरी सभ्यता के थोड़े से समर्थक ऐसे हैं, जो यह कह कर अपना दोष छिपाना चाहते हैं कि हमें इस मार्ग का ग्रहण नितांत बदली हुई परिस्थितियों के कारण करना पड़ता था। वे कहते हैं कि सभ्य गोरी जाति ने अब एक ऐसे नये भौतिक जगत में प्रवेश किया था, जो उसके पूर्वजों के समय के जगत से एकदम भिन्न था। यह एक वैज्ञानिक सत्य सिद्धान्त है कि जो जीव अपने जीवन की रक्षा करना चाहता हो, उसे यह आवश्यक है कि अपने आपको नई और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाता है, तो उसका नाश अवश्यम्भावी है। परिस्थितियों में जितना ही अधिक और शीघ्रता से परिवर्तन होता है, जीवित रहने की इच्छा करने वाले प्राणी को भी अपने आप में परिवर्तन करके उतनी ही शीघ्रता से अपने आप को उन नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। कदाचित् यहाँ पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि गोरी सभ्यता के पृष्ठ-पोषकों का यह तर्क बिलकुल थोथा है और इसमे कोई तथ्य नहीं है। प्रकृति कभी कोई ऐसी परिस्थिति नहीं उत्पन्न करती जिसमें किसी मनुष्य को, और वह भी सभ्य बनने वाले मनुष्य को, अनिवार्य रूप से दूसरों के देश और सम्पत्ति पर इस बुरी तरह से अधिकार कर लेने की आवश्यकता पड़े। यह तो अपनी पाशविक वृत्ति का समर्थन करने के लिए गढ़ा हुआ तर्क

कर सकते हैं । सन १८७८ में सारे संसार में लगभग ६
का व्यापार हुआ था । अर्थात् सृष्टि के आरम्भ काल से
उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ तक मनुष्य व्यापार-क्षेत्र में जो
कर सका था, उसका मूल्य, एक साल में ६ अरब तक ही पहुँ
सका था । सन १८५० में भी सारे संसार का यह व्यापार उ
समय केवल दूना ही सका था, अर्थात् लगभग १२ अरब रु
व्यापार हुआ था । पर सन १९०० में यह बढ़ कर प्रायः ५०
अरब हो गया था और सन १९१३ में तो यह बढ़ कर १ खरब
और २० अरब तक पहुँच गया था । अर्थात् सौ वर्ष से भी कम
समय में यह प्रायः बीस गुना हो गया था । यहाँ इस बात का भी
ध्यान रखना चाहिए कि ये अंक केवल एक वर्ष के हैं । इन्हीं अंकों
से इस बात का अनुमान हो सकता है कि इधर के सौ वर्षों में
यूरोप के गोरों ने सारे संसार का कितना अधिक धन अपने घर
में भर लिया होगा और सारे संसार को धन से कितना खाली कर
दिया होगा ।

अब इसीसे आप कल्पना कर लीजिये कि उन्नीसवीं शताब्दि
ं गोरों की सभ्यता ने क्या क्या काम किये । पर इस उन्नति
र आर्थिक लाभ को देख कर ही आप भ्रम में न पड़ जायँ ।
सभ्यता का एक और अंग था, जो दोषों का था और जो
ँवाले अंग की अपेक्षा सैकड़ों हजारों गुना अधिक भारी था ।
ुणों और लाभों का ही पूरा पूरा वर्णन या अनुमान नहीं
ता, तब उन दोषों के अनुमान का तो कहना ही क्या है !
ऐसे हैं जिनकी निंदा गोरों की सभ्यता का समर्थन क
ारों बड़े बड़े विद्वानों और

र तरह तरह के यन्त्र आदि बना कर जीविका
साधन उत्पन्न कर लिये थे, पर फिर भी वे
ो हुए । दूसरों के देशों और सम्पत्ति पर
उन्हें चसका लग गया था, वह उन्हें अपने
ही न देता था । इस प्रकार बहुत से लोग तो
से अलग हो जाते थे और उधर मातृभूमि
उनकी जनन-शक्ति के घटने के लक्षण दिखाई
। भी धीरे धीरे कम होता जाता था । आदर्श
ते जाते थे । राजनीतिक वैमनस्य और सामा-
बहुत बढ़ गया था । तात्पर्य यह है कि ह्रास
दाई देने लग गए थे । और अभी तक वे लक्षण
। ही जाते हैं । और फिर इनका बढ़ना अनिवार्य
। कोई एक ही जाति सदा किस प्रकार बलवती
। रह सकती है ! उसे एक न एक दिन दूसरों के
ान छोड़ना ही पड़ेगा । यह परिवर्तन भी प्रकृति
ा है । इससे किसी प्रकार बर्ताव हो ही नहीं
े लिए जो उपाय होंगे, वे अस्थायी ही
। नहीं सकते । क्योंकि प्रकृति के नियमों
े सामर्थ्य के बाहर है ।

ें से यूरोप में राष्ट्रीय साम्राज्यवाद का
। था । प्रत्येक राष्ट्र केवल अपना साम्राज्य
। । यही कारण था कि यूरोपीय राष्ट्र
नहीं देख सकते थे । सब
ौर जब कभी वे अपने

आने लग गई थीं यहाँ तक कि उनके जातीय धन और गुणों का भी ह्रास होने लग गया था। उन लक्षणों को देख कर विचारशील लोग चिन्तित होने लग गए थे। सभी स्थानों से गोरों का रोब कम होने लग गया था—सभी जगहों में लोग उनके अधिकार से बाहर निकल ने का प्रयत्न करने लग गये थे। उनकी भीतरी दशा भी अच्छी नहीं थी। पारस्परिक राग, द्वेष और वैमनस्य की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। सभी जगह वे एक दूसरे को निगल जाने का प्रयत्न कर रहे थे। कोई किसी का वैभव नहीं देख सकता था। मारे अभिमान के कोई जमीन पर पैर नहीं रखता था। सारे संसार में मानो स्वार्थ का ही राज्य रह गया था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाले सिद्धांत के सिवा और कोई सिद्धांत दिखाई ही नहीं देता था। भला इस अवस्था में संसार कितने दिनों तक चल सकता था? इसलिए प्रकृति ने गोरों को उनके अपराध का दंड देने के लिए अपना भीषण दंड उठाया। उस दंड के कुछ प्रहार हो भी चुके हैं; पर लक्षणों से जान पड़ता है कि अभी और कई प्रहार होने को बाकी हैं।

उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में सबसे पहली बात यह हुई कि प्रायः सभी गोरी जातियों की सन्तान की वृद्धि रुक गई। फ्रांस की जन-संख्या की वृद्धि तो मानों एकदम से रुक गई। बहुत दिनों तक वहां की जन-संख्या ज्यों की त्यों बनी रही। यह कोई साधारण बात नहीं थी; इसलिये अनेक विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। यह बात असाधारण इसलिये है कि मनुष्य की जनन-शक्ति बहुत अधिक है। और इसीलिये संसार की आबादी आरम्भ से अब तक बराबर बढ़ती ही गई है। पर साथ ही एक बात और

है। यहाँ यह बात भी स्मरण रखने के योग्य है कि उक्त वैज्ञानिक सिद्धांत को गोरी सभ्यता के समर्थक विद्वानों ने जान बूझ कर ऐसा रूप दे दिया है कि लोग उसके धोखे में पड़ कर उनके सिर दोष मढ़ना छोड़ दें। इसके सिवा इस तर्क का कोई अर्थ नहीं है।

उन्नीसवीं शताब्दि से पहले यूरोप वालों के आदर्श अवश्य ही बहुत कुछ उच्च तथा प्रशंसनीय थे। पर उन्नीसवीं शताब्दि में गोरों ने उन आदर्शों का बिलकुल त्याग कर दिया और वे हर तरह से दूसरों के देशों और धन-सम्पत्ति पर अधिकार करने की चिन्ता में लग गये। उनके इस एकांगी प्रयत्न की खराबियाँ जल्दी ही दिखाई देने लग गईं। मुख्य बात यह है कि प्रकृति कभ किसी प्रकार का बहाना नहीं सुनती। वह केवल शुभ परिणाम पर ध्यान रखती है। और जिसके कार्य का परिणाम शुभ नहीं होता, उसे वह तुरन्त ही पूरा पूरा दंड देती है। गोरों को भी अब वह दण्ड मिलना आरम्भ हो गया है। पर उन में से कुछ तो उस दण्ड का स्वरूप देख कर अभी से सचेत होने लग गये हैं और बहुत से लोग अभी उसकी उपेक्षा ही कर रहे हैं। वे अपनी शक्ति के घमंड में प्रकृति को भी कोई चीज नहीं समझते। पर यदि सच पूछा जाय तो वे इस उदासीनता से दूसरों की जो हानि करते हैं, वह तो करते ही हैं, पर साथ ही साथ वे अपने अप- राधों की भीषणता भी बढ़ाते जाते हैं और उसके परिणाम स्वरूप अधिक कठोर दंड के भागी बनते जाते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में ही इस बात के लक्षण दिखाई देने लग गये थे कि शीघ्र ही गोरों की उन्नति का अन्त और पतन का आरंभ होने वाला है। उनमें तरह तरह की कमजोरी

आविष्कार करके और तरह तरह के यन्त्र आदि बना कर जीविका निर्वाह के यथेष्ट नए साधन उत्पन्न कर लिये थे, पर फिर भी वे उतने से सन्तुष्ट नहीं हुए। दूसरों के देशों और सम्पत्ति पर अधिकार करने का उन्हें चसका लग गया था, वह उन्हें अपने देश में जमकर रहने ही न देता था। इस प्रकार बहुत से लोग तो यों अपनी मातृभूमि से अलग हो जाते थे और उधर मातृभूमि में जो लोग रहते थे, उनकी जनन-शक्ति के घटने के लक्षण दिखाई देते थे। जातीय बल भी धीरे धीरे कम होता जाता था। आदर्श भी धीरे धीरे नष्ट होते जाते थे। राजनीतिक वैमनस्य और सामाजिक असन्तोष भी बहुत बढ़ गया था। तात्पर्य यह है कि ह्रास के सभी लक्षण दिखाई देने लग गए थे। और अभी तक वे लक्षण प्रायः बराबर बढ़ते ही जाते हैं। और फिर इनका बढ़ना अनिवार्य भी है। संसार में कोई एक ही जाति सदा किस प्रकार बलवती और प्रधान बनी रह सकती है? उसे एक न एक दिन दूसरों के लिए अपना स्थान छोड़ना ही पड़ेगा। यह परिवर्तन भी प्रकृति का एक अटल नियम है। इससे किसी प्रकार बर्ताव हो ही नहीं सकता। इससे बचने के लिए जो उपाय होंगे, वे अस्थायी ही होंगे; स्थायी कभी हो ही नहीं सकते। क्योंकि प्रकृति के नियमों में बाधक होना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है।

इधर पचास साठ वर्षों से यूरोप में राष्ट्रीय साम्राज्यवाद का जोर बहुत अधिक बढ़ गया था। प्रत्येक राष्ट्र केवल अपना साम्राज्य बढ़ाने की चिंता में लगा था। यही कारण था कि यूरोपीय राष्ट्र एक दूसरे की सुख-समृद्धि किसी प्रकार नहीं देख सकते थे। सब लोग केवल अपना ही भला चाहते थे; और जब कभी वे अपने

है। प्रकृति बीच बीच में अनेक उपायों से यह वृद्धि रोकती र
रहती है। यदि वृद्धि में रुकावट न हो तो यह ऐसा भीषण र
धारण कर सकती है जिसका अनुमान करना भी हमारे लि
असम्भव है। यदि वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट न हो तं
साल दो साल में ही किसी पक्षी के एक जोड़े से लाखों पक्षी ह
सकते हैं। पशु-जगत में हाथी प्रायः सबसे कम बच्चे देता है। प
हिसाब लगा कर देखा गया है कि यदि प्रकृति की ओर से वृ
की रुकावट की व्यवस्था न होती तो हाथी के एक ही जोड़े
७५० वर्षों में अठारह करोड़ हाथी हो जाते। अधिकांश मछलि
एक ही बार में लाखों अंडे देती हैं। यदि उनकी वृद्धि में विघ्न
पड़े तो थोड़े ही दिनों में एक ही प्रकार की मछलियों से संसा
के सारे महासमुद्र भर जायँ। और जातियों की मछलियों के रह
के लिये स्थान ही न बच जाय। बरगद और पीपल के करोड़
बीज हुआ करते हैं। यदि उनमें से प्रत्येक बीज जमकर वृक्ष बनने
लगे तो संसार में और किसी वनस्पति या जीव के रहने के लिये
स्थान ही न मिले। इसलिए वृद्धि का बिलकुल ही रुक जाना और
वह भी एक सभ्य उन्नत और सुखी जाति की वृद्धि का रुक
जाना अवश्य ही चिन्ताजनक है।

यह बात नहीं थी कि सारे संसार में गोरों की वृद्धि होती
नहीं थी। वृद्धि तो नियमानुसार अवश्य होती थी, पर वह
बहुधा यूरोप के बाहर हुआ करती थी। केवल यूरोप की जन-
संख्या की वृद्धि रुक गई थी। यूरोप के बाहर दूसरे महादेशों में
यूरोप वाले जाकर अधिकार जमाने लग गए थे और प्रायः वहीं
बसने भी लग गए थे। यद्यपि गोरों ने अनेक प्रकार के नए नए

आविष्कार करके और तरह तरह के यन्त्र आदि बना कर जीविका निर्वाह के यथेष्ट नए साधन उत्पन्न कर लिये थे, पर फिर भी वे उतने से सन्तुष्ट नहीं हुए। दूसरों के देशों और सम्पत्ति पर अधिकार करने का उन्हें चसका लग गया था, वह उन्हें अपने देश में जमकर रहने ही न देता था। इस प्रकार बहुत से लोग तो अपनी मातृभूमि से अलग हो जाते थे और उधर मातृभूमि में जो लोग रहते थे, उनकी जनन-शक्ति के घटने के लक्षण दिखाई देते थे। जातीय बल भी धीरे धीरे कम होता जाता था। आदर्श भी धीरे धीरे नष्ट होते जाते थे। राजनीतिक वैमनस्य और सामाजिक असन्तोष भी बहुत बढ़ गया था। तात्पर्य यह है कि ह्रास के सभी लक्षण दिखाई देने लग गए थे। और अभी तक वे लक्षण प्रायः बराबर बढ़ते ही जाते हैं। और [illegible] बहुत [illegible] है। संसार में कोई एक ही जाति [illegible] और प्रधान बनी रह सकती है [illegible] एक [illegible] दूसरों के लिए अपना स्थान छोड़ना ही पड़ेगा। [illegible] एक [illegible] नियम है। इससे [illegible] सकता। इससे बचने के [illegible] [illegible]

किसी प्रतिस्पर्धी को किसी प्रकार के कष्ट में देखते थे, तो प्रसन्न
होते थे । यह ठीक है कि इसी बीच में वहाँ सार्वराष्ट्रीय वा
भी थोड़ा बहुत प्रचार हुआ था । कुछ लोग ऐसे भी निकले
थे, जो यह समझने लग गये थे कि सब लोगों को अपने सु
ध्यान के साथ साथ और देशों अथवा राष्ट्रों के कल्याण का
ध्यान रखना चाहिए । पर ऐसे लोगों की बातों पर बहुत
ध्यान दिया जाता था । जो लोग इस बीसवीं शताब्दि में गो
के प्रभुत्व का समर्थन करते हैं और यह चाहते हैं कि संसार
गोरों के सिवा और किसी जाति का नाम भी न रह जाय, वे
सार्वराष्ट्रीयवाद के समर्थनों की अब भी हँसी उड़ाते हैं
उनके सिद्धांतों को जातीय संकुचित दृष्टि से घातक समझते
इसका कारण यही है कि वे एक मात्र बल के उपासक हैं । वे सम
हैं कि जब तक हम बलवान् रह सकते हैं, तब तक किसी प्र
हमारा नाश या पतन नहीं हो सकता । पर ऐसे लोग प्रकृति
यह अटल नियम भूल जाते हैं कि उन्नति के उपरान्त पतन अ
पतन के उपरान्त उन्नति का होना वैसा ही अवश्यम्भावी है जै
कि दिन के उपरान्त रात का और रात के उपरान्त दिन का हो
अनिवार्य है । खैर । यह तो एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका प्रति
पादन इस पुस्तक में अनेक बार हो चुका है । कहने का तात्प
यही है कि गोरी जातियाँ आपस में एक दूसरी की हानि देखक
ही प्रसन्न होने लग गई थीं । इसका एक बहुत बड़ा उदाहरण ग
रूस-जापान युद्ध के समय मिला था । पहले यूरोप में रूस क
बहुत अधिक आतंक था । यूरोप के प्रायः सभी राष्ट्र रूस से बहुत
डरा करते थे । जो लोग उस समय के संसार का कुछ भी ज्ञान

रखते हैं, वे कह सकते हैं कि भारत के सम्बन्ध में प्रबल ब्रिटिश सरकार भी रूस से कितनी अधिक भयभीत रहा करती थी। केवल रूस के डर के मारे ही बहुत दिनों तक अंग्रेज लोग लाखों करोड़ों रुपये अफगानीस्तान सरकार को दिया करते थे। पर जब वही रूस एशिया के एक बालक राष्ट्र जापान से युद्ध में हार गया, तब यूरोप के अन्यान्य राष्ट्रों की प्रसन्नता का ठिकाना न रह गया। यह एक नियम है कि बहुधा लोगों को अपने तत्कालिक स्वार्थ के आगे सुदूर भविष्य दिखाई नहीं देता। यह दोष, दृष्टि या बुद्धि का नहीं, स्वार्थ का ही है। उस समय गोरी जाति का प्रताप-सूर्य अपने शीर्ष-बिन्दु पर जा पहुंचा था और उस बिन्दु पर पहुंचने के उपरांत कोई सूर्य कभी वहाँ ठहर ही नहीं सकता। उसे अवश्य नीचे की ओर चलना पड़ता है। ऐसी दशा में यदि यूरोप वालों ने रूस-जापान युद्ध से जैसी चाहिए वैसी शिक्षा नहीं ग्रहण की, तो इसमें किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

रूस के पराजय पर यूरोप के अधिकांश राष्ट्रों को आनन्द मनाते देखकर रेने पिनन नामक एक फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञ ने कहा था "सम्भवतः इस समय यूरोप रूस-जापान युद्ध का महत्व समझने और उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं है। जो राष्ट्र धनियापन करके अपना काम चलाते हैं, उनका ध्यान केवल तात्कालिक लाभ पर ही होता है। वे सुदूर भविष्यत् के लिये तैयार नहीं हो सकते। जिस यूरोप में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेकानेक स्वार्थों का राज्य है, जिसमें अनेक प्रतिस्पर्धी हैं, उस यूरोप में एकता कैसे हो सकती है? इस समय परिस्थिति ही ऐसी है कि चाहे भावी संकटों की कितनी ही अधिक आशंका क्यों न हो, पर

## यूरोपीय महायुद्ध

( ८ )

सन् १९१४ में महायुद्ध में प्रवृत होकर यूरोप ने मानों आत्म-हत्या का एक बहुत बड़ा प्रयत्न किया था। संसार का कदाचित् कोई युद्ध भीषणता में उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अब तक के इतिहास में वह युद्ध अभूत-पूर्व है।

महायुद्ध के आरम्भ से पहले यूरोप के सभी राष्ट्र बहुत अधिक बलवान् और शक्तिशाली हो गए थे। बहुत दिन पहले से ही वे अपना अपना बल बढ़ा रहे थे। तोपों पर तोपें और जहाजों पर जहाज बनते चले जा रहे थे। सैनिक बल की प्रतियोगिता चरम सीमा को पहुंच चुकी थी। मानों सभी राष्ट्र भली भांति यह जानते थे कि शीघ्र ही भीषण महायुद्ध होने वाला है और उसके लिये तैयार हो रहे थे। जिस प्रकार बलिदान अथवा हलाल करने के लिये पशु पहले खिला पिलाकर खूब अच्छी तरह तैयार की जाती है, उसी प्रकार प्रकृति-देवी मानो यूरोपीय राष्ट्रों को बहुत ही यत्नपूर्वक हृष्ट पुष्ट कर रही थी। जब यूरोप खूब अच्छी तरह लड़ने के लिए तैयार हो गया, तब वह लड़ पड़ा। इस समय कुछ लोग समझते हैं कि यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो गया और अब

पारस्परिक राग-द्वेष किसी प्रकार कम नहीं हो सकता । अ
अपनी सेनाओं और लड़ाई के जहाजों के कारण जितना क
हो सकता है, उससे अधिक पतन यह हम लोगों की पा
रिक फूट के कारण होगा । वास्तविक संकट कहीं बाहर से
आ रहा है । वह तो स्वयं हम लोगों में ही है ।"

पर किसकी इन [illegible]
को कौन सुनता था? [illegible]
चरितार्थ होने लगा । यूरोपीय राष्ट्रों के जितने दुर्गुण, जितनी
लताएँ थीं, उन सब में निरन्तर वृद्धि होती गई । यूरोपीय
दूसरों को खा चुकने के उपरान्त आपस में एक दूसरे को
की चिन्ता में प्रवृत्त हुए । प्रकृति ने फिर अपना दण्ड उठाया
मानों किसी अज्ञात और परम प्रबल शक्ति ने जबरदस्ती गर
पकड़कर यूरोप को एक बहुत बड़े गहरे और नाशक गड्ढे
ढकेल दिया । यह गहरा और नाशक गड्ढा गत यूरोपीय महायु
था । पर मजा तो यह है कि उस गड्ढे में गिरने के उपरान्त भी
उस महायुद्ध की समाप्ति हो जाने पर भी, आज तक यूरोप वा
की बुद्धि ठिकाने नहीं आई है । वही घातक और नाशक नीति अब त
पहले की भांति ही अपना काम करती जा रही है । आज भी
यूरोप में उसी पारस्परिक राग द्वेष का राज्य है, आज भी वहाँ
वाले आपस में एक दूसरे को निगलने का मौका ढूँढ रहे हैं; और
शेष संसार उत्सुकता और उत्कंठा से और भी अधिक भीषण
परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा है ।

## यूरोपीय महायुद्ध

( ८ )

सन् १९१४ में महायुद्ध में प्रवृत्त होकर यूरोप ने मानों आत्म-हत्या का एक बहुत बड़ा प्रयत्न किया था। संसार का कदाचित् कोई युद्ध भीषणता में उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अब तक के इतिहास में वह युद्ध अभूत-पूर्व है।

महायुद्ध के आरम्भ से पहले यूरोप के सभी राष्ट्र बहुत अधिक बलवान् और शक्तिशाली हो गए थे। बहुत दिन पहले से ही वे अपना अपना बल बढ़ा रहे थे। तोपों पर तोपें और जहाजों पर जहाज बनते चले जा रहे थे। सैनिक बल की प्रतियोगिता चरम सीमा को पहुंच चुकी थी। मानों सभी राष्ट्र भली भांति यह जानते थे कि शीघ्र ही भीषण महायुद्ध होने वाला है और उसके लिये तैयार हो रहे थे। जिस प्रकार बलिदान अथवा हलाल करने के लिये खसी पहले पिला पिलाकर खूब अच्छी तरह तैयार की जाती है, उसी प्रकार प्रकृति-देवी मानों यूरोपीय राष्ट्रों को बहुत ही यत्नपूर्वक हृष्ट पुष्ट कर रही थी। जब यूरोप खूब अच्छी तरह लड़ने के लिए तैयार हो गया, तब वह लड़ पड़ा। इस समय कुछ लोग समझते हैं कि यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो गया और अब

[illegible] हो गया । [illegible]
[illegible] और [illegible] के [illegible] के कारण [illegible]
हो सकता है, [illegible]
[illegible] के कारण होगा । [illegible]
जा रहा है । [illegible] है ।"

पर किसको इन बातों की ओर यूरोपीय राष्ट्रों का ध्यान [illegible] हो सकता था? "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" वाला सिद्धान्त चरितार्थ होने लगा । यूरोपीय राष्ट्रों के जितने गुट, जितने [illegible] लगाएँ थीं, उन सब में निरन्तर वृद्धि होती गई । यूरोपीय [illegible] दूसरों को जा पकड़ने के स्थान आपस में एक दूसरे को [illegible] की चिन्ता में मशगूल हुए । प्रकृति ने फिर अपना दण्ड उठाया । मानों किसी अज्ञात और परम प्रबल शक्ति ने जबरदस्ती गरदन पकड़कर यूरोप को एक बहुत बड़े गहरे और नाशक गड्ढे में ढकेल दिया । यह गहरा और नाशक गड्ढा गत यूरोपीय महायुद्ध था । पर मजा तो यह है कि उस गड्ढे में गिरने के उपरान्त भी, उस महायुद्ध की समाप्ति हो जाने पर भी, आज तक यूरोप वालों की बुद्धि ठिकाने नहीं आई है । वही घातक और नाशक नीति अब तक पहले की भांति ही अपना काम करती जा रही है । आज भी यूरोप में उसी पारस्परिक राग द्वेष का राज्य है, आज भी वहाँ वाले आपस में एक दूसरे को निगलने का मौका ढूँढ रहे हैं; और शेष संसार उत्सुकता और उत्कंठा से और भी अधिक भीषण परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा है ।

## यूरोपीय महायुद्ध

( ८ )

सन् १९१४ में महायुद्ध में प्रवृत्त होकर यूरोप ने मानो आत्म-हत्या का एक बहुत बड़ा प्रयत्न किया था। संसार का कदाचित् कोई युद्ध भीषणता में उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अब तक के इतिहास में वह युद्ध अभूत-पूर्व है।

महायुद्ध के आरम्भ से पहले यूरोप के सभी राष्ट्र बहुत अधिक बलवान और शक्तिशाली हो गए थे। बहुत दिन पहले से ही वे अपना अपना बल बढ़ा रहे थे। तोपों पर तोपें और जहाजों पर जहाज बनते चले जा रहे थे। सैनिक बल की प्रतियोगिता चरम सीमा को पहुंच चुकी थी। मानो सभी राष्ट्र भली भांति यह जानते थे कि शीघ्र ही भीषण महायुद्ध होने वाला है और उसके लिये तैयार हो रहे थे। जिस प्रकार बलिदान अथवा हलाल करने के लिये बरसों पहले खिला पिलाकर खूब अच्छी तरह तैयार की जाती है, उसी प्रकार प्रकृति-देवी मानो यूरोपीय राष्ट्रों को बहुत ही यत्नपूर्वक हृष्ट पुष्ट कर रही थी। जब यूरोप खूब अच्छी तरह लड़ने के लिए तैयार हो गया, तब वह लड़ पड़ा। इस समय बुद्ध लोग समझते हैं कि यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो गया और अब

राजनीतिक राग-द्वेष किसी प्रकार कम नहीं हो सकता । जब
अपनी सेनाओं और लड़ाई के जहाजों के कारण जितना बलवान
हो सकता है, उससे अधिक बलवान यह हम लोगों की
रिक फूट के कारण होगा । वास्तविक संकट कहीं बाहर से
आ रहा है । वह तो स्वयं हम लोगों में ही है ।"

पर पिनन की इन बातों की ओर यूरोपीय राष्ट्रों का ध्यान
हो कैसे सकता था? "विनाश काले विपरीत बुद्धिः" वाला सिद्धा
चरितार्थ होने लगा । यूरोपीय राष्ट्रों के जितने दुर्गुण, जितनी दुर्ब
लताएँ थीं, उन सब में निरन्तर वृद्धि होती गई । यूरोपीय रा
दूसरों को खा चुकने के उपरान्त आपस में एक दूसरे को खाने
की चिन्ता में प्रवृत्त हुए । प्रकृति ने फिर अपना दण्ड उठाया ।
मानों किसी अज्ञात और परम प्रबल शक्ति ने जबरदस्ती गरदन
पकड़कर यूरोप को एक बहुत बड़े गहरे और नाशक गड्ढे में
ढकेल दिया । यह गहरा और नाशक गड्ढा गत यूरोपीय महायुद्ध
था । पर मजा तो यह है कि उस गड्ढे में गिरने के उपरान्त भी,
उस महायुद्ध की समाप्ति हो जाने पर भी, आज तक यूरोप वालों
की बुद्धि ठिकाने नहीं आई है । वही घातक और नाशक नीति अब तक
पहले की भांति ही अपना काम करती जा रही है । आज
यूरोप में उसी पारस्परिक राग द्वेष का राज्य है,
भी आपस में एक दूसरे को निगलने का मौका
संसार उत्सुकता और उत्कंठा से और भी
... की प्रतीक्षा कर रहा है ।

उत्तराधिकारिणी आधुनिक गोरी सभ्यता, जो कम से कम आत्म-हत्या के प्रयत्न में तो अवश्य ही अपनी जननी का पूरा पूरा अनुकरण कर रही है। वह क्या अनुकरण कर रही है, बलवती विधि उससे बलपूर्वक ऐसा करा रही है। वह विधि किसी को अपने शासन-क्षेत्र से बाहर नहीं निकलने देती। जन्म देना और नष्ट करना दोनों उसके अटल नियम हैं—परम निश्चित सिद्धांत हैं। उसके दंड से बचना असम्भव है।

यों तो गोरी सभ्यता के नाश का बीज बहुत पहले से ही बोया जा चुका था, पर बीसवीं शताब्दि के आरंभ में उसके अंकुर बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग गये थे। सारे यूरोप में घोर अशांति का साम्राज्य स्थापित हो गया था। सैनिकवाद का भाव पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। जिस प्रकार नाशक भूकम्प आने से पहले भूगर्भ में अन्दर ही अन्दर उथल-पुथल मचती है, ठीक उसी प्रकार की उथल-पुथल यूरोप में भी मच रही थी। पाशविक वृत्तियों से उत्तेजित होने के कारण मानवी मन ज्वालामुखी की भाँति फूटा पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था कि लोग शांति से नितांत विरक्त हो गये हैं और अपनी सारी शक्ति लगा कर अशान्ति का आह्वान कर रहे हैं। रणचंडी के नृत्य के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है, वे सभी चीज़ें जमा की जा रही थीं। कोई आयोजन बाकी नहीं छोड़ा जाता था। यह प्रयत्न जान बूझ कर भी किया जाता था और अनजान में भी ज़ोर से ज़ोर होता चलता था। भावी भीषण नाश के लिए केवल मनुष्य का हाथ ही यथेष्ट बलवान नहीं था, इसलिए दैवी हाथ भी उसमें सहायक हो रहा था।

संसार में फिर शान्ति विराज रही है। पर यह उनकी भूल है। इस समय भी यूरोप से शान्ति उतनी ही दूर है, जितनी दूर वह महायुद्ध के आरम्भ होने के समय थी; बल्कि अनेक अंशों में उससे भी कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी है। यूरोपीय राष्ट्रों ने अभी युद्ध समाप्त नहीं किया है। अभी तो वे लड़ते लड़ते थककर जरा दम लेने के लिये बैठे हैं। पर बैठे भी खाली नहीं हैं। फिर से कट मरने की तैयारी कर रहे हैं। और आज यह तैयारी पहले से भी ज्यादा जोरों पर है। विजयी पक्ष ने अपने विजित शत्रुओं से कह दिया है कि जरा ठहरो; हम फिर से तुम्हारी खबर लेना चाहते हैं। उधर विजित पक्ष मन ही मन समझ रहा है कि तुम जाते कहाँ हो, इस बार तो मैं तुम्हे लड़ाई का मजा चखाऊँगा। गत महा-युद्ध तो उस युद्ध-चक्र का केवल एक आरा है जो प्रकृति ने गोरी शक्ति का अन्त करने के लिये तैयार किया है। अब यदि आप इसे शान्ति समझना चाहें तो प्रसन्नता से समझ सकते हैं।

गोरी जाति अपनी आत्मा का तो उसी समय नाश कर चुकी थी जब उसने अपने पुराने उच्च आदर्शों को छोड़ कर अपनी सारी शक्ति ऐहिक पदार्थों और सुखों की प्राप्ति में ही लगा दी थी; और अब वह अपना शरीर भी नष्ट करने पर उतारू हुई थी। यूरोप की आधुनिक गोरी सभ्यता की जननी यूनानी सभ्यता ने भी एक बार इसी प्रकार आत्म-हत्या की थी। उस सभ्यता ने भरी जवानी में अपने हाथों अपने प्राण गँवाए थे और वह अपने अनेक ऐसे गुण, जिनसे संसार का बहुत कुछ कल्याण हो सकता था, अपने साथ ही लेती गई थी। अब संसार में उस सभ्यता का केवल नाम ही नाम रह गया है, और रह गई है उसकी

उत्तराधिकारिणी आधुनिक गोरी सभ्यता, जो कम से कम आत्म-हत्या के प्रयत्न में तो अवश्य ही अपनी जननी का पूरा पूरा अनु-करण कर रही है। वह क्या अनुकरण कर रही है, बलवती विधि उससे बलपूर्वक ऐसा करा रही है। वह विधि किसी को अपने शासन-क्षेत्र से बाहर नहीं निकलने देती। जन्म देना और नष्ट करना दोनों उसके अटल नियम हैं—परम निश्चित सिद्धांत हैं। उसके दंड से बचना असम्भव है।

यों तो गोरी सभ्यता के नाश का बीज बहुत पहले से ही बोया जा चुका था, पर बीसवीं शताब्दि के आरंभ में उसके अंकुर बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग गये थे। सारे यूरोप में घोर अशांति का साम्राज्य स्थापित हो गया था। सैनिकवाद का भाव पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। जिस प्रकार नाशक भूकम्प आने से पहले भूगर्भ में अन्दर ही अन्दर उथल-पुथल मचती है, ठीक उसी प्रकार की उथल-पुथल यूरोप में भी मच रही थी। पाशविक वृत्तियों से उत्तेजित होने के कारण मानवी मन ज्वालामुखी की भाँति फूटा पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था कि लोग शांति से नितांत विरक्त हो गये हैं और अपनी सारी शक्ति लगा कर अशा-न्ति का आह्वान कर रहे हैं। रणचंडी के नृत्य के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, वे सभी चीजें जमा की जा रही थीं। कोई आयोजन बाकी नहीं छोड़ा जाता था। यह प्रयत्न जान बूझ कर भी किया जाता था और अनजान में भी आप से आप होता चलता था। भावी भीषण नाश के लिए केवल मनुष्य का हाथ ही यथेष्ट बलवान् नहीं था, इसलिए दैवी हाथ भी उसमें सहायक हो रहा था।

संसार में फिर शान्ति विराज रही है। पर यह उनकी भूल है। इस समय भी यूरोप से शान्ति उतनी ही दूर है, जितनी दूर वह महायुद्ध के आरम्भ होने के समय थी; बल्कि अनेक अंशों में उससे भी कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी है। यूरोपीय राष्ट्रों ने अभी युद्ध समाप्त नहीं किया है। अभी तो वे लड़ते लड़ते थककर जरा दम लेने के लिये बैठे हैं। पर बैठे भी खाली नहीं हैं। फिर से कट मरने की तैयारी कर रहे हैं। और आज यह तैयारी पहले से भी ज्यादा जोरों पर है। विजयी पक्ष ने अपने विजित शत्रुओं से कह दिया है कि जरा ठहरो; हम फिर से तुम्हारी खबर लेना चाहते हैं। उधर विजित पक्ष मन ही मन समझ रहा है कि तुम जाते कहाँ हो, इस बार तो मैं तुम्हें लड़ाई का मजा चखाऊँगा। गत महायुद्ध तो उस युद्ध-चक्र का केवल एक आरा है जो प्रकृति ने गोरी शक्ति का अन्त करने के लिये तैयार किया है। अब यदि आप इसे शान्ति समझना चाहें तो प्रसन्नता से समझ सकते हैं।

गोरी जाति अपनी आत्मा का तो उसी समय नाश कर चुकी थी जब उसने अपने पुराने उच्च आदर्शों को छोड़ कर अपनी सारी शक्ति ऐहिक पदार्थों और सुखों की प्राप्ति में ही लगा दी थी; और अब वह अपना शरीर भी नष्ट करने पर उतारू हुई थी। यूरोप की आधुनिक गोरी सभ्यता की जननी यूनानी सभ्यता ने भी एक बार इसी प्रकार आत्म-हत्या की थी। उस सभ्यता ने भरी जवानी में अपने हाथों अपने प्राण गँवाए थे और वह अपने अनेक ऐसे गुण, जिनसे संसार का बहुत कुछ कल्याण हो सकता था, अपने साथ ही लेती गई थी। अब संसार में उस सभ्यता का केवल नाम ही नाम रह गया है, और रह गई है उसकी

उत्तराधिकारिणी आधुनिक गोरी सभ्यता, जो कम से कम आत्म-हत्या के प्रयत्न में तो अवश्य ही अपनी जननी का पूरा पूरा अनुकरण कर रही है। वह क्या अनुकरण कर रही है, बलवती विधि उससे बलपूर्वक ऐसा करा रही है। वह विधि किसी को अपने शासन-क्षेत्र से बाहर नहीं निकलने देती। जन्म देना और नष्ट करना दोनों उसके अटल नियम हैं—परम निश्चित सिद्धांत हैं। उसके दंड से बचना असम्भव है।

यों तो गोरी सभ्यता के नाश का बीज बहुत पहले से ही बोया जा चुका था, पर बीसवीं शताब्दि के आरंभ में उसके अंकुर बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग गये थे। सारे यूरोप में घोर अशांति का साम्राज्य स्थापित हो गया था। सैनिकवाद का भाव पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। जिस प्रकार नाशक भूकम्प आने से पहले भूगर्भ में अन्दर ही अन्दर उथल-पुथल मचती है, ठीक उसी प्रकार की उथल-पुथल यूरोप में भी मच रही थी। पाशविक वृत्तियों से उत्तेजित होने के कारण मानवी बल ज्वालामुखी की भाँति फूटा पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था कि लोग शांति से नितांत विरक्त हो गये हैं और अपनी सारी शक्ति लगा कर अशान्ति का आह्वान कर रहे हैं। रणचंडी के नृत्य के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, वे सभी चीजें जमा की जा रही थीं। कोई आयोजन बाकी नहीं छोड़ा जाता था। यह प्रयत्न जान बूझ कर भी किया जाता था और अनजान में भी आप से आप होता चलता था। भावी भीषण नाश के लिए केवल मनुष्य का हाथ ही यथेष्ट बलवान् नहीं था, इसलिए दैवी हाथ भी उसमें सहायक हो रहा था।

कई वार युद्ध छिड़ने की नौवत आई, पर फिर भी युद्ध रह ही गया। इसका यह कारण नहीं था कि लोग युद्ध करना नहीं चाहते थे, बल्कि यह कारण था कि लोग युद्ध के लिए अच्छी तरह तैयार नहीं थे। सभी राष्ट्र जानते थे कि आगामी युद्ध कितना अधिक भीषण होगा और इसीलिए वे पूरी तैयारी करने के लिए युद्ध को टालते चलते थे। पर उस समय युद्ध छिड़ने के केवल दो ही प्रवल कारण थे। पहला कारण एक प्रकार से दैवी भी माना जा सकता है। वह कारण युद्ध का प्रत्यक्ष और तात्कालिक कारण था। कारण क्या था युद्ध का एक वहाना था। और ऐसा अच्छा वहाना फिर जल्दी हाथ नहीं आ सकता था। युद्ध छिड़ने का उस समय दूसरा कारण यह था कि जर्मनी यह समझता था कि चाहे इस समय हम युद्ध के लिए पूरे पूरे तैयार न हों, पर फिर भी औरों की अपेक्षा कहीं अधिक तैयार हैं।

पर और राष्ट्र भी युद्ध के लिए कुछ कम तैयार नहीं थे। और जो तैयार नहीं थे, उन्हें स्वयं प्रकृति तैयार कर रही थी। युद्ध आरंभ होने से महीनों पहले यूरोप के सभी देशों में घोर सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विप्लव हो रहे थे। इंगलैंड में आंतरिक झगड़े और बखेड़े हो रहे थे। रूस में घोर सामाजिक विप्लव की तैयारियाँ हो रही थीं। इटली में भारी अराजकता फैली हुई थी। तात्पर्य यह कि यूरोप के सभी देशों में खलबली मची हुई थी। यदि उस समय युद्ध न भी आरंभ होता, तो भी वहाँ आन्तरिक और गृह कलह के लिए बहुत अच्छा क्षेत्र तैयार

भीषण रूप धारण करता गया। इस युद्ध का इतिहास बतलाना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। हमें तो केवल उसके परिणाम पर ध्यान देना चाहिए। इस युद्ध के कारण होने वाला धन और जन का नाश कल्पनातीत है। और फिर इसके कारण संसार का जो कुछ नैतिक अथवा आध्यात्मिक पतन हुआ है, उसका तो कोई ठिकाना ही नहीं है।

सब से पहले धन-नाश को लीजिए। यदि सच पूछिए तो इस महायुद्ध के कारण जितने अधिक धन का नाश हुआ है, उसका कोई ठीक ठीक लेखा तैयार ही नहीं हो सकता। यह धन-नाश भी दो प्रकार का है। एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष तो वह है जो इस युद्ध में व्यय हुआ और अप्रत्यक्ष वह है जो इसके कारण लोगों के काम-धंधे में होने वाले हर्ज या हानि के कारण हुआ। बहुत से लोगों ने अनेक प्रकार से इस युद्ध में होने वाले व्यय का लेखा तैयार किया है। एक अमेरिकन विद्वान् के हिसाब से इस युद्ध में लगभग छः खरब रुपये तो प्रत्यक्ष रूप से खर्च हुए; और अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली हानि भी कम से कम इतनी तो अवश्य ही समझ लीजिए, चाहे वह हुई हो इससे कहीं अधिक। [illegible] को समझाने के लिए ही है।

[illegible] नहीं सकता।

[illegible] रा[illegible] के

[illegible] ठीक हिसाब

नागरिकों का नाश अनेक रूपों में हुआ था। बहुत से नागरिक तो जेता योद्धाओं के हाथों मारे गये थे। बहुत से केवल इस-लिये भूखों मर गये थे कि उनका भरण-पोषण करने वाला कोई नहीं था। और बहुत से लोग युद्ध के परिणाम-स्वरूप फैलने वाले रोगों के शिकार हुए थे। भारत में अभी हाल में जो इन-फ्लूएंजा इतने भीषण रूप से फैला था, वह भी एक प्रकार से इस महायुद्ध का ही प्रसाद था। अनुमान किया जाता है कि सारे संसार में इस प्रकार के रोगों से मरने वालों की संख्या करोड़ों के लगभग थी। साथ ही इसका एक और अंग है। युद्ध में सदा युवक और हृष्ट पुष्ट लोग ही सम्मिलित होते हैं। उनके मारे जाने से देशों की जनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार यदि यह देखा जाय कि युद्ध के कारण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कितनी जन-हानि हुई, तो फिर यही कहना पड़ता है कि उसका ठीक ठीक हिसाब लगाना नितान्त असम्भव है। यहाँ तक कि उसकी पूरी पूरी कल्पना भी नहीं हो सकती। पर फिर भी साधारणतः यह कहा जा सकता है कि युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से जितने आदमी मारे गये या घायल हुए, उन से छः गुने अठगुने आदमी अवश्य ही अप्रत्यक्ष रूप से भी नष्ट हुए हों।

गत महायुद्ध के कारण यूरोपीय देशों की जन-संख्या की कितनी भीषण हानि हुई है, इसका अनुमान एक फ्रांस के उदाहरण से ही किया जा सकता है। सन १९१४ में फ्रांस की आबादी चार करोड़ से भी कुछ कम ही थी। इतनी थोड़ी आबादी में से प्रायः ८० लाख आदमी युद्ध के लिए सेना में भरती किये गए थे। इनमें से लगभग १४ लाख आदमी तो युद्ध-क्षेत्र में मारे गए

प्रायः ३० लाख आदमी घायल हुए और चार लाख से अधिक
हुए। जो लोग घायल हुए थे, उनमें से आठ नौ लाख आ
ऐसे थे जो सदा के लिए बेकाम हो गये। इस प्रकार फ्रांस
आबादी में से प्रायः बीस लाख आदमी कम हो गये। वे य
सदा के लिए बेकाम हो गए या जान से ही गये। और
बीस लाख आदमी कैसे थे ? फ्रान्स में सब से अच्छे हृष्ट
और कमाने वाले थे।

नागरिकों की जन-संख्या मे भी कम हानि नहीं हुई। प्र
के जिन उत्तरी प्रदेशों पर जर्मनी ने अधिकार कर लिया
उनमें जितने नागरिक निहत हुए थे, उनकी बात तो एक त
रही। सन् १९१४ में वहाँ जितने बालकों ने जन्म लिया
उनकी अपेक्षा मरने वालों की संख्या पचास हजार अधिक थ
इसके उपरांत लगातार चार वर्षों तक जन्म की अपेक्षा मृ
संख्या औसत तीन लाख अधिक थी। यह अधिकता वय
पुरुषों के मरने के कारण नहीं हुई थी। बल्कि जनने में क
होने के कारण हुई थी। सन् १९१३ में फ्रान्स में प्रायः छः ला
बालकों ने जन्म लिया था। पर सन् १९१६ में वहाँ केवल ३,५१,००
बालकों ने और १९१७ में ३,४३,००० बालकों ने ही जन्म लि
था। यदि इस हिसाब से देखा जाय तो सन १९१३ से १९१
तक फ्रान्स की जन-संख्या में लगभग तीस लाख की कमी हो गई
और यह संख्या उसकी समस्त जन-संख्या की लगभग दशमांश
होती है।

यह बात नहीं है कि यह हानि केवल फ्रान्स को ही हुई थी।
यह तो हाँडी में का एक चावल है। ठीक यही दशा यूरोप के प्रायः

सभी देशों की हुई थी। इस महायुद्ध के कारण होनेवाली हानि अपरिमित और परम भीषण थी। यह गोरी जाति की आत्म-हत्या नहीं थी तो और क्या था। यह यूरोप के नागरिकों का एक भीषण गृह-युद्ध था जिसमें वे सब आपस में ही कट मरे थे। सारे यूरोप में जितने बलवान् और बुद्धिमान थे, वे सब जबरदस्ती पकड़-पकड़ कर लाये जाते थे और युद्ध-क्षेत्र मे रण-चंडी के आगे बलि चढ़ाए जाते थे। और यदि कोई पूछे कि थोड़े से राजनीतिक अधिकारियों को इस प्रकार जबरदस्ती अपने देश और देशवासियों का बल्कि यो कहना चाहिए कि मानव-जाति का नाश करने का क्या अधिकार था, तो उसका कोई समुचित उत्तर हो ही नहीं सकता। यदि हम बात को जाने भी दे और केवल यही पूछे कि इस भीषण नर-हत्या से क्या लाभ हुआ, तो उसका भी कोई उत्तर नहीं हो सकता। यदि इन बातों का कोई उत्तर हो सकता है तो वह केवल यही कि बहुत दिनों से मनुष्य मे कटने-मरने की जो पाशविक वृत्ति चली आती है, वही अपना प्रभाव दिखला रही थी। जिस प्रकार कुत्ते रोटी के टुकडे अथवा हड्डी के लिए आपस मे लड़ते हैं, उसी प्रकार युरोप वाले भी एक दूसरे के अधिकृत देशों पर अपना अधिकार करने के लिए लड़ मर रहे थे। बल्कि एक बात में तो वे इन कुत्तों आदि से भी गये-बीते थे; क्योंकि कुत्ते तो केवल स्वयं ही लड़ते भिड़ते हैं, पर समाज मे सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाले ये राजनीतिज्ञ आप तो आराम से कुरसियों पर बैठे रहा करते थे, और तरह तरह के तर्क निकाल कर अपने देश-वासियों को आपस में कटने मरने पर उद्यत कर रहे थे।

अगस्त १९१४ में ही कुछ बुद्धिमानों ने यह बात अच्छी तरह

समझ ली थी कि यह युद्ध बहुत ही भीषण और नाशक यह ठीक है कि युद्ध आरम्भ होने के समय अनेक स्थानों प साधारण एकत्र हो कर युद्ध छिड़ने पर अनेक प्रकार से प्रसन्नता प्रकट किया करते थे, पर यह प्रसन्नता वास्तविक थी। वास्तव में बहुत दिनों से उनका ऐसा संस्कार ही किय था कि वे युद्ध के नाम पर प्रसन्नता प्रकट करें। उन्हें साम्र वाद का यह नाशक पाठ पढ़ाया गया था, जिसने उन्हें अन्या विवेक-हीन बना दिया था। उनको बड़ी-बड़ी अशाएँ दिलाई थीं। भावी वैभव और सुख-समृद्धि के सब्ज बाग दि जाते थे और उन्हें ले जाकर युद्ध क्षेत्र में बलि चढ़ाया ज था। और उससे भी बढ़कर विलक्षण बात यह थी कि उस ब दान का व्यय भी एक नहीं अनेक प्रकार से उन्हीं से वसूल कि जाता था। उस समय हेरल्ड वेग्बी नामक एक अंग्रेज लेखक कहा था "याद रखो, इस समय तुम जिन लोगों को हजारों न लाखों की संख्या में कटने मरने के लिए जबरदस्ती युद्ध-क्षेत्र भेज रहे हो, वे ही हमारे समाज के सर्व श्रेष्ठ अंग हैं। इस यु में हम ऐसे लोगों का नाश करने जा रहे हैं जिनमें से बहुत से आगे चलकर दस-बीस बरस में मानव-जाति और समाज के दुःखों को दूर करने के अनेक अच्छे-अच्छे उपाय निकाल सकते हैं और अनेक प्रकार से संसार का कल्याण कर सकते हैं। हम इन आत्माओं का सदा के लिए अन्त करने जा रहे हैं।" इन वेग्बी महाशय की तरह और भी अनेक विद्वान् थे जो समय-समय पर इसी प्रकार अपने राष्ट्रों, राजनीतिज्ञों और देश-वासियों को इसी प्रकार की चेतावनी दिया करते थे। पर आप जानते है कि इन

वृद्धि की दृष्टि से कदाचित् यही सब से अधिक बुरी और दुःख पूर्ण बात है।

"इस समय १९ और २५ वर्ष के बीच की अवस्था के सभी स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट युवक सेना मे काम कर रहे हैं। जबरदस्ती भरती की हुई यूरोप की जितनी सेनाएँ हैं, वे सब उमर के हिसाब से अलग अलग बाँटी हुई हैं। और इनमें से जिन सेनाओं में सब से कम उमर के सैनिक हैं, उन्हीं सेनाओं को सब से आगे बढ़ कर प्रत्यक्ष युद्ध करना पड़ता है जिन लोगों की अवस्था तीस और चालीस वर्ष के मध्य में होती है, वे बहुधा सेनाओं और नगरों आदि की रक्षा के काम पर नियुक्त किये जाते हैं अथवा उनसे युद्ध-सामग्री पहुंचाने का काम लिया जाता है। आगे चल कर जब इस युद्ध मे काम आने वाले वीरों की संख्या आदि का हिसाब लगाया जायगा, तब पता चलेगा कि मारे जाने वालों में से अधिकांश तीस वर्ष की अवस्था से कम के ही थे और उनमें भी बहुत से लोग पच्चीस वर्ष से भी कम अवस्था के थे। इसका अर्थ यह है कि साधारणतः चालीस या पैंतालीस वर्ष की अवस्था के लोग जितनी संतान उत्पन्न करके अपने देश की भेंट कर सकते थे, उतनी तो वे कर चुके; और पच्चीस वर्ष से कम अवस्था के लोग एक भी सन्तान न उत्पन्न करने पाए।"

मि० इरविन का ध्यान इस बात पर था कि युद्ध के कारण कितने युवक और सशक्त पुरुषों का नाश हो रहा है। फिशर नामक एक प्रसिद्ध विद्वान ने इस बात पर विचार किया था कि युद्ध में कितने विद्वानों और बुद्धिमानों का नाश होता है। युद्ध में निहत होने वालों की जो सूचियां समय समय पर प्रकाशित हुआ

पीछा छुड़ाना चाहते थे। पर अब तो वही बात हो गई थी बाबा जी तो कमली को छोड़ना चाहते हैं, पर अब कमली बाबा जी को नहीं छोड़ती थी।

आगे चलकर मि० इरविन यह बतलाते हैं कि इस बलिदान के लिए किस प्रकार समाज के अच्छे से अच्छे मनुष्य चुने जाते थे और तैयार करके लड़ाई पर भेजे जाते थे। वे कहते हैं "यह एक प्रकार से मान. हुई बात है कि जो लोग सबसे अधिक वीर होते हैं, वे वही लोग होते हैं जो शारीरिक और आत्मिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। अब मशीनों और कलों के द्वारा होने वाले इस युद्ध में आक्रमण तथा दूसरे बड़े-बड़े साहसपूर्ण कार्य करने के लिए वही लोग चुने जाते हैं जो सब से अधिक वीर होते हैं। और इसका परिणाम यह होता है कि वीरों में से ही सब से अधिक जन-हानि होती है। फ्रान्स और जर्मनी आदि देशों में जहाँ जबरदस्ती और कानून के बल से सैनिक भरती किये जाते हैं, सैनिक चुनने की ऐसी परिपाटी है, जिसके अनुसार केवल बलवान् ही मरने के लिए भेजे जाते हैं और दुर्बल लोग देश में रह जाते हैं। जिनकी ऊँचाई कम होती है, जिनके रग-पुट्ठे मजबूत नहीं होते, जिनका दिमाग़ ठीक ठीक काम नहीं करता अथवा जो और किसी प्रकार के वंशानुक्रमिक रोगों से पीड़ित होते हैं, वही लोग देश में सन्तान-वृद्धि का काम करने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। और इनके सिवा बाकी जितने आदमी बचते हैं, वे देश के नाम पर मरने के लिए भेज दिए जाते हैं। और फिर सब से अधिक हानि ऐसे ही युवकों की होती है, जिन्होंने अभी तक कोई सन्तान ही नहीं उत्पन्न की होती। और जातीय

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर जो बातें कही गई हैं, वे केवल योद्धाओं के ही सम्बन्ध में हैं। हम अभी कह चुके हैं कि युद्ध में जितने सैनिक मारे गये थे, उनकी अपेक्षा पांच गुने या छः गुने नागरिक भी मरे थे। इसलिए मानव-जाति पर युद्ध का निर्बलता उत्पन्न करने वाला जो प्रभाव पड़ा है, उसका कभी पूरा पूरा अनुमान ही नहीं हो सकता। युद्ध का जो बल-नाशक परिणाम होता है, उसमें केवल दरिद्रता और रोग ही सम्मिलित नहीं है, बल्कि स्नायु आदि पर होने वाला आघात तथा मानसिक शक्ति को नष्ट करने वाली अनेक दूसरी बातें हैं। प्रसिद्ध विद्वान हैवलॉक एलिस का मत है कि मनुष्यों पर चलने वाले प्रत्येक घातक गोली बराबर दरिद्रता और कष्टों की वृद्धि करती जाती है। यदि युद्ध-क्षेत्र में एक आदमी मारा जायगा, तो उसके कारण देश में पाँच आदमी दुखी या दरिद्र होंगे। अथवा किसी और ऐसी विपत्ति में पड़ेंगे जो किसी न किसी प्रकार से जीवन के लिए घातक होगी।

युद्ध का सब से अधिक भीषण और नाशक प्रभाव बालकों पर पड़ता है। यदि सच पूछिए तो युद्ध-क्षेत्र में भी और देश में भी, घर में भी और बाहर भी, सब से अधिक बालकों का ही बलिदान होता है। नागरिक समुदाय की सब से बड़ी हानि छोटी अवस्था में बालकों के मरने और जन्म-संख्या घटने से ही होती है। इन अबोध शिशुओं का नाश दोहरा होता है। इससे लाखों तो प्रस्तुत बालक मरते हैं और लाखों भावी सन्तान का नाश होता है। प्रायः देखा गया है कि युद्ध के समय अच्छी दशा में रहने वाली स्त्रियों की जनन-शक्ति भी कम होती जाती है। इससे यह सिद्ध होता है

करती थीं, उन पर भली भांति विचार करने के उपरान्त उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला था कि इन सूचियों में प्रायः ऐसे ही लोगों के नाम भरे होते हैं, जो यदि युद्ध में काम न आते तो अवश्य ही मानव-जीवन और मानव-जाति का बहुत बड़ा उपकार करते। यदि सरकार को अपनी आर्थिक दशा ठीक रखने का ध्यान होता, तो वह कुछ ऐसे उपाय अवश्य करती जिनसे वे नव-युवक युद्ध की विपत्तियों से बचे रहते, जिनकी श्रेष्ठ मानसिक शक्तियों पर हमारी भावी उन्नति निर्भर थी। पर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई और इसलिए अब इस बात का अनुमान करना असम्भव है कि इतने अधिक 'नवयुवक बुद्धिमानों के नष्ट हो जाने से संसार की कितनी अधिक हानि होगी।"

अमेरिका के प्राणि-शास्त्रवेत्ता मि० एस० के० हम्फे ने भी इस बात का भली भांति अनुमान कर लिया था कि इस महायुद्ध से बुद्धि-बल का कितना अधिक नाश होगा। उन्होंने लिखा था—"यह कहने में कोई हानि नहीं है कि इस युद्ध में जो करोड़ों आदमी मारे जायँगे, उनमें कम से कम दस लाख आदमी अवश्य ऐसे होंगे, जो बहुत अधिक उच्च और श्रेष्ठ कुलों के होंगे—जिसमें उच्च कोटि का मानसिक बल वंशानुक्रमिक होगा। और ऐसे ही लोगों पर प्रत्येक जाति का भविष्य निर्भर करता है। यह ख्याल करना गलत है कि आगे चल कर दो चार पीढ़ियों में बचे हुए लोगों से अधिक सन्तानें उत्पन्न करा के वंशानुक्रमिक गुणों की यह घटी पूरी कर ली जायगी, जो लोग गये, वे तो सदा के लिए गये समझिएगा। अब जो लोग बचे हैं, वे अपनी ही तरह कम महत्व की सन्तानें ही उत्पन्न करेंगे। इस हानि की भीषणता अकथनीय है।"

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर जो बातें कही गई हैं, वे केवल योद्धाओं के ही सम्बन्ध में हैं। हम अभी कह चुके हैं कि युद्ध में जितने सैनिक मारे गये थे, उनकी अपेक्षा पांच गुने या छः गुने नागरिक भी मरे थे। इसलिए मानव-जाति पर युद्ध का निर्बलता उत्पन्न करने वाला जो प्रभाव पड़ा है, उसका कभी पूरा पूरा अनुमान ही नहीं हो सकता। युद्ध का जो बल-नाशक परिणाम होता है, उसमें केवल दरिद्रता और रोग ही सम्मिलित नहीं है, बल्कि स्नायु आदि पर होने वाला आघात तथा मानसिक शक्ति को नष्ट करने वाली अनेक दूसरी बातें हैं। प्रसिद्ध विद्वान् हैवलॉक एलिस का मत है कि मनुष्यों पर चलने वाले प्रत्येक घातक गोली बराबर दरिद्रता और कष्टों की वृद्धि करती जाती है। यदि युद्ध-क्षेत्र में एक आदमी मारा जायगा, तो उसके कारण देश में पाँच आदमी दुखी या दरिद्र होंगे। अथवा किसी और ऐसी विपत्ति में पड़ेंगे जो किसी न किसी प्रकार से जीवन के लिए घातक होगी।

युद्ध का सब से अधिक भीषण और नाशक प्रभाव बालकों

कि युद्ध का मन पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। और प्रभाव यहाँ तक बुरा होता है कि इससे स्त्रियों में किसी प्रकार स्थायी ही सही पर पागलपन अवश्य आ जाता है। प्रो० नामक एक इटालियन विद्वान ने इस बात को बहुत दूर तक की है। उनका मत है कि युद्ध में सन्तान उत्पन्न करने वाले युवकों का जो नाश होता है, वह तो होता ही है, पर सारी जाति सहसा बहुत ही बुरी अवस्थाओं में भी पहुँच जाती है। दुरवस्थाओं के कारण मनुष्य के मस्तिष्क, आत्मा और वि आदि पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि उनमें बहुत कुछ वि आ जाता है। इससे मनुष्य में दुर्बलता, चिन्ता, शोक और प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं और इन कष्टों को युद्ध-काल आर्थिक कठिनाइयाँ और भी भीषण बना देती हैं। और इन बातों का राष्ट्रों की आर्थिक अवस्था पर बहुत ही हानिकारक प्र पड़ता है। एक और विद्वान् का मत है कि यूरोप में इस स अधेड़ और बुड्ढे तो अपेक्षा कृत बहुत अधिक हैं, पर युवकों नितांत अभाव है। हम अधेड़ लोग शान्ति में रह कर वृद्ध जायँगे; पर हमारा जातीय भविष्य बहुत ही बुरा हो जायगा। श्रे गुणों वाले लोग तो बहुत कम उत्पन्न होंगे और रद्दी या फाल आदमियों की संख्या बराबर बढ़ती जायगी।

महायुद्ध के उपरांत यूरोप के प्रायः सभी देशों में करों क बहुत अधिक वृद्धि हो गई है और ये कर प्रायः ऊँची श्रेणी के लोगों से ही लिये जाते हैं। पाँच छः वर्ष पहले लन्दन के Saturday Review नामक एक पत्र में एक लेख निकला था, जिसमें यह बतलाया गया गया था कि युद्ध के कारण करों में जो वृद्धि

हुई है, उसके परिणाम स्वरूप जन्म-संख्या कैसे और कहाँ तक कम होती है। उस लेख का आशय यह था कि आज तक जिस आदमी को दो हजार रुपये वार्षिक आय होती है, उससे छः सौ रुपये कर के रूप में वसूल कर लिये जाते हैं। पर अब रुपये का मूल्य बहुत घट गया है; इसलिए बाकी बचे हुए चौदह सौ रुपयों को क्रय-शक्ति उतनी ही रह गई है, जितनी युद्ध से पूर्व सात सौ रुपयों की थी। इसलिए आज कल जिस आदमी की वार्षिक आमदनी दो हजार रुपये से कम होगी, वह जल्दी विवाह करने का विचार ही न करेगा। यह तो हुई उच्च और मध्यम श्रेणी के लोगों की बात। अब जरा दरिद्रों या निम्न कोटि के लोगों की दशा का विचार कीजिए। जीवन के आरम्भ में जिस आदमी के पास कुछ भी न होगा, वह उन्नति करते करते जब दस हजार रुपये वार्षिक कमाने के योग्य होगा, तब तक कदाचित वह अवस्था पार कर जायगा जिसमें लोग विवाह करते अथवा कर सकते हैं। इससे यह सिद्ध है कि देश में साधारणतः ऐसे मजदूरी पेशा लोगों की सन्तान ही बढ़ेगी, जिनका मानसिक बल बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का होगा।

तात्पर्य यह कि इस समय सभी दृष्टियों से यूरोप वाले बहुत ही दुरवस्था में पड़े हुए हैं। सब से पहले वहाँ की राजनीतिक परिस्थिति को ही लीजिए जो परम असन्तोषजनक है। वार्सेल्स की शांति महासभा में जो राजनीतिक व्यवस्थाएँ हुई हैं, वे न तो दृढ़ हैं और न स्थायी। असन्तोष, अशांति, अराजकता और वैमनस्य आदि का अब भी वहाँ वैसा ही राज्य है, जैसा पहले था; बल्कि अनेक अंशों में उससे भी अधिक है। सब के मन में प्रति-

कि युद्ध का मन पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अ
प्रभाव यहाँ तक बुरा होता है कि इससे स्त्रियों में किसी
स्थायी ही सही पर बाँझपन अवश्य आ जाता है। प्रो०
नामक एक इटालियन विद्वान् ने इस बात की बहुत दूर तक
की है। उनका मत है कि युद्ध में सन्तान उत्पन्न करने वाले
युवकों का जो नाश होता है, वह तो होता ही है, पर साथ
जाति सहसा बहुत ही बुरी अवस्थाओं में भी पहुंच जाती है
दुरवस्थाओं के कारण मनुष्य के मस्तिष्क, आत्मा और वि
आदि पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि उनमें बहुत कुछ-वि
आ जाता है। इससे मनुष्य में दुर्बलता, चिन्ता, शोक और अ
प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं और इन कष्टों को युद्ध-काल
आर्थिक कठिनाइयाँ और भी भीषण बना देती हैं। और इन स
बातों का राष्ट्रों की आर्थिक अवस्था पर बहुत ही हानिकारक प्रभा
पड़ता है। एक और विद्वान् का मत है कि यूरोप में इस सम
अधेड़ और बुड्ढे तो अपेक्षा कृत बहुत अधिक हैं, पर युवकों क
नितांत अभाव है। हम अधेड़ लोग शान्ति में रह कर वृद्ध हो
जायँगे; पर हमारा जातीय भविष्य ...

हो गये। अब इस मशीन को फिर से तैयार करके काम चलाने के योग्य बनाने में समय लगेगा। यही कारण है कि इधर कुछ दिनों से यूरोप के प्रायः सभी देशों में मँहगी बहुत बढ़ गई है। न तो लोगों को काम मिलता है और न खाने को भोजन। इधर बीच बीच में भीतरी हालत बहुत ही खराब हो गई थी। अभी तक निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह अवस्था कब तक सुधरेगी। बहुत सम्भव है कि किसी दिन यूरोप की यह भीतरी दुर्दशा ही उसका बहुत कुछ अनिष्ट कर बैठे।

मि० हर्बर्ट हूवर नामक एक अर्थ-शास्त्रज्ञ कुछ दिनों तक यूरोप के मित्र-राष्ट्रों के खाद्य पदार्थों के व्यवस्थापक थे। उन्होंने यूरोप की परिस्थिति पर भली भाँति विचार करके सन् १९१९ में एक बार कहा था "यूरोप के निर्वाह के लिए जिन पदार्थों की आवश्यकता है, इस समय वे सब पदार्थ जितनी कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं, उतनी कम मात्रा में आज तक कभी नहीं पहुँचे थे। इस समय सारे यूरोप में लगभग डेढ़ करोड़ परिवार बिलकुल बेकार पड़े हुए हैं और उन्हें अपने अपने देश की सरकार की ओर से किसी न किसी रूप में बेकारी का भत्ता मिलता है। यूरोप में उत्पन्न होने वाले माल से जितने आदमियों का निर्वाह हो सकता है, उनकी अपेक्षा इस समय यूरोप में प्रायः दस करोड़ आदमी अधिक हैं। बाहर से तो कच्चा माल आना कम हो ही गया है, साथ ही स्वयं यूरोप में भी कच्चे माल की उपज बहुत कम हो गई है। पहले यूरोप वाले अपनी आवश्यकता की बहुत सी चीजें आप ही तैयार कर लिया करते थे, पर अब उनमें से बहुत सी चीजें उन्हें विदेशों से मँगानी पड़ती हैं। युद्ध जिस समय

अनुमान किया गया था, उस समय भी यूरोप में कुछ अधिक ही कच्चा माल तैयार होता था। पर अब उस समय से भी कम कच्चा माल उपज रहा है। वह इतना कम है कि कभी उससे पूरा पूरा निर्वाह हो ही नहीं सकता। यदि इस समय उपज जल्दी जल्दी बढ़ाई न जायगी तो शीघ्र ही सारे यूरोप में ऐसी भीषण राजनीतिक और और आर्थिक हलचल मचेगी, कि जिससे कल्पनातीत जन-हानि होगी।

यद्यपि मि० हर्बर्ट हूवर की यह भविष्यद्वाणी आगे चलकर पूरी पूरी ठीक नहीं उतरी, और यूरोप के राजनीतिज्ञों ने यथा शक्ति उसे बहुत कुछ सँभाल लिया, तो भी यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध होती है कि महायुद्ध के उपरान्त यूरोप की परिस्थिति बहुत अधिक भीषण हो गई थी और अब तक भी उसमें बहुत ही थोड़ा सुधार हुआ है। हमारा उद्देश्य तो केवल यह दिखलाना है कि यूरोप पर महायुद्ध का कितना भीषण परिणाम हुआ और यह उद्देश्य इतने से ही सिद्ध हो जाता है। महायुद्ध से यूरोप की बहुत अधिक हानियाँ हुई हैं और उनकी सहज में पूर्ति नहीं हो सकती। बहुत से सशक्तों और नवयुवकों के मारे जाने से उसकी दशा और भी खराब हो गई है और उसका भीषण परिणाम उसे आगे चलकर और भी अधिक भोगना पड़ेगा।

बहुत अधिक नैतिक पतन हो चुका है। दूसरे, इस समय इतनी भीषण विपत्ति पड़ने पर तो वे उससे अपना उद्धार करने के लिए न जाने कितनी नई अनीतियाँ करने लगेंगे; और जिस प्रकार हो सकेगा, अपनी क्षति की पूर्त्ति करना चाहेंगे। यह नैतिक पतन नये सिरे से आरम्भ भी हो गया है। व्यापार आदि में यूरोपवाले तरह तरह की बेईमानियाँ करने लग गये हैं। जरमनी वाले अपना माल बेचने के लिए उस पर "इंगलैण्ड मे बना" की छाप लगाते हैं और मैनचेस्टर वाले ऐसे मोटे कपड़े तैयार करते हैं जो देखने में भारत के बने जान पड़ते हो। अन्दर ही अन्दर इसी प्रकार की सैंकड़ो, हजारों बातें होने लग गई हैं जिनका सर्व-साधारण को जल्दी पता ही नहीं लग सकता। एक ओर साम्राज्य-वृद्धि का भूत फिर से लोगों पर सवार होने लगा है, तो दूसरी ओर बोलशेविज्म के नाम पर अनेक प्रकार के अनर्थ होने लगे हैं। तात्पर्य यह कि जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसी विलक्षण हलचल मच गई है कि बस ईश्वर ही रक्षक है।

अनेक विद्वानों का यह मत है और वह बहुत ठीक है कि युद्ध-काल में युद्ध के कारण जो हानियाँ होती हैं, वे उन हानियों के मुकाबले में कुछ भी नहीं होतीं जो युद्ध के उपरान्त होने लगती हैं। युद्ध की सारी भीषणता तो उसके समाप्त हो जाने पर ही अपनी विकराल मूर्त्ति दिखलाना आरम्भ करती है। युद्ध के पश्चात् का काल ही सर्व साधारण के लिए सबसे अधिक भीषण होता है। युद्ध के समय तो किसी को कुछ देखने-सुनने का अवसर ही नहीं मिलता। और यदि अवसर मिले भी तो कई बातें ऐसी होती हैं, जिनके कारण वह भीषणता किसी को जल्दी दिखलाई

ही नहीं देतीं। युद्ध के उपरान्त एक और बात होती है। वह यह कि लोगों को अपनी क्षति-पूर्त्ति के लिए उद्योग करने के सिवा और कोई अच्छा काम करने का अवसर ही नहीं मिलता। और यदि कुछ करने का अवसर मिल भी गया, तो बेईमानी, दगाबाजी, चालाकी और छल-कपट अपना राज्य जमाने लगते हैं। यही सब युद्ध के भीषण परिणाम हैं जो इस समय यूरोप भोग रहा है और जो अभी आगे चलकर और बहुत दिनों तक उसे भोगने पड़ेंगे।

महायुद्ध की नाशकता का वर्णन करते हुए लन्दन के एक पत्र में लिखा गया था कि जिन बातों की रक्षा करने के लिए हमारे असंख्य अच्छे अच्छे सिपाही कट मरे, स्वयं महायुद्ध ने ही उन सब अच्छी अच्छी बातों का नाश कर दिया। इस युद्ध ने जितने प्रश्नों का निराकरण किया, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक नये प्रश्न उपस्थित कर दिये। युद्ध के कारण इङ्गलैण्ड का जितना अधिक नाश हुआ है, उसकी रक्षा के लिए हम एक दरजन बड़े बड़े गिरजे बलि के रूप में दे सकते थे। यदि हो सकता तो हम बहुत प्रसन्नता से अपने दस अच्छे से अच्छे गिरजे बदले में हिंदनबर्ग के तोपखाने से उड़ाए जाने के लिए दे सकते थे। इसमें सन्देह नहीं कि वेस्ट मिनिस्टर एव्बे दे देना इस बात से कहीं अच्छा है कि फिर हमारे पास इस योग्य आदमी ही न रह जायं जो वहां गाड़े जा सकें!

महायुद्ध के उपरान्त से यूरोप सचमुच बहुत ही भीषण और दरिद्र परिस्थिति में से गुजर रहा है। उसकी इस समय की अवस्था न तो सन्तोषजनक ही है और न उत्साहवर्धक ही। लोगों

का सारा उत्साह, सारा जोश ठंडा पड़ गया है। उनकी दशा मुरदों की सी हो रही है। बड़े बड़े सेनापति निकल गये और बड़े बड़े राज्य उलट गये। युद्ध समाप्त होते ही अपनी अपनी भीषण हानि देखकर सब लोग ठंडे हो गये। यूरोप परम दुर्बल और परम शिथिल हो गया है। उसे अपना भविष्य देखकर भय लगता है। पर तमाशा यह है कि अब भी उन्हीं विचारों, उन सिद्धान्तो मे निरन्तर वृद्धि ही होती जाती है जिनके कारण गत महायुद्ध हुआ था। इससे तो यही धोखा होने लगता है कि कदाचित् यूरोप वाले यह समझते हैं कि हम और हमारी सभ्यता दोनों अमर हैं। अभी तक यह बात उनकी समझ में नहीं आई कि संसार की सभी चीजें समय पाकर नष्ट हो जाती हैं। काल सभी चीजा को अपने उदर मे रख लेता है। कोई चीज इतनी बड़ी नहीं हो सकती जो उसके उदर मे न समा सके।

यूरोप की सैनिकता बहुत अधिक थक जाने के कारण थोड़ी देर के लिए बैठ गई है। उसकी आर्थिक कठिनाइयाँ चरम सीमा को पहुँच चुकी हैं, और उसकी मानसिक दुरवस्था का तो कहीं ठिकाना ही नहीं है। उसकी सभ्यता के सभी अंग बुरी तरह से क्षत-विक्षत हो चुके हैं। शिल्प कला का नाश हो चुका है। सारा धन स्वाहा हो चुका है। सभी राष्ट्र दीवालिये हो रहे हैं। यह सब कुछ है, पर फिर भी अभी तक रण-चण्डी तृप्त नहीं हुई है। अभी तक लोग एक दूसरे से बदला लेने की चिन्ता में ही लगे हुए हैं। अभी तक साम्राज्यवाद का भूत उनका पीछा नहीं छोड़ रहा है। न जाने यह भूत इस गोरी सभ्यता का और उसके साथ साथ शेष संसार का अभी और कितना नाश करेगा! यह गोरी सभ्यता

अपनी सभ्यता और अपने प्रभुत्व का विस्तार करने तथा शेष सारे संसार का कल्याण करने के लिए अवतार धारण करके आये हैं। यह ठीक है कि समय समय पर उन लोगों में परस्पर प्रतिस्पर्धा भी होती थी और राज्य-विस्तार के सम्बन्ध में उन लोगों में झगड़े भी होते थे। पर फिर भी जब वे लोग शान्त हो कर बैठते थे, तब यही समझते थे कि यदि हममें से किसी एक जाति के राज्य का विस्तार होगा, तो वह हमारी सभी जातियों के प्रभुत्व का विस्तार होगा। उस समय यूरोप के प्रायः सभी देशों के निवासी यह समझते थे कि हम सब लोग एक ही पूर्वजों की सन्तान हैं, और हम सब लोगों का एक ही प्रधान उद्देश्य था—सारे संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना। बहुत दिनों तक वे लोग इसी उद्देश्य की सिद्धि में लगे रहे और बहुत कुछ सफल-मनोरथ भी हुए। परन्तु जब उनकी उन्नति पराकाष्ठा को पहुँच गई और उसका अन्त समीप आने लगा, तब उनका यह एकतावाला भाव भी जाता रहा। और यही बहुत से अंशों में उनके नाश और पतन का भी कारण हुआ।

धीरे-धीरे यूरोप में राष्ट्रीय साम्राज्यवाद का प्रभुत्व स्थापित होने लगा। कुछ दूसरे राष्ट्रों को अपने साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार करते देखकर उनके प्रतिस्पर्धियों में ईर्ष्या का भाव जागृत होने लगा। वे अपने ही भाइयों की इतनी अधिक समृद्धि न देख सके और आप भी उन्हीं के समान अपने-अपने साम्राज्य के विस्तार की चिन्ता में लग गये। इस भाव ने बढ़ते-बढ़ते इतना विकराल रूप धारण किया कि यूरोप के सभी राष्ट्र यह चाहने लगे कि सारी पृथ्वी पर एक मात्र हमारा ही राज्य हो जाय, संसार

में और कोई दूसरा शासक हमें दिखलाई ही न पड़े। रूस का विस्तार तो पहले से ही बहुत अधिक था और वह उस देश की भौगोलिक अवस्था के कारण था। पीछे से इंग्लैण्ड और फ्रान्स ने भी अपने-अपने साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार कर लिया। विशेषतः इंग्लैण्ड का राज्य-विस्तार तो एक प्रकार से अभूत और अश्रुतपूर्व था। यह देखकर जर्मन और स्लाव आदि जातियों से न रहा गया। वे अपने-अपने साम्राज्य के विस्तार के उपाय सोचने, ढूँढने और निकालने लगीं।

उनका यह सोचना एक प्रकार से स्वाभाविक भी था। जब वे यह देखती थीं कि प्रायः और सभी जातियाँ दूर दूर तक अपने राज्य का विस्तार कर रही हैं और विपुल धन-सम्पत्ति की स्वामिनी हो रही हैं तब उनका भी इसी प्रकार राज्य-विस्तार के लिए उत्सुक होना बहुत ही स्वाभाविक था। उनके सामने जो उदाहरण उनके जाति-भाइयों ने ही उपस्थित किया था उसका वे अनुकरण क्यों न करतीं ? और फिर विशेषतः ऐसी दशा में जब कि स्वयं उनका देश उनका रहन-सहन और पालन-पोषण आदि के लिए उन्हें यथेष्ट नहीं दिखाई देता था। ऐसी दशा में युद्ध छेड़ने के लिए जर्मनी या आस्ट्रिया उतना ही अपराधी ठहराया जा सकता है, जितने अपराधी इङ्गलैण्ड, फ्रान्स या रूस हैं अथवा हो सकते हैं। इस विषय में यूरोप की किसी एक जाति का अपने आप को निर्दोष और दूसरी जाति को दोषी बतलाना कदापि न्याय-संगत नहीं हो सकता।

अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए इधर कुछ दिनों से रूस वाले यह कहने लग गए थे कि रूस का सम्बन्ध यूरोप की

अपनी सभ्यता और अपने प्रभुत्व का विस्तार करने तथा शेष सा संसार का कल्याण करने के लिए अवतार धारण करके आये हैं यह ठीक है कि समय समय पर उन लोगों में परस्पर प्रतिस्पर्धा भी होती थी और राज्य-विस्तार के सम्बन्ध में उन लोगों में झगड़े भी होते थे। पर फिर भी जब वे लोग शान्त हो कर बैठते थे, तब यही समझते थे कि यदि हममें से किसी एक जाति के राज्य का विस्तार होगा, तो वह हमारी सभी जातियों के प्रभुत्व का विस्तार होगा। उस समय यूरोप के प्रायः सभी देशों के निवासी यह समझते थे कि हम सब लोग एक ही पूर्वजों की सन्तान हैं, और हम सब लोगों का एक ही प्रधान उद्देश्य था—सारे संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना। बहुत दिनों तक वे लोग इसी उद्देश्य की सिद्धि में लगे रहे और बहुत कुछ सफल-मनोरथ भी हुए। परन्तु जब उनकी उन्नति पराकाष्ठा को पहुँच गई और उसका अन्त समीप आने लगा, तब उनका यह एकतावाला भाव भी जाता रहा। और यही बहुत से अंशों में उनके नाश और पतन का भी कारण हुआ।

धीरे-धीरे यूरोप में राष्ट्रीय साम्राज्यवाद का प्रभुत्व स्थापित होने लगा। कुछ दूसरे राष्ट्रों को अपने साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार करते देखकर उनके प्रतिस्पर्धियों से ईर्ष्या का भाव जागृत होने लगा। वे अपने ही भाइयों की इतनी अधिक समृद्धि न देख सके और आप भी उन्हींके समान अपने-अपने साम्राज्य के विस्तार की चिन्ता में लग गये। इस भाव ने बढ़ते-बढ़ते इतना विकराल रूप धारण किया कि यूरोप के सभी राष्ट्र यह चाहने लगे कि सारी पृथ्वी पर एक मात्र हमारा ही राज्य हो जाय, संसार

सकता है। अब लोगों की दृष्टि में गोरे पहले की भाँति न तो देवता ही रह गये हैं और न अजेय ही। अब सब लोगों पर उनका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो गया है।

सन १९०२ में अंगरेजों ने पहले पहल जापान के साथ संधि की थी। उस संधि का मुख्य उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार रूस के बढ़ते हुए साम्राज्य को रोका जाय। यदि उस समय की परिस्थिति और इंग्लैण्ड के हित पर ध्यान दिया जाय, तो उसने जिस मार्ग का अवलम्बन किया था वह अनिवार्य था और उसके लिए वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। पर इंगलैंड और जापान में फिर दोबारा जो संधि हुई, उसका परिणाम और प्रभाव बहुत दूर तक पहुँचता था। इस दूसरी संधि की निंदा एशिया के पूर्वीय देशों में रहने वाले प्रायः सभी गोरों ने, जिनमें कुछ अंगरेज भी सम्मिलित थे, एक स्वर से की थी।

एक ओर रूस को और दूसरी ओर इंग्लैंड को इस प्रकार स्वार्थ-साधन में रत देखकर जर्मनी ने भी हाथ-पैर फैलाये। उसे रूस और फ्रान्स से तो भय था ही, इसलिए वह अन्दर ही अन्दर ऐसी तैयारियाँ करने लगा जो अपने पड़ोसियों के साथ युद्ध छिड़ने पर काम आ सकें। इसके अतिरिक्त उसने तुर्कों के साथ भी जोड़-तोड़ लड़ाना आरम्भ किया और मध्य आफ्रिका में हबशियों का एक सैनिक साम्राज्य स्थापित करने के उपाय सोचने लगा। अब भला फ्रान्स क्यों पिछड़ रहने लगा था! ये सब रंग ढंग देख कर उसने यूरोप में होने वाले युद्ध की आशंका से लड़ने के लिए कृष्ण, धूसर और पीत वर्ण के लोगों को अपनी सेना में भरती करना आरम्भ किया। और अन्त में इटली ने ट्रिपोली पर

जिस समय रूस-जापान युद्ध के कैदी पहले पहल जापान के तट पर जहाज पर से उतारे गये थे, उस समय दृश्य बहुत ही विलक्षण और प्रभावोत्पादक था। जापान तथा एशिया के दूसरे देशों के निवासियों के लिए तो वह इसलिए विलक्षण और प्रभावोत्पादक था कि वह पहला ही अवसर था जब कि एशिया के एक छोटे से राष्ट्र ने युद्ध मे गोरे कैदियों को पकड़ा था और उन्हे अपने यहाँ ला कर रखा था। पर गोरो के लिए भी वह दृश्य कम अद्भुत और अभूतपूर्व नही था। यद्यपि यूरोप के अधिकांश राष्ट्रों के राजनीतिज्ञ और साम्राज्य-संचालक मन ही मन रूस की हार से प्रसन्न हो रहे थे, तथापि उस समय जो गोरे जापान के समुद्र तट पर उपस्थित थे, उनका हृदय उस समय करुणा और लज्जा से परिपूर्ण हो रहा था। एक फ्रान्सीसी लेखक पर उस दृश्य का बहुत ही करुणापूर्ण प्रभाव पड़ा था। उसने उस समय लिखा था "यह अपमान केवल रूसियों का ही नहीं था, बल्कि समस्त यूरोपियनो का था। गोरे लोग पराजित हो कर बन्दी हुए थे और पीत वर्ण के स्वतन्त्र और विजयी योद्धा उन्हे पकड़ लाये थे। इसका केवल यही अर्थ नहीं था कि जापान से रूस पराजित हुआ था, बल्कि इसमें एक और बहुत बड़ी और बिलकुल नई बात थी। यह एक संसार की दूसरे संसार पर होने वाली विजय थी। इधर शताब्दियों से एशिया जो अपमान सहता आ रहा था, यह उसी का एक बदला था। इसके कारण एशिया वालों में नई आशाओं का संचार हो रहा था। जो गोरे अब तक प्रायः बिना लड़े भिड़े ही सब जगह विजय प्राप्त कर लिया करते थे, उन्हीं गोरों पर एशिया वालों का यह पहला आघात था। उस समय वहाँ जापा-

आक्रमण करके मुसलमानों को भड़का दिया। इस प्रकार यूरोप के प्रायः सभी राष्ट्रों ने केवल अपने अपने हित पर ध्यान रखकर उसीकी साधन-सामग्री एकत्र करना आरम्भ कर दिया। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि महायुद्ध आरम्भ होने से पहले यूरोप के गोरे देशों में आपस में घोर वैमनस्य और द्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी। आज कल के सयाने और दूरदर्शी बनने वाले कुछ राजनीतिज्ञ उक्त गोरे राष्ट्रों के इन सब कृत्यों की निन्दा करते हैं और उन्हें मूर्ख ठहराते हैं। पर अब इन सब बातों से होता ही क्या है!

यह ठीक है कि उक्त राष्ट्रों के इन कृत्यों के लिए वहाँ के प्रधान मन्त्री तथा साम्राज्यवादी ही मुख्य रूप से उत्तरदायी थे। सर्व-साधारण तो इनके ऐसे कृत्यों की निन्दा ही करते थे। पूर्वी एशिया में रूस और इंग्लैण्ड ने जिस नीति का अवलम्बन किया था, उस पर प्रायः सभी स्थानों के गोरों ने बहुत अधिक आक्षेप किये थे। जर्मनी ने तुर्की के साथ जो मेल-जोल बढ़ाया था, उसकी निन्दा स्वयं कुछ जर्मनों ने भी की थी। और इटली ने त्रिपोली पर जो आक्रमण किया था, उस पर भी बहुत कड़ी टीका-टिप्पणी हुई थी। तात्पर्य यह कि उस समय भी यूरोप वाले यह बात अच्छी तरह समझते थे कि हमारे राष्ट्र बहुत ही बुरे मार्ग पर चल रहे हैं। पर उस समय वे लोग टीका-टिप्पणी, निन्दा और आक्षेप आदि करने के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते थे। जिन राजनीतिज्ञों और राज-कर्मचारियों के हाथ में राष्ट्रों की बाग-डोर थी, उन सब पर साम्राज्य-वृद्धि का ऐसा भूत सवार था कि उन्हें अपने तत्कालीन स्वार्थ को छोड़ कर दूर तक देखने का अवसर ही नहीं मिलता था।

परन्तु रूस की इस हार से भी यूरोपवालों की आँखें नहीं खुलीं। बात यह है कि मद की मात्रा जितनी ही अधिक होती है, होश में आना भी उतना ही कठिन होता है। यूरोपवाले भी बहुत अधिक मत्त हो रहे थे, इसलिए उनकी आँखें खुलने में भी अभी देर थी। इसी लिए यह अवस्था महायुद्ध के समय तक भी ज्यों की त्यों बनी रही। जब महायुद्ध आरम्भ हुआ, तब भी यूरोप के सब राष्ट्र आपस में उतने ही दूर थे, जितने रूस-जापान युद्ध के समय थे, बल्कि अनेक अंशों में उनकी पारस्परिक दूरी और भी बढ़ गई थी। और इसका कारण भी वही अधिकार-मद और स्वार्थ था। दोनों ही पक्ष प्राण-पण से एक दूसरे को नामशेष करने की कसम खा कर ही घर से निकले थे। अपने विपक्षी को कोई इस संसार में जीवित छोड़ना ही नहीं चाहता था। और फिर आखिर युद्ध में और होता ही क्या है। अपने शत्रु का पूरा-पूरा नाश करने के लिए ही तो युद्ध किया जाता है। मुसलमानों के आगमन से कुछ पहले और उनके आ चुकने के बहुत बाद तक भी भारतवासी और क्या किया करते थे? वहाँ गृह-कलह और पारस्परिक नाश ही तो उनका मुख्य कार्य रह गया था। ईश्वरीय सृष्टि की योजना ही कुछ ऐसी है कि जब कोई शक्ति बहुत बलवती हो जाती है और कोई दूसरी शक्ति उसका सामना करने के योग्य नहीं रह जाती, तब अन्त में वही शक्ति अपना भी नाश कर लेती है। यदि महायुद्ध के समय इन गोरों को इस बात का ध्यान होता कि हम लड़ भिड़ कर अपनी ही जाति और अपने ही वंश का नाश कर रहे हैं, तो फिर आखिर उनका नाश और किस प्रकार होता? इस युद्ध में केवल योद्धा और राजनीतिज्ञ ही अपने

नियों की वहाँ भीड़ लगी हुई थी, वह तो ये सब बातें समम
ही थी, साथ ही एशिया के दूसरे देशों के जो निवासी वहाँ उ
स्थित थे, वे भी एक प्रकार से अपनी विजय समझ रहे थे।
तो उस समय यह बात बिलकुल भूल ही गया था कि ये कै
रूसी हैं। मुझे केवल यही स्मरण रहा कि ये लोग गोरे हैं। सा
ही वहाँ और जो यूरोपियन उपस्थित थे, वे चाहे रूस के विरोध
ही क्यों न रहे हों, पर फिर भी उन्हें यह दृश्य देख कर बहुत
अधिक दुःख हुआ था। उन्हें भी विवश हो कर यह समझना
पड़ा था कि ये कैदी हमारी ही जाति और हमारे ही वर्ण के हैं।
हम सब लोगों के मन में यह विचार इतनी दृढ़ता से अंकित हुआ
था कि जब हम लोग कोबी जाने के लिए गाड़ी पर सवार होने
लगे, तब सब लोग एक साथ एक ही कमरे में जा बैठे।"

जो लोग अपने भाइयों की दुर्दशा देखकर फूले नहीं समाते,
उन्हें उक्त वर्णन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। साथ ही इस
बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इन गोरों को अपनी जाती-
यता का कितना अधिक ध्यान और कितना अधिक अभिमान रहता
है। उनके इस अभिमान का एक मात्र कारण यही था कि बहुत
दिनों से वे लोग अपने आपको अजेय समझते आ रहे थे। इन
गोरों का यह विश्वास सा हो गया था कि संसार के सारे प्रदेश
हमारे अधीन रहने के लिए और संसार की सारी जातियाँ हमारा
दासत्व करने के लिए बनाई गई हैं। ये लोग समझते थे कि हमारा
यह अधिकार, यह प्रभुत्व सदा अटल रूप से बना रहेगा, और
जब उनके इस विश्वास पर आघात लगा, जब उन्हें इसके विप-
रीत घटनाएँ [illegible]

आदमियों का नाश करने में नहीं लगे थे, बल्कि बड़े-बड़े वैज्ञ
और विद्वान भी अपनी ओर से उन्हें पूरा-पूरा प्रोत्साहन
थे और यथासाध्य ऐसी सामग्री प्रस्तुत करते थे जो उनकी
आत्म-हत्या में सहायक होती थी।

इस आत्मघातक युद्ध में कोई उपाय, कोई युक्ति कोई प्र
बाकी नहीं छोड़ा गया था। जिससे जो कुछ हो सकता था,
कर ही गुजरता था। कोई भूसर वर्णवालों को अपने पक्ष में मिल
रखने के लिए उन्हें तरह तरह के प्रलोभन देता था, तो कोई कृष्ण
वर्णवालों को चढ़ावा देकर अपना साथी बनाता था। यहाँ त
कि एक ही पक्ष के अनेक राष्ट्र आपस में भी अनेक प्रकार
छल-कपट किया करते थे। इधर किसी राष्ट्र से कुछ समझौता
किया जाता था, तो उधर दूसरे राष्ट्र से उसके बिलकुल विपरीत
निश्चय होता था। आज कुछ और कहा जाता था, तो कल कुछ
और ही राग अलापा जाता था। तात्पर्य यह कि महायुद्ध के पाँच
वर्षों में सारे संसार ने देख लिया कि इस गोरी सभ्यता का क्या स्वरूप
है। जिन लोगों को यह विश्वास था कि गोरे बहुत ही सच्चे, परोपकारी,
सभ्य और योग्य होते हैं, उनकी आँखों पर से इस युद्ध ने वह
पुराना परदा हटा दिया। जो लोग इनसे किसी प्रकार की आशा
रखते थे, वे महायुद्ध में इनका आचरण देखकर अपनी तकदीर
ठोंकने लगे। और जो लोग कुछ होशियार थे, वे इस अव-
सर से शिक्षा ग्रहण करने लगे और यदि हो सका तो लाभ
भी उठाने लगे। इन लाभ उठाने वालों में मुख्य जापान था
जिसने यूरोप वालों को आपस में कटते मरते देखकर चीन को
अपने वश में करने का अच्छा अवसर पाया था। यह

अवस्था देख कर कुछ यूरोपियन चिन्तित भी हुए थे। उन्होंने समझ लिया था कि इस युद्ध का यहीं अन्त नहीं है, चाहे कोई पक्ष विजयी हो, पर आगे चल कर यूरोप वालों को कई भीषण युद्धों में प्रवृत्त होना पड़ेगा। जो परास्त होगा, वह आगे चलकर अपना बदला चुकाने में कोई बात बाकी न छोड़ेगा। महायुद्धों का एक तांता सा लग जायगा जो अन्त में यूरोप का सर्वनाश करके छोड़ेगा। उस समय इन लोगों को साथ ही साथ यह भी चिन्ता हो रही थी कि इस समय अन्यान्य वर्णों की जो जातियाँ हमारे अधीन हैं, वे भी हमारी दुर्बलताओं से परिचित हो जायँगी और समय पाकर हमारे अधिकार से निकल जायँगी। इस प्रकार यूरोपियनों की सारी प्रधानता नष्ट हो जायगी। उन लोगों का यह सोचना भी बहुत अंशों में ठीक था। इस समय कुछ ऐसे ही लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। संसार पर से गोरों का आतङ्क बराबर नष्ट होता जाता है। उनकी चालबाजियाँ भी सब लोगों को मालूम हो गई हैं और उनका विश्वास भी जाता रहा है। उधर महायुद्ध में जो जातियाँ परास्त हुई थीं, वे जेता जातियों से बदला चुकाने के लिए दाँत पीस रही हैं। गोरों को इस समय घर और बाहर सभी जगह सर्वनाश सामने दिखाई दे रहा है। पर वह सर्वनाश इतना भीषण है कि यूरोप वाले आँख भर कर उसकी ओर अच्छी तरह देख भी नहीं सकते। अथवा यों कहना चाहिए कि उस भावी सर्वनाश ने ही उनको अन्धा बना दिया है। वे उसकी तरफ से जान बूझ कर आँखें मूँद लेते हैं और अपने नाशक मार्ग जोरों से बढ़ते चले जाते हैं।

गत यूरोपीय महायुद्ध ने गोरों के एक बहुत बड़े अभिमान

सेना में भरती किये जाते थे। आज आप को भारत में सैंकड़ों हज़ारों ऐसे सिक्ख, राजपूत, गोरखे और पठान आदि मिलेंगे जो अभिमानपूर्वक बहुत ही विस्तार के साथ यह बतलावेंगे कि फ्रान्स के युद्ध-क्षेत्र में पहुंचने से पहले और लौटने के समय फ्रान्सीसी महिलाओं ने उनकी कितनी आव-भगत की थी, उन्हें कितने प्रेम से मालाएँ पहनाई थीं और उन्हें कितनी आवभगत दिखला कर जल-पान कराया था।

जब जर्मनी ने तुर्कों को युद्ध-क्षेत्र में ला कर मित्र राष्ट्रों के सामने खड़ा किया था, तब मित्र राष्ट्रों के सैनिक और प्रजा वर्ग ने बहुत असन्तोष प्रकट किया था। और जब मित्र राष्ट्रों ने उनके सामने सिपाहियों और गोरखों को ला खड़ा किया, तब जरमनों के क्रोध का ठिकाना न रह गया। एक जरमन अफसर ने तो भीषण और रक्त-पिपासु गोरखों की बहुत ही अधिक निन्दा की थी। उसने उनका बहुत ही निकृष्ट चित्र खींचते हुए उन्हें 'कुत्ता' और "शैतान" तक कह डाला था। जब अंग्रेज़ों ने आफ्रिका के हबशियों को युद्ध-क्षेत्र में लाने का विचार किया था, तब फिर जर्मनों में घोर असन्तोष फैला था। पर कोई किसी के असन्तोष और विरोध पर ध्यान नहीं देता था। सब लोग वही काम करते थे और साथ ही सभी उस काम के लिए एक दूसरे की निन्दा भी करते थे। एक ओर तो ये सब गोरे अन्य वर्णों के मनुष्यों को मनुष्य नहीं समझते थे और दूसरी ओर उनके बिना उनका काम भी नहीं चलता था। इसलिए अन्त में धीरे धीरे उनकी घबराहट दूर होने लगी और सभी योद्धा राष्ट्र युद्ध-क्षेत्र में अच्छी तरह अन्य वर्णों के लोगों को भरने लग गये। इस घोर संकट के

का भी नाश किया था। पहले यह गोरे अपने सामने अन्य वर्ण वालों को कुछ समझते ही नहीं थे। वे अपने आप को देवता और दूसरों को निरा पशु, बल्कि उससे भी कुछ और गया बीता समझते थे। जब दो गोरी जातियाँ कभी आपस में लड़ती थीं, तब केवल गोरे सैनिकों से ही काम लिया करती थीं। अपने गोरे भाइयों के मुकाबले में वे अन्य वर्णवाले दासों को ला कर खड़ा करना अपना और अपने भाइयों का अपमान समझती थीं। वे यह नहीं देख सकती थीं कि अन्य वर्ण का कोई आदमी हमारे मुकाबले में या कन्धे से कन्धा भिड़ा कर हमारे साथ आकर खड़ा हो और हथियार चलावे। दक्षिण आफ्रिका में जिस समय बोअर युद्ध हुआ था, उस समय अंग्रेज लोग इस बात के घोर विरोधी थे कि अपने गोरे शत्रुओं का मुकाबला काले हब्शियों अथवा धूसर वर्ण के भारतवासियों से कराया जाय। एक बार जब फ्रान्सीसियों ने यूरोप में लड़ाने के लिए आफ्रिका के काले हब्शियों की सेना संघटित करने का विचार किया था, तब प्रायः सभी यूरोपियनों ने उनके इस विचार का घोर विरोध और निन्दा की थी। तात्पर्य यह कि उस समय तक यूरोप वाले यही समझते थे कि आखिर तो हम सब लोग एक ही हैं। फिर इस प्रकार अन्य वर्ण के लोगों को युद्ध-क्षेत्र में बुला कर व्यर्थ आप ही अपना अपमान क्यों करें! पर गत यूरोपीय महायुद्ध के समय उनका यह सारा अभिमान चूर्ण हो गया था। उस समय सभी योद्धा राष्ट्रों ने अन्य वर्णों के सैनिक जितनी अधिक संख्या में हो सकते थे, भरती किये थे। और उनके इस कृत्य की उन राष्ट्रों की प्रजाओं ने बहुत प्रशंसा की थी! काले, पीले और भूरे सभी रंगों के लोग बहुत आदर-सत्कार के साथ

का भी नाश किया था। पहले यह गोरे अपने सामने अन्य
वालों को कुछ समझते ही नहीं थे। वे अपने आप को देवता
दूसरों को निरा पशु, बल्कि उससे भी कुछ और गया बीता सम
थे। जब दो गोरी जातियाँ कभी आपस में लड़ती थीं, तब के
गोरे सैनिकों से ही काम लिया करती थीं। अपने गोरे भाइयों
मुकाबले में वे अन्य वर्णवाले दासों को ला कर खड़ा करना अप
और अपने भाइयों का अपमान समझती थीं। वे यह नहीं देख सक
थीं कि अन्य वर्ण का कोई आदमी हमारे मुकाबले में या कन्धे
कन्धा भिड़ा कर हमारे साथ आकर खड़ा हो और हथियार चलावे
दक्षिण आफ्रिका में जिस समय बोअर युद्ध हुआ था, उस सम
अंग्रेज लोग इस बात के घोर विरोधी थे कि अपने गोरे शत्रु
को मुकाबला काले हब्शियों अथवा धूसर वर्ण के भारतवासियों
कराया जाय। एक बार जब फ्रान्सीसियों ने यूरोप में लड़ाने
लिए आफ्रिका के काले हब्शियों की सेना संघटित करने
विचार किया था, तब प्रायः सभी यूरोपियनों ने उनके इस विचार
का घोर विरोध और निन्दा की थी। तात्पर्य यह कि उस समय
तक यूरोप वाले यही समझते थे कि आखिर तो हम सब लोग
एक ही हैं। फिर इस प्रकार अन्य वर्ण के लोगों को युद्ध-क्षेत्र में
बुला कर व्यर्थ आप ही अपना अपमान क्यों करें! पर गत यूरो-
पीय महायुद्ध के समय उनका यह सारा अभिमान चूर्ण हो गया
था। उस समय सभी योद्धा राष्ट्रों ने अन्य वर्णों के सैनिक जितनी
अधिक संख्या में हो सकते थे, भरती किये थे। और उनके इस
कृत्य की उन राष्ट्रों की प्रजाओं ने बहुत प्रशंसा की थी! काले,
पीले और भूरे सभी रंगों के लोग बहुत आदर-सत्कार के साथ

सेना में भरती किये जाते थे। आज आप को भारत में सैंकड़ों

के युद्ध-क्षेत्र में पहुंचने से पहले और लौटने के समय फ्रान्सीसी महिलाओं ने उनकी कितनी आव-भगत की थी, उन्हें कितने प्रेम से मालाएँ पहनाई थीं और उन्हें कितनी आवसदारी दिखला कर जल-पान कराया था।

जब जर्मनी ने तुर्कों को युद्ध-क्षेत्र में ला कर मित्र राष्ट्रों के सामने खड़ा किया था, तब मित्र राष्ट्रों के सैनिक और प्रजा वर्ग ने बहुत असन्तोष प्रकट किया था। और जब मित्र राष्ट्रों ने उनके सामने सिपाहियों और गोरखों को ला खड़ा किया, तब जरमनों के क्रोध का ठिकाना न रह गया। एक जरमन अफसर ने तो भीषण और रक्त-पिपासु गोरखों की बहुत ही अधिक निन्दा की थी। उसने उनका बहुत ही निकृष्ट चित्र खींचते हुए उन्हें "कुत्ता"

समय गोरों को अन्य वर्णों के लोगों की थोड़ी बहुत कदर होने लग गई थी। पर यह कदर भी उस अपने मतलब के लिए थी। जब उनका यह मतलब निकल गया, तब फिर सारे संसार में गोरों के हाथों उनकी फिर पहले की सी दुर्दशा होने लगी।

जर्मनी वाले यूरोप के मुख्य युद्ध-क्षेत्र में तुर्की सैनिकों को अधिक संख्या में नहीं ला सकते थे; इसलिए उन लोगों ने और ही प्रकार से बदला लेना चाहा। उन्होंने तुर्की को भी अपना साथी बनाकर युद्ध में सम्मिलित कर लिया। उस समय एक जर्मन ने कहा था—तुर्की में एनाटोलिया और मेसोपोटामिया हैं। एनाटोलिया सूर्योदय का प्रदेश है और मेसोपोटामिया प्राचीन स्वर्ग है। ईश्वर करे, ये दोनों नाम हमारे लिए शुभ हों। ईश्वर करे, यह संसार-व्यापी युद्ध जर्मनी और तुर्की के लिए नये युग का सूर्योदय और स्वर्ग लावे।" भला कहाँ तो अन्य वर्णों के लोगों से वह घृणा और कहाँ उनके साथ मिलकर विजय प्राप्त करने और नवीन युग प्रस्तुत करने की यह कामना!

इसमें जरमनी का एक और उद्देश्य था। तुर्की को जरमनी ने जो सहायता दी थी, उसका एक और मतलब था। वह चाहता था कि एशिया में अंगरेजों और रूसियों की अधीनता में जो प्रदेश इस समय पिस रहे हैं, वे उत्तेजित हो कर उभड़ खड़े हों। वह चाहता था कि तुर्की, फारस, अफगानिस्तान और चीन सब हमारी ओर मिल जायें, और सारे एशिया में ऐसा उपद्रव खड़ा हो जाय जो हमारे शत्रुओं से शांत न हो सके। वह कुस्तुन्तुनिया से पेकिंग तक एक सीधी रेल बनाने का स्वप्न देख रहा था। वह यह प्रकट करना चाहता था कि हम एशिया को पूर्ण

इधर बहुत दिनों से यूरोपवालों को पीत वर्ण वाली जातियों से बहुत अधिक भय लगने लगा था। उन्हें यह आशंका होने लगी थी कि कहीं आगे चल कर चीन और जापान आदि हमारे स्थान और अधिकार न छीन लें। इस भय और आशंका ने बहुत से गोरों को पीत वर्ण वालों का पूरा शत्रु बना दिया था। पर उस अवसर पर एक जर्मन अफसर ने, जो बहुत दिनों तक पूर्वी एशिया में रह चुका था, अपने देश-वासियों को यह समझा कर शांत करना चाहा था कि भले ही आगे चल कर हम लोगों को पीत वर्ण वालों से हानि पहुँचने की सम्भावना हो, पर कम से कम इस समय तो हमें उनसे डरने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि पूर्वी एशिया में हमारे अधिकार में कोई प्रदेश नहीं है। यदि यूरोप की गोरी जातियों में पूरी पूरी एकता होती, तो अवश्य हमें पीत वर्ण वालों से डरना उचित था। पर इस समय गोरों में एकता तो है ही नहीं। स्वयं अपना ही रक्त और मांस गँवा कर हम अभी अभी यह कटु अनुभव प्राप्त करने लगे हैं। हमारे शत्रुओं ने सभी जातियों के लोगों को हमारे सामने ला खड़ा किया है उन लोगों ने जाति या वर्ण के हिताहित का विचार बिलकुल छोड़ दिया है। तब ऐसी अवस्था में, जब कि हमारे सामने जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित है, हम पीत वर्ण के लोगों से इन गोरों की रक्षा कहाँ तक कर सकेंगे? अब तो हम जर्मनों के सामने एक ही प्रश्न रह गया है। उस प्रश्न के आगे हमें और और सब प्रश्नों को छोड़ देना चाहिए। और वह प्रश्न है अपने जर्मनी देश की रक्षा और उन्नति करना। इसीलिए इस अफसर ने कहा था कि जर्मनी और जापान में राजनीतिक समझौता

छिपा भी नहीं है। * यहाँ हम यही कह देना चाहते हैं कि मित्र राष्ट्रों ने उस समय अमेरिका को अपने पक्ष में मिलाने के लिए ही मि० विलसन की सारी शर्तें चुप-चाप मान लीं। क्योंकि, वे यह बात अच्छी तरह जानते थे कि आगे चलकर जब हमारी विजय हो जायगी और इन शर्तों के पालन का अवसर आवेगा, उस समय हम अमेरिका से भी समझ लेंगे। उन शर्तों का पालन करना या न करना तो हमारे ही हाथ में रहेगा। अमेरिका हमसे जबरदस्ती तो शर्तों का पालन करा ही न लेगा। इसलिए वे अमेरिका को हर तरह से राजी करके यूरोप के युद्ध-क्षेत्र में ले आये। यूरोप वाले बरसों से लड़ते लड़ते बे-दम हो रहे थे। अमेरिकन सेनाओं ने यूरोप पहुँचते ही युद्ध का रुख बदल दिया। जरमनी ने भी देखा कि इस समय बात अपने बस की नहीं है। इसलिए वह भी युद्ध स्थगित करने के लिए राजी हो गया। वह भी समझता था कि हमारे हाथ पैर सदा के लिए तो बँध जायँगे ही नहीं। फिर किसी अवसर पर देखा जायगा। इस प्रकार युद्ध रुका। इसके उपरान्त सारे संसार की दृष्टि शान्ति महासभा की ओर जा लगी। योद्धा राष्ट्र तो पहले से ही अच्छी तरह जानते थे कि इस शान्ति महासभा में अधिक से अधिक क्या हो सकता है। इसलिए उनको अपनी तो कोई विशेष चिन्ता या परवा नहीं थी। हाँ, अन्यान्य वर्णों तथा देशों के लोगों को बड़ी-बड़ी आशाएँ होने लगी थीं। पर शान्ति-महासभा के उपरान्त भी न तो लोगों की कोई आशा ही पूरी हुई, और न यूरोप में ही किसी प्रकार की

---

* इस सम्बन्ध की बातें जानने के लिए देखो [illegible] 'इंग्लैण्ड [illegible]' नामक पुस्तक [illegible]।

शान्ति स्थापित हुई। उलटे संसार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोर असन्तोष फैल गया। राजनीतिक समस्याएँ पहले से कहीं अधिक जटिल हो गई और आर्थिक संकट पहले से कहीं अधिक विकट हो गए।

यूरोप में कुछ थोड़े से समझदार ऐसे भी थे जो पहले से ही यह बात जानते थे कि युद्ध की समाप्ति पर जब बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ आपस में समझौता करने बैठेंगे, तब यूरोप को फिर से संघटित करने की समस्या ऐसी जटिल हो जायगी कि उनकी कोई मीमांसा ही न हो सकेगी। पर अधिक संख्या ऐसे ही लोगों की थी जो शान्ति महासभा से बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ रखते थे। इसी लिए अन्त में प्रायः सभी लोगों को निराश होना पड़ा और सभी लोगों को यह जान पड़ने लगा कि हम लोग धोखे में थे। वार्सेल्स में जो कुछ निश्चय हुआ था, वह सिर से पैर तक अनेक प्रकार की त्रुटियों से पूर्ण था। इसी लिए प्रायः सभी ओर से उसकी बहुत अधिक निन्दा भी हुई थी। पर कुछ लोग तो ऐसे थे जो यह समझते थे कि इतनी अधिक दुरवस्था उत्पन्न हो चुकने के उपरान्त जो कुछ निश्चय हो गया, वही गनीमत है। और कुछ लोग ऐसे थे जो यह समझते थे कि यह निर्णय कोई निर्णय ही नहीं है और इसमें अनेक बड़े-बड़े अनर्थों का बीजारोपण हुआ है। और वास्तव में यही बात बहुत से अंशों में ठीक भी है।

सुप्रसिद्ध जनरल स्मट्स दक्षिण आफ्रिका के प्रतिनिधि बनकर शान्ति महासभा में आए थे। वे उस दल में के हैं, जो शान्ति महासभा के निर्णय से असन्तुष्ट होने पर भी उसे गनीमत समझता है। वार्सेल्स के निर्णय का विरोध करते हुए उन्होंने कहा

था—"मैंने सन्धि पर इसलिए हस्ताक्षर नहीं किए हैं कि मैं उस सन्धिपत्र को सन्तोष-जनक समझता हूँ। मेरे हस्ताक्षर करने का कारण यह है कि युद्ध का समाप्त होना नितान्त आवश्यक है। इस समय संसार को सबसे अधिक आवश्यकता शान्ति की ही है। और युद्ध तथा शान्ति के मध्य की अवस्था में पड़े रहना सब से अधिक घातक है। युद्ध स्थगित होने के उपरान्त के छः महीने भी यूरोप के लिए वैसे ही नाशक रहे हैं, जैसे युद्ध-काल के चार वर्ष थे। इस समय जो सन्धि हुई है, उसे मैं उन दो अध्यायों का अन्त समझता हूँ जिनमें से एक अध्याय युद्ध और दूसरा युद्ध का स्थगित होना है। और केवल इसी कारण मैं इस सन्धि से सहमत हुआ हूँ। मैं केवल टीका-टिप्पणी करने के लिए यह बात नहीं कहता, बल्कि सच्चे हृदय से कहता हूँ। जो काम हुआ है, उस में मैं कोई दोष नहीं निकालना चाहता। पर फिर भी मैं समझता हूँ कि हम लोगों ने अभी तक वह सच्ची शान्ति नहीं प्राप्त की है जिसकी सब लोग आशा लगाए बैठे थे। मैं यह भी समझता हूँ कि सच्ची शान्ति का कार्य सन्धि पर हस्ताक्षर हो चुकने के उपरान्त आरम्भ होगा। यह सच्ची शान्ति तभी होगी, जब उन नाशक वृत्तियों का दमन होगा जो प्रायः पाँच वर्ष से यूरोप का नाश कर रही हैं।"

पर यदि सच पूछिए तो सन्धि पर हस्ताक्षर हो चुकने के इतने दिनों बाद तक भी कहीं सच्ची शान्ति के दर्शन नहीं हो रहे हैं, और न कहीं उन नाशक वृत्तियों का अन्त ही दिखलाई देता है। उलटे वे वृत्तियाँ फिर धीरे-धीरे अपना भीषण रूप धारण करती हुई दिखाई दे रही हैं। भल

पक्ष सन्तुष्ट नहीं, उस निर्णय से कहाँ तक शान्ति स्थापित हो सकती है ! ऐसी सन्धि का अनिवार्य परिणाम भीषणतर युद्ध ही है। जब तक लोगों का हृदय स्वच्छ नहीं होगा और जब तक साम्राज्यवाद का भूत यूरोप के सिर से नहीं उतरेगा, तब तक सच्ची शान्ति की आशा दुराशा मात्र है। अभी तो शान्ति संसार से बहुत दूर है।

मि० जे० एल० गार्विन नामक एक अंग्रेज अर्थ-शास्त्रज्ञ ने भी इस सन्धि की अच्छी आलोचना की थी। उसने कहा था—"सन्धिपत्र पर चाहे हस्ताक्षर भी क्यों न हो जायँ, पर फिर भी वह आखिर एक कागज ही है। वह कागज स्वयं तो कुछ कर ही नहीं सकता। उसका उपयोग तभी हो सकता है जब उसमें लिखी हुई बातों का पालन आदि करने के लिए उसके साथ कुछ जीवित शक्तियाँ भी लगी हों। जिन सन्धियों में निश्चित और ठीक बातें

विनाशक कार्य ही होगा। साथ ही वह शान्ति वैसी न्हीं
जिसको कल्पना लोग युद्ध-काल में किया करते थे। और
रक्षा तथा सुविधा एवं शान्ति के लिए इसने सैकड़ों व
इकट्ठी की हुई धन की राशियाँ और खजाने नष्ट किये थे
इससे अधिक आदर से अपने आदमियों को युद्ध-क्षेत्र में लड़
लिए भेजा था।"

डा० ई० जे० डिलन सार्वराष्ट्रीय राजनीति के बहुत बड़े ज्ञ
हैं। उन्होंने सन्धि के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था वह इस प्र
है—"पहले तो यह सोचा गया था कि सन्धि (अमेरिका के
चौदह शर्तों के अनुसार होगी अथवा सीमा सम्बन्धी सिद्धांतों
होगी। पर इन दोनों में से एक बात के आधार पर भी सन्
नहीं हुई। हाँ, यह एक ऐसे समझौते के आधार पर हुई है, जि
में गुण या लाभ तो दोनों में से एक के भी नहीं हैं पर दोन
की कुछ कुछ हानियाँ या दोष अवश्य हैं। यह सन्धि युद्ध के मू
पर आघात करने में असमर्थ हुई है। बल्कि हम कह सकते हैं कि
युद्ध के जिन कारणों का नाश करना इसका उद्देश्य था, उन कारण
की संख्या इसने और भी बढ़ा दी है। इस सन्धि में बहुत सी
ऐसी बातें आ गई हैं, जिनसे केवल गत महायुद्ध में लड़ने वाले
राष्ट्रों में ही नहीं बल्कि अन्यान्य राष्ट्रों में भी आगे चलकर बहुत
से झगड़े और युद्ध होंगे। और इस समय जो लक्षण दिखलाई
पड़ रहे हैं, यदि उन पर विश्वास किया जाय तो कहा जा सकता
है कि समय पाकर युद्ध के अंकुर खूब फूलें फलेंगे।"

वार्सेल्स की सन्धि के दूषित और त्रुटिपूर्ण होने का सब से
बड़ा प्रमाण यह है कि उसने जो सार्वराष्ट्रीय लीग या महासभा

स्थापित की है, उसके प्रति लोगों की सहानुभूति और उत्साह का बिलकुल नाश हो गया है। बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके मन में पहले लीग के प्रति बहुत अधिक उत्साह था; जो लीग के बहुत बड़े समर्थक थे, और जिन्हें लीग से बहुत कुछ आशा थी। पर अब वही लोग यह कहने लग गये हैं कि लीग का कोई नैतिक आधार ही नहीं रह गया। ऐसे लोगों का यह भी मत है कि यदि लीग की कार्य-प्रणाली सिद्धान्ततः ठीक भी होती, तो भी जिस आधार पर वर्तमान सन्धि की गई है, उस आधार को देखते हुए कहा जा सकता है कि लीग केवल बालू पर बना हुआ महल है। जिस लीग की स्थापना कुछ प्रबल राष्ट्रों ने लोगों को केवल धोखा देने और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के ही उद्देश्य से की हो, भला उसका नैतिक आधार ही क्या हो सकता है। जिस लीग को लोग टट्टी बना कर उसकी आड़ में शिकार खेलते हों, उस पर लोगों का कहाँ तक विश्वास रह सकता है। और जिस संस्था पर किसी का विश्वास ही न हो, वह कहाँ तक स्थायी हो सकती है। हमारी इन सब बातों का प्रमाण यदि पाठक एक ही स्थान पर प्राप्त करना चाहें, तो उन्हें लीग द्वारा प्रस्तावित और जेनेवा में होने वाली अफीम सम्बन्धी दूसरी सार्वराष्ट्रीय महासभा के उस अधिवेशन की ओर ध्यान देना चाहिए जो अभी हाल में सन १९२५ के आरंभ में हुआ था। क्या उसकी कार्रवाई देख कर कोई समझदार आदमी कह सकता है कि इंग्लैण्ड ने जिस समय संसार में अफीम की उपज कम करने का सिद्धांत स्वीकृत किया था और जिस समय वह इसके लिए [illegible] करने के लिए तैयार हुआ था, उस समय [illegible] था और वह अपना कोई स्वार्थ नहीं

सिद्ध करना चाहता था ? क्या उसने ये सब बातें लोगों को केवल धोखा देने के लिए नहीं की थीं ? यदि ऐसा न होता तो उस कानफ्रेन्स में से पहले अमेरिका के प्रतिनिधियों को और फिर चीन के प्रतिनिधियों को उठ कर चले जाने की क्या आवश्यकता थी ? यदि कोई कहना चाहे तो वह यहाँ तक कह सकता है कि कुछ स्वार्थी राष्ट्रों ने पहले से ही कुछ ऐसा रूपक साधना आरम्भ कर दिया था कि जिसमें हमारे विरोधी प्रतिनिधि महासभा में से उठ कर चले आयें और फिर हमें मनमानी कार्यवाही करने को अवसर मिल जाय। खैर।

हमारे कहने का मुख्य तात्पर्य यह है कि यूरोप इस समय बहुत ही बुरी दशा में है और उसकी दुरवस्था दिन पर दिन बढ़ती जाती है। ऊपर हमने सन्धि के सम्बन्ध में जो मत दिये हैं, वे बहुधा मित्र राष्ट्रों के पक्षपातियों के ही हैं। यदि सन्धि के सम्बन्ध में जर्मनी, आस्ट्रिया या तुर्की आदि के पक्षपातियों की सम्मतियों पर ध्यान दिया जाय, तो परिस्थिति की भयंकरता और भी बढ़ी हुई जान पड़ती है। युद्ध में जो पक्ष विजयी हुआ है, जिसने बहुत से नये प्रदेश पाये हैं, और जो बहुत सा हरजाना वसूल कर रहा है, जब वही पक्ष सन्धि से सन्तुष्ट नहीं है, तो फिर जो पक्ष पराजित हुआ है, जिसके हाथ से अनेक प्रदेश निकल गये हैं और जिसे हरजाने की बड़ी बड़ी रकमें देनी पड़ रही हैं, वह इस सन्धि से चाहे जितना असन्तुष्ट हो, थोड़ा है। ऐसी अवस्था में यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि यूरोप के राजनीतिज्ञ ऐसा निर्णय करने में नितांत असमर्थ सिद्ध हुये हैं, जो सब लोगों के लिए सन्तोषजनक हो और जिसका परिणाम शुभ तथा

कल्याणकारी हो। पुरानी जटिल समस्याएँ तो ज्यों की त्यों बनी रह गईं और ऊपर से अनेक नई नई विकट समस्याएँ भी खड़ी हो गईं। यदि कोई पूछे कि इसका कारण क्या है, तो उसका यही उत्तर है कि जो पक्ष विजयी और बलवान था, उसने केवल अपने हित को छोड़ कर और किसी बात पर ध्यान नहीं दिया और जहाँ तक हो सका, अपने विपक्षी को दबाने की ही नहीं, बल्कि पीस डालने की भी पूरी पूरी कोशिश की।

एक ओर तो महायुद्ध में पराजित पक्ष असन्तुष्ट है, और दूसरी ओर उन अधीनस्थ देशों के निवासियों का बहुत बड़ा समूह असन्तुष्ट है, जिन्हें जेता राष्ट्रों ने युद्ध-काल में बहुत बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाई थीं और युद्ध से छुट्टी पाने पर वे जिन्हें पहले की अपेक्षा और भी अधिक निराश तथा दुःखी कर रहे हैं। विशेषतः एशिया और आफ्रिका के अधिकांश अधीनस्थ देश बहुत ही अधिक असन्तुष्ट हैं। उनके लिए अब गोरों के प्रभुत्व और भार का सहना दिन पर दिन असम्भव होता जाता है। महायुद्ध ने उन की आँखें और भी खोल दी हैं। वे यूरोप वालों की धोखेबाजियों से भी परिचित हो गये हैं और पराधीनता के कष्ट झेलते झेलते तंग भी आ गये हैं। वे अब स्वाधीन होने के लिए पूरा पूरा प्रयत्न करने लग गये हैं। अब गोरों के प्रति उनका वह पहले वाला भाव नहीं रह गया है। इसलिए यदि आगे चल कर फिर कभी यूरोप में कोई गृहयुद्ध छिड़ा तो कदाचित् अन्य वर्णों के लोगों से उन्हें कोई सहायता भी न मिलेगी। अब सब लोग अपनी अपनी पर सँभल लेंगे और निरर्थक स्वामिभक्ति के सिर सदा नहीं देने जाएँगे। परन्तु फिर भी यह गोरे लड़ने से मानेंगे नहीं। और भावी युद्धों

की आशंका से ही वे अपने अधीनस्थ देशों को और भी दृढ़
पूर्वक जकड़ने का उद्योग करेंगे। चाहे आज या पचास व
के बाद परिणाम यही होगा कि अन्य वर्णों वाले तो स्वाधीन हो
जायँगे और गोरों के प्रभुत्व का अन्त हो जायगा। और जब गोरों
के प्रभुत्व का अन्त हो जायगा तब मानों उनकी सभ्यता का भी
अन्त हो जायगा और उसके स्थान पर किसी और नई सभ्यता का
आविर्भाव होगा। यही सृष्टि का क्रम है और इसी की पूर्ति में सब
लोगों को सहायक होना चाहिए।

---

# उपसंहार

( १० )

हम आरम्भ में ही यह बात कह चुके हैं कि संसार में गोरों का प्रसार दो प्रकार का है। कुछ स्थानों में तो वे जाकर बस गये हैं और कुछ स्थानों पर उन्होंने अपना शासन जमा रखा है। उत्तरी अमेरिका आदि जिन स्थानों में गोरे लोग जा कर बस गये हैं, उन स्थानों को उन्होंने मानों बिलकुल अपना देश ही बना लिया है। और भारत सरीखे देश उनके अधिकृत और अधीनस्थ हैं। पर एक कोटि इन दोनों के बीच की है। इस कोटि में दक्षिण आफ्रिका जैसे कुछ ऐसे देश हैं जिनमें जाकर गोरे बस तो बहुत बड़ी संख्या में गये हैं, पर जहाँ के मूल निवासियों का उन्होंने अमेरिका के रक्त वर्ण वाले मूल निवासियों की भांति शिकार करके अथवा और किसी उपाय से समूल नाश नहीं कर दिया है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रदेश भी हैं, जिन पर गोरों ने अपना पूरा पूरा अधिकार कर लिया है, पर जहाँ उन प्रदेशों के मूल-निवासी भी बसते हैं। ऐसे प्रदेश गोरी जातियों के प्रसार से इतनी दूरी पर हैं कि गोरों को अभी तक विश्वास ही नहीं है कि हमारा अधिकार इन प्रदेशों पर स्थायी रूप से बना रह सकेगा। आस्ट्रेलिया ऐसे ही प्रदेशों में से है।

से कहीं अधिक भीषण तथा नाशक भी है। साम्राज्यवादियों में जो यह नया वैज्ञानिक सम्प्रदाय खड़ा हुआ है, वह कहता है कि हम अपने जिन शत्रुओं का नाश कर सकते हों, उन शत्रुओं का हमें तुरन्त नाश कर डालना चाहिए; और जिन्हें हम नष्ट न कर सकते हों, उन्हें सदा अपनी अधीनता में रखने का अभी से पूरा पूरा उद्योग करना चाहिए। अब ऐसी परिस्थिति में अशक्तों और पराधीनो को क्या करना चाहिए, इसका निर्णय वे स्वयं अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कर लें।

यों तो प्रायः सारा संसार ही इस समय गोरों से त्रस्त हो रहा है और उनके अधिकार से निकलकर स्वतंत्र होना चाहता है, पर एशिया के धूसर और पीत वर्ण के लोग इस विषय में उन सब से आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। इन दोनों वर्णों के लोग दिन पर दिन गोरों के घोर विरोधी होते जा रहे हैं। वे गोरों पर यह बात प्रमाणित कर देना चाहते हैं कि हम तुम से किसी बात में दबने या पीछे रहने के लिए तैयार नहीं हैं और न अब हम अधिक समय तक तुम्हारा प्रभुत्व ही मान सकते हैं। आजकल चाहे इन दोनों वर्णों के लोग कुछ दब गये हों, पर किसी समय यही दोनों वर्ण संसार में सर्व-श्रेष्ठ समझे जाते थे, और अनेक बातों में सारे संसार के गुरु थे। एशिया के इन निवासियों को चाहिए कि अपनी पुरानी संस्कृति फिर से जागृत करें, अपने पैरों पर आप खड़े हों और अपना अपना घर सँभालें। यदि ये लोग अलग अलग और मिलकर स्वतंत्र और उन्नत होने का पूरा-पूरा उद्योग करेंगे, तो यह बात निश्चित है कि कम से कम एशिया से गोरों के पैर उखड़ जायँगे। गोरी जातियों को भी और किसी

ऽ योग्य बनाया था, इसलिए वे शासक बन गए; और अन्य
के लोग दास बनने के योग्य हो गये थे, इसलिए वे उनके
न गये। पर काल-चक्र सदा घूमा करता है; इसलिए अब
ऽ गुणों का ह्रास होने लगा है, और अन्य वर्णों के लोगों में
उत्पन्न होने लगी है। इस समय प्रत्येक परतंत्र जाति को
स्थिति उस सीमा तक सुधार लेनी चाहिए, जिसके उप-
कर उसे कभी कोई पराधीन कर ही न सके। और अपनी
ाति बराबर बनाए रखनी चाहिए। पराधीनता वह दंड है
ति उन दुर्बल जातिओं को दुर्बलता के अपराध में देती है।
मय संसार की सभी जातियाँ यथेष्ट बलवती हो जायँगी
पने अधिकारों की रक्षा तथा दूसरों के अधिकरों का आदर
ीख जायँगी, उस समय स्वामित्व और दासत्व, शासक
सित, परतंत्र और स्वतंत्र का कोई झगड़ा ही न रह जायगा
स्वतंत्र और सब लोग समान होंगे। उसी समय संसार
विक और स्थायी शान्ति के दर्शन हो सकेंगे। यदि गोरी
अन्य जातियों को अपनी अधीनता में रखकर सुखी और
ने की आशा रखती हों, तो यह उनकी बड़ी भारी भूल
इस भूल का सुधार उन्हें स्वयं अपनी तथा शेष संसार
हानि करके करना पड़ेगा।

एशिया स्वतंत्र होने के योग्य है, तो वह अवश्य स्वतंत्र
हेगा। पर उसे स्वतंत्र होने से पहले स्वतंत्र होने के योग्य
ोगा। लोग इस योग्यता के अनेक स्वरूप बतलाते हैं।
ता है शिक्षा प्राप्त करो; कोई कहता है—सम्पन्न बनो।
ता है—बलवान् हो; और कोई कहता है समाज सुधार

करो। पर हमारी समझ मे ये सभी बातें आवश्यक होने पर भी गौण ही हैं। स्वतंत्र होने के लिए सब से पहले इस बात की आवश्यकता है कि सब लोगों मे स्वतंत्र होने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो। जब किसी जाति के प्रत्येक मनुष्य मे स्वतंत्र होने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जायगी, तब फिर कभी कोई शक्ति उसे परतंत्र न रख सकेगी। और फिर जब वह जाति स्वतंत्र हो जायगी, तब अन्यान्य ऊपरी और आवश्यक बातें धीरे धीरे उसमे आप ही आ जायँगी।

एशिया मे मुख्यतः धूसर और पीत इन्हीं दो वर्णों के लोग बसते हैं और गोरों को सब से अधिक इन्हीं दोनो वर्णों के लोगों से खटका है। इन दोनों वर्णों की जन-संख्या भी बहुत अधिक है। वे समझते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि ये दोनों वर्णों के लोग मिलकर एशिया मे हमारे प्रभुत्व के विरुद्ध शस्त्र उठावें। पर उन्हें इस बात की आशंका नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अभी इन लोगों में वह शक्ति आने मे बहुत विलम्ब है जिससे वे रण-क्षेत्र मे जम कर कुछ दिनों तक लड़ सकें। हमारा विश्वास है कि वह समय आने से बहुत पहले ही संसार का रंग बिलकुल बदल जायगा और एशिया वालों को गोरों के विरुद्ध कम से कम शस्त्र उठाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। हाँ यह अवश्य हो सकता है कि ये लोग मिलकर इतना प्रबल आन्दोलन करें कि गोरों को विवश हो कर एशिया पर से अपना शासन उठा लेना पड़े। और कदाचित यही बात होगी भी। गोरी जातियाँ प्रायः यह कहा करती हैं कि हम तो अपनी शासित जातियों के संरक्षक मात्र हैं। ज्यों ही ये जातियाँ अपने पैरों पर खड़ी होने के योग्य हो जायँगी, त्यों

दी हम उन पर से अपना शासन उठा लेंगे। पर यदि वास्त
दृष्टि से देखा जाय तो गोरों के इस प्रकार के कथनों का कोई
ही नहीं हो सकता। गोरों ने प्रायः आर्थिक दृष्टि से लाभदा
समझ कर ही संसार के अन्यान्य देशों पर अधिकार जमा र
है। और वे यह लाभ यथा साध्य चरम सीमा तक उठा कर
दम लेंगे। किसी अधीनस्थ देश के निवासी को कभी यह आ
नहीं करनी चाहिए कि हमारे गोरे शासक किसी न किसी स
शासन की बागडोर आप ही हमारे हाथ में सौंप कर अपने
चले जायँगे। गोरों के हाथ से अपना अधिकार छीनने के लि
पराधीन जातियों को अनेक प्रकार के प्रबल उद्योग करने पड़े
और साथ ही अनेक प्रकार के कष्ट भी सहने पड़ेंगे। पराधीन
को यह उद्योग करने और कष्ट सहने के लिए तैयार हो जान
चाहिए।

गोरों को अन्य वर्णों के लोगों से दूसरा खटका यह है कि
वे शीघ्र ही शिल्प तथा कला आदि के क्षेत्र से हमें बाहर निकाल
देंगे। अर्थात् वे भी अपने ही देश में अपनी आवश्यकता की
सभी चीजें तैयार करने लग जायँगे और उस दशा में हमारा
रोजगार मारा जायगा। उनका यह भय बहुत कुछ ठीक है। पर
हम तो यह कहेंगे कि संसार की सभी जातियों के कल्याण की
दृष्टि से इससे बढ़कर और कोई बात ही नहीं हो सकती कि सब
देशों के लोग अपनी अपनी आवश्यकता की सब चीजें आप ही
तैयार करने लग जायँ। यदि यह बात हो जाय तो उन थोड़े से
बड़े बड़े प्रलोभनों में से एक प्रलोभन तो अवश्य नष्ट हो जाय
जिसके कारण गोरे लोग प्रायः सारे संसार पर अपना अधिकार

कर दिया है। यदि एशियावाले फिर से किसी प्रकार [illegible] वाणिज्य व्यापार खड़ा कर सकें, तो वे दरिद्रता और परा[illegible] दोनों के बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। हर्ष का विषय है कि [illegible] कुछ दिनों से एशियावाले यह बात समझने लग गए हैं। [illegible] पास वाणिज्य व्यापार की वृद्धि के साधनों की कमी नहीं है। [illegible] सच पूछिए तो गोरी जातियाँ उन्हींके साधनों से ही अपना [illegible] काम चलाती हैं। बहुत सा कच्चा माल एशिया में ही पैदा हो[illegible] है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम उसका ठीक ठी[illegible] उपयोग करने लग जायँ। हम कह सकते हैं कि केवल भारत [illegible] चीन यही दो देश ऐसे हैं कि यदि ठीक तरह से ये व्यापार वाणि[illegible] करने लग जायँ, तो समस्त एशिया की आवश्यकताएँ पू[illegible] कर सकते हैं। और उस दशा में गोरों के व्यापार-वाणिज्य के लिए कोई स्थान ही नहीं रह सकता। इन देशों के कारीगर और मजदूर बहुत अधिक परिश्रमी, कष्ट-सहिष्णु और निपुण होते हैं और साथ ही कम मजदूरी में अधिक समय तक काम कर सकते हैं। यदि एशियावालों को व्यापार-वाणिज्य में गोरों के साथ स्वतंत्रता पूर्वक प्रतियोगिता करने का अवसर मिले, तो वे बहुत अच्छी तरह उनसे बाजी जीत सकते हैं। पर हाँ, पहले वह अवसर उत्पन्न करना पड़ेगा जिसमें हम उनके साथ स्वतंत्रता पूर्वक प्रति[illegible] योगिता कर सकें। और इस बात का राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

गोरी जातियों की [illegible] पर्व के लोगों [illegible] है कि वे [illegible] देश से [illegible] जो इस समय [illegible] के [illegible]

और वह मूल्य कदाचित् रक्तपात के रूप में होगा। पर यदि सब लोग अभी से यह मूल सिद्धान्त समझने लग जायँगे और सहनशीलता तथा न्यायपरायणता का परिचय दे सकेंगे, तो बहुत सम्भव है कि प्रकृति हमें वह सुख तथा शान्ति थोड़े ही मूल्य में दे दे। संसार के समस्त मनुष्यों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जिस प्रकार हमें जीवित रहने का अधिकार है, उसी प्रकार और सब लोगों को भी है। जितने ही अधिक लोग इस सिद्धान्त का पालन करेंगे, उतना ही कम मूल्य हमें सुख तथा शान्ति का देना पडेगा। न्यायतः सभी लोगों को अपने अपने देशों में सुख तथा स्वतन्त्रता पूर्वक रहने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यदि हम कोई बहाना निकाल कर इस सिद्धान्त का उल्लंघन करना चाहेंगे, तो पहले दूसरों की और बाद में अपनी हानि करेंगे। जो लोग यह चाहते हों कि सारे संसार में स्थायी शान्ति स्थापित हो, उनका पहला कर्तव्य यह होना चाहिए कि सब लोगों को सब राष्ट्रों को, सब जातियों को, सब देशोंको-सहनशील तथा न्यायपरायण बनाने का उद्योग करें। दूसरों के धन, दूसरों की सम्पत्ति तथा दूसरों की भूमि पर अधिकार कर लेने का परिणाम तो वही अशान्ति है, जिसका साम्राज्य इस समय सारे संसार में दिखाई पड़ रहा है। यों तो इस अशान्ति का नाश करना सभी लोगों का समान रूप से कर्तव्य है, पर गोरों पर इसका उत्तरदायित्व इसलिए सबसे अधिक है कि वह इस अशान्ति के जनक हैं, और उन्हीं के हाथ में इसे दूर करने की सबसे अधिक शक्ति है। संसार के विचारशील लोग बड़ी ही उत्कंठा से देख रहे हैं कि गोरे अपने इस कर्तव्य का किस प्रकार पालन करते हैं। पर गोरों में निराश रहने के कारण

# सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर.

स्थापना सन् १९२५ ई०; मूलधन ४००००)

उद्देश्य—सस्ते से सस्ते मूल्य में ऐसे धार्मिक, नैतिक, समाज सुधार सम्बन्धी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैय्यार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्रीस्वातंत्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला ( सभापति ) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र-निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालाएँ प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार, ग्राम संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

## स्थाई ग्राहक होने के नियम

( १ ) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। ( २ ) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। ( ३ ) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपया। ( ४ ) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछली

## सस्ती-साहित्य-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

( १ ) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग ( महा गांधी ) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य ।॥ ग्राहकों से ।≡) सर्वसाधारण से

( २ ) शिवाजी की योग्यता—( ले० गोपाल दामोदर ताम एम० ए० एल० टी० ) पृष्ठ १२२ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)

( ३ ) दिव्य जीवन—पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ संख्या १३६, मूल्य ।=) ग्राहकों से ।) चौथी बार छपी है।

( ४ ) भारत के स्त्री रत्न—( पाँच भाग ) इस में वैदिक से लगाकर आज तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पतिव्रता, वि और भक्त [illegible]

मू० ।) [illegible]

( ५ ) व्यावहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के उपयोगी व्याव रिक शिक्षाएँ। पृष्ठ १२८, मूल्य ।)॥ ग्राहकों से ≡)॥

( ६ ) आत्मोपदेश—पृष्ठ १०४, मू० ।) ग्राहकों से ≡)

( ७ ) क्या करें ? ( टॉलस्टॉय ) महात्मा गांधी जी लिख है—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रे मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा प्रथम भाग पृष्ठ २३६ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)

( ८ ) कलवार की करतूत—( नाटक ) (ले० टाल्सटाय) अर्थात शराबखोरी के दुष्परिणाम; पृष्ठ ४० मू० -)॥। ग्राहकों से -)॥

( ९ ) जीवन साहित्य—(भू० ले० बाबू राजेन्द्रप्रसादजी) काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग-पृष्ठ २१८ मू० ।।) ग्राहकों से ।=)

प्रथम वर्ष में उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की निकली हैं

## सस्ती-साहित्य-माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

( १ ) तामिल वेद—[ले० अछूत संत श्री तिरुवल्लुवर] धर्म और नीति पर अनुभवमय उपदेश—पृष्ठ २४८ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

( २ ) स्त्री और पुरुष [म० टाल्सटाय] स्त्री और पुरुषों के पार- स्परिक सम्बन्ध पर आदर्श विचार—पृष्ठ १५४ मू० ।=) ग्राहकों से ।)

**इतिबहुवचनश्रुत्यनुगृहीतमविद्यानानात्वमंगीकर्तव्यमित्याहुः ॥**

( शंका ) आपके पूर्वोक्त मन्तव्यसेभी आत्मज्ञानसे एकके मुक्त होनेसे सबकी मुक्तिहोनी चाहिये क्योंकि आपके पूर्व प्रतिपादित सिद्धान्तानुसार अविद्याके एक होनेसे आत्मज्ञान द्वारा उसके विनाश होनेसे पीछे कहींभी संसार नहीं होना चाहिये. ( समाधान ) कईएक विद्वान् लोग आपके कहे को अंगीकारही करतेहैं अर्थात् एकजीववादके सिद्धान्तसे उसके अज्ञान निवृत्त होनेके पश्चात् संसार नहीं ही रहता यह हमको इष्टहीहै ॥ और दूसरे विद्वान्लोग तो इसदोष परिहारके लिये " इन्द्रोमायाभिः " इसश्रुतिमें होनेवाले बहुवचनके बलसे अविद्याहीको नाना मानतेहैं अर्थात् अविद्या नाना हैं जिसकी अविद्या आत्मज्ञानसे निवृत्तहोतीहै वह मुक्त होता है शेष बद्ध रहते हैं. एवं एक मुक्त होनेहीसे सर्वमुक्त प्रसक्तिरूप दोषनहीं है ॥

**अन्येत्वेकैवाविद्या, तस्या एवाविद्याया जीवभेदेन ब्रह्मस्वरूपावरणशक्तयो नाना, तथाच यस्य ब्रह्मज्ञानं तस्य ब्रह्मस्वरूपावरणशक्तिविशिष्टाविद्यानाशः, नत्वन्यं प्रति ब्रह्मस्वरूपावरणशक्तिविशिष्टाविद्यानाश, इत्यभ्युपगमात् नैकमुक्तौ सर्वमुक्तिः ॥**

और कई एक विद्वान्लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि अविद्या एकही है। उसी एक अविद्याकि औ जीवोंके भेदसे ब्रह्मके स्वरूपको आवरण करनेवाली शक्तियां नाना हैं. इसपक्षमें जिस जीवको ब्रह्मात्मएकता ज्ञान हुआ है उसकी ब्रह्मस्वरूपके आवरण करनेवाली अविद्याशक्तिका विनाश हुआ है दूसरेकी ब्रह्मस्वरूपके आवरण करनेवाली अविद्याशक्तिका विनाश नहीं हुआ ऐसा स्वीकार करसकते हैं. इसरीतिकी कल्पना करनेसे एककी मुक्ति होनेसे सर्वकी मुक्तिप्रसक्तिरूप दोष नहीं है ॥

**अत एव "यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्" इत्यस्मिन्नधिकरणेधिकारिपुरुषाणामुत्पन्नतत्त्वज्ञानानामिन्द्रादीनांदेहधारणानुपपत्तिमाशंक्याधिकारापादकप्रारब्धकर्मसमाप्त्यनन्तरं विदेहकैवल्यमितिसिद्धांतितम् ॥**

एवं एकके मुक्त होनेसे सर्वके मुक्त होनेकी प्रसक्तिके अभावहीसे "याव

इन्द्रादि अधिकारी कारकलोगोंकी यावत् अधिकार अवस्थिति अर्थात् जबतक उनको परमात्माकी तरफसे सृष्टिशासन करनेका अधिकार मिला है तबतक उनके आत्मज्ञानी होनेसे भी उनकी संसारमें अवस्थिति बनसकती है " इत्याकारक अर्थवाले शारीरक तीसरे अध्याय के तीसरे पादके ३२– सूत्रमें उत्पन्न हुए तत्त्वज्ञानवाले इन्द्रादि अधिकारी पुरुषोंको देहधारणकी अनुपपत्तिकी शंका करके अधिकारके सम्पादक प्रारब्धकर्मोंकी समाप्तिके अनन्तर विदेहकैवल्यकी प्राप्तिका सिद्धान्त कियाहै ॥

तदुक्तमाचार्य्यवाचस्पतिमिश्रैः–

"उपासनादिसंसिद्धितोपितेश्वरचोदितम् ॥
अधिकारंसमाप्यैते प्रविशंति परंपदम् ॥ १ ॥" इति ॥

एतच्चैकमुक्तौ सर्वमुक्तिरिति पक्षेनोपपद्यते ; तस्मादेकाविद्या-पक्षेपि प्रतिजीवमावरणभेदोपगमेन व्यवस्थोपपादनीया। तदेवं ब्रह्मज्ञानान्मोक्षः, सचानर्थनिवृत्तिर्निरतिशयब्रह्मानंदावाप्तिश्चेति सिद्धं प्रयोजनम् ॥

इति श्र

शरणमेष गतोऽस्ति विचार्य्य तां करुणया करुणामय पाहि माम् ॥
नानावादिविवादवाहुविकले म्लेच्छैः समाक्रोशिते ॥
धर्मे को नु भविष्यतीह शरणं दीनैकसंवत्सलः ॥
इत्येवं विवशं विचारबहुलं संवीक्ष्य चार्य्यान्वयम् ॥
यो भेजे नृतनुं भजेह तमजं श्रीदेशिकं नानकम् ॥ ३ ॥
बोधो विभूतिर्विनयो बलञ्च लोकोत्तरं रूपमथो गुरुत्वम् ॥
आश्रित्य यश्चेह गतानि नोऽन्यं गोविन्दसिंहं गुरुमाश्रयेतम् ॥ ४ ॥
येषां यशःशीतकरो दिगन्तं प्राप्तोऽपि लोके लभते न चास्तम् ॥
ते सर्वशास्त्रैकविदां वरिष्ठा वन्द्याः सदा स्युर्गुरुरामभिश्राः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्दुःखभञ्जन्याश्रमाधिपतिनिर्मलोदयपूज्यपादश्रीठाकुरनिहाल पाथोजमैष्यगोविन्दसिंहसाधुकृते आर्य्यभाषाविभूषितवेदान्तपरिभ प्रकाशे प्रयोजनपरिच्छेदः ॥ ८ ॥

इति वेदान्तपरिभाषा भाषाटीकासहिता समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, खेतवाड़ी—बंबई.